राजीवनचरित्र

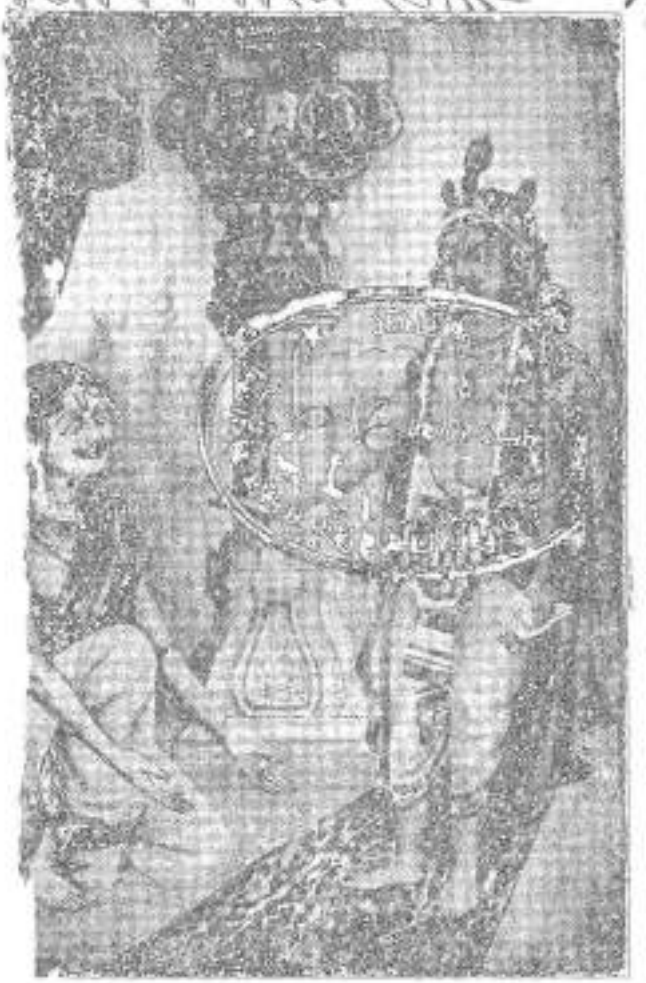

लेखक

देशभक्त—लाला जयतराय.

हरजानन्द वैदिक संस्कृत

ओ३म्

वीर दृष्टान्त माला नं० ४

गिराज महात्मा श्री कृष्ण
का
जीवन-चरित्र.

श्रीयुत माननीय लाला लाजपतरायजी कृत
उर्दू पुस्तक का हिन्दी अनुवाद।

अनुवादक—
मा० हरदासिंहजी (बेदिल)

प्रकाशक—पं० शङ्करदत्त शर्मा।

नेमीचन्द जैन के प्रबन्ध से
शर्मा मैशीन प्रिंटिंग प्रेस मुरादाबाद में छपा।

द्वितीयवार १०००] सन १९२४ [मूल्य ।)

लाला हरजानन्द आर्य

* ओ३म् *

समर्पण

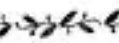

श्रीयुत परमपूज्य महात्मा हंसराजजी भूतपूर्व प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज के कर कमलों में श्रीयुत लाला लाजपत-रायजी लिखित कृष्णचरित्र (उर्दू भाषा) का हिन्दी अनुवाद सादर समर्पित करता हूं जिस भांति आप सदा से राष्ट्रभाषा हिन्दी के परम हितैषी रहे हैं उसी भाँति इस भेंट को भी सानुग्रह स्वीकृत कीजिएगा।

आपका कृपापात्र—

हरद्वारीसिंह।

1762

प्रस्तावना ।

मात्मा का कोट्यनुकोटि धन्यवाद है कि मैंने आज प्रतिज्ञा को पूरा किया, अर्थात् अपने प्रण के पूर्ण ं इस योग्य हुआ कि इस पुस्तक को अपनी जाति की ं उपस्थित करने में समर्थ हुआ।

ठक गण ! सन् १८६६ई०में मैंने शिवाजीके जीवनचरित्र मेका में कृष्णमहाराज के जीवनचरित्र लिखने का प्रस ा, उसके पश्चात् सन् १८६६ व ६७ई०के भयंकर अकाल ंश को आघेरा और अनाथरक्षा के कामसे मुझे इतना श भी प्राप्त न हुआ कि मैं इस पुस्तककी तय्यारीके लिये ों का अवलोकन करता। सन् १८६७ ई० के सितम्बर में रीने मुझे आनघेरा और अप्रैल सन् १८६८ ई० तक पलंग ें नसीबमें रहा। अपनी बीमारीके अतिरिक्त कई प्रकारके और भी आपड़े, जिससे कि बहुत काल तक पुस्तकाव-लोकन का अवसर न मिला तो भी सितम्बर सन् १८६८ई० में मैंने "महर्षि स्वामी दयानन्द और उनकी शिक्षा" लिखकर आप की भेंट की। उसके पश्चात् मैं इस पुस्तक की तय्यारी में लगा रहा, सुतरां आज मैं ढाई वर्ष के परिश्रम का फल आपके चरणों में उपस्थित करता हूं, परन्तु यह नहीं कह सका कि यह भेंट आपके योग्यहै या उस महान् पुरुष की हैसियत और पदवीके योग्यहै जिसका नाम इस पुस्तक के टाइटिलपर लिखा है तो भी यह कह सका हूं कि यदि मेरी इस पुस्तक से आपके चित्त में श्रीकृष्ण की जीवनी के संबन्ध में खोज की इच्छा उत्पन्न होवे और आप स्वयं स्वतंत्र ज्ञान वीन से कृष्ण महाराज की जीवनी की घटनाओं का खोज करें तो मैं

समझूँगा कि मेरा परिश्रम सफल हुवा और यदि इस से किसी आर्य्य समुदाय को भी यह निश्चय हो ज जो लाञ्छन श्रीकृष्ण जी की जीवनी पर लगाये जाते निर्मूल, असत्य और झूठे हैं तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा

मैंने भूमिका में उन पुस्तकों के नाम लिख दिये हैं मैंने इस पुस्तक के लिये घटना संबन्धी बातों को चु परन्तु उन पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने दो बङ्गाली महाश लिखित पुस्तकों से भी कुछ लाभ उठाया है और इसलि कर्तव्य है कि उन्हें धन्यवाद दूँ ! मैंने इस पुस्तक के के लिये (१) बाबू बलराम मलिक की पुस्तक कृष्ण और इज़म (२) बाबू धीरेन्द्रनाथ पाल की "लाइफ़ आफ श्री को पढ़ा और (३) मिस्टर ब्रोज साहब की 'मथुरा मिस (Memoir) को भी कहीं कहीं से देखा है। मेरी पुस्त प्रथम अध्याय (अर्थात् कृष्णमहाराज की जन्मभूमि पुस्तक नं० ३ पर अधिकतर निर्भर है। पुस्तक नम्बर मैंने अधिक सहायता ली है परन्तु न तो मैंने उसकी प्रणालीका अनुकरण ही किया और न केवल उससे चुनी हुई घटनाओं पर भरोसा ही किया है। साधारणतः मैंने सब घटनाओं को विष्णु पुराण, महाभारत और श्रीमद्भागवत से पड़ताल करके लिखा है, यदि किसी जगह केवल किसी दूसरे लेखकके विश्वास पर कोई घटना का उल्लेख किया है तो फुटनोटमें उन महाशय का नाम लिख दिया है। भगवद्गीता के श्लोकों के भाष्य के लिये मैंने साधारणतः मिसेज़ एनी बिसेन्ट के भाष्य से लाभ उठाया है परंतु हर एक श्लोक के भाष्य को मैंने असल पुस्तक से मिलान कर लिया है और जहां भाष्य में न्यूनाधिक परिवर्तनकी आवश्यकता प्रतीत हुई वहां पर किया है।

इसके अतिरिक्त शायद इस बात की भी आवश्यकताहै कि मैं कुछ शब्द अपनी भाषा व लेख के सम्बंध में भी कहूं। क्योंकि मैंने कई बार यह शिकायत सुनी है कि आर्य्य समाजिक उर्दू साधारणतः और मेरी उर्दू विशेषतः खिचड़ी होती है। एक मुसलमान मित्र ने तो ऐसा कहा कि हमने उर्दू को संयुक्त बना दिया है परंतु असल बात यह है कि आर्य्यसमाज की स्थिति से पहले उर्दू भाषा में हिंदू धर्मकी पुस्तकें बहुत थोड़ी थीं क्योंकि संस्कृत व हिंदी जानने वाले हिंदुओं ने कभी अपनी धार्मिक पुस्तकों को उर्दू में लिखने का उद्योग नहीं किया यदि किया भी तो केवल उर्दू अक्षरों का प्रयोग किया। आर्य्यसमाज ने इस आवश्यकता को अनुभव किया कि पञ्जाब व संयुक्त प्रांत की शिक्षितमंडली के लिये अपने धर्म्म पुस्तकों को उर्दू भाषा में तय्यार करके उर्दू अक्षरों में प्रकाशित किया जावे। मुसलमानों ने उर्दू भाषा में फ़ारसी व अर्बी के शब्दों का प्रयोग किया था क्योंकि साधारणतः उर्दू के लेखक फ़ारसी व अर्बी से विज्ञ थे और उन लोगों को मुसलमानों के धार्मिक विचारों को प्रगट करने के लिये फ़ारसी व अर्बी के शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती थी लेकिन जब सरकार अंगरेजी ने पञ्जाब और संयुक्त प्रांत में उर्दू अक्षरोंको अदालत सरकारी में प्रचलित किया और शिक्षा का प्रचार भी इन्हीं अक्षरों में प्रचलित हुआ तो इन अक्षरों के जानने वाले हिंदुओं की आवश्यकता को पूरा करने के लिये यह आवश्यक हुआ कि उन अक्षरों में ऐसी पुस्तकें तय्यार की जावें जिन में हिंदू धर्म की शिक्षा हो। यह पुस्तकें ऐसे लोगों को बनानी पड़ीं कि जिन्हों ने सरकारी स्कूलों में साधारण उर्दू फ़ारसी की शिक्षा पाई थी। जब उन्होंने अपने धर्म की छान बीन में

था धार्मिकशिक्षा में संस्कृत और हिंदी की पुस्तकों का अवलोकन किया और उन विषयों पर लैक्चर और व्याख्यान सुना तो उनकी जुबान पर बहुत से हिन्दी व संस्कृत के शब्द चढ़ गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने लैक्चरों इत्यादि में उन्हीं शब्दों का प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि लेख इत्यादि में भी उनके प्रयोग से न रुक सके और उनकी उर्दू एक विशेष प्रकार की उर्दू बन गई जिसमें जहां फ़ारसी व अर्बी के शब्द पाये जाते हैं तो साथ ही हिंदी व संस्कृत के शब्द भी मिलते हैं इसके अतिरिक्त मैं नहीं समझ सकता कि किसी मनुष्य को इस उर्दू पर क्या आक्षेप हो सकता है उर्दू वास्तव में भारतवासियों की भाषा का नाम है यद्यपि किसी किसी अवसर पर उर्दू और हिंदुस्तानी शब्द एकही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। मुसलमानी राज्य में मुसलमानी साहित्य का जोरथा और इसलिये पढ़े लिखे हिंदुस्तानियों की भाषा में फ़ारसी और अर्बी के शब्दों की अधिकता थी। जब कभी उनको गूढ़ विषयों के प्रगट करने के लिये विशेष शब्दों की आवश्यकता पड़ती थी तो वह मुसलमानी साहित्य से सहायता लेते थे जब अङ्गरेज़ी राज्य हुआ तो उस हिंदुस्तानी भाषामें अङ्गरेज़ी के शब्द आने आरम्भ हुए और इसी तरह हिंदुओं की भाषा में संस्कृत व हिंदी के शब्दों का रिवाज बढ़ने लगा। कोई वजह नहीं मालूम होती कि क्यों हिंदू लोग अपने धार्मिक विचारों के प्रगट करने के लिये अब मुसलमानी लिटरेचर की भाषा का प्रयोग करें और हिंदी व संस्कृत के शब्दों के स्थान में फ़ारसी व अर्बी के शब्द तलाश करें। भाषा वह है जो बोली जावे। बस, जब समय के हेर फेर से हिंदुओं की बोलचाल में अङ्गरेज़ी हिंदी संस्कृत के शब्दों का चलन होगया तो कोई कारण मालूम नहीं होता, कि वह

लेख भी उसी भाषा में न लिखे जावें जिस को वे बोलते हैं, भेद इतना ही है कि सरकार अंगरेज़ी फ़ारसी के अक्षरों को हिन्दुस्तानी भाषा के लिखने के लिये प्रयोग करती है और सरकारी स्कूलों में यह हिन्दुस्तानी भाषा फ़ारसी अक्षरों में शिक्षा दी जाती है इसकारण लाचार वश उन्हें फ़ारसी अक्षरों का प्रयोग करना पड़ता है। हम प्रामाणिक उर्दू जानने वाले उस्तादों के लेखों में हिन्दीके शब्दों का प्रयोग बता देते हैं। असल तो यह है कि हिन्दुओं के विचारों को प्रगट करते हुए हिन्दी शब्दों का प्रयोग आवश्यक है (देखो मौलाना मौलवी अल्ताफ़हुसेन हाली की मनाजात बेवा, बल्कि कुछ उस्ताद तो असल उर्दू उसको कहते हैं जिसमें अर्बी फ़ारसी शब्द बहुत कम हों या बिलकुल न हों। उर्दू में से फ़ारसी व अर्बी के शब्द निकाल दिये जावें तो शुद्ध हिन्दी रहजाती है। केवल भेद इतना है कि जो शब्द हिन्दी के साधारणतः प्रयोग में नहीं आते वह मुसलमान महाशयों को बुरे मालूम होते हैं और वे उनको उर्दू नहीं कहते परन्तु जो शब्द साधारण तौर पर प्रयोगमें आतेहैं उनको वह उर्दू समझते हैं। सुतरां जो हिन्दू अपने स्वजातीय भाइयों के लिये ऐसी पुस्तकें लिखते हैं जिन में उनके धार्मिक या जातीय विचार या अवस्थाओंका उल्लेख है उनमें हिन्दी व संस्कृत के शब्दोंका प्रयोग बेजा या अनुचित नहीं है। कैसे सम्भव है कि कोई हिन्दू हिन्दुओंके लिये पुस्तक लिखता हुआ कृष्ण व अर्जुन व युधिष्ठिर के व्याख्यानों का अनुवाद उर्दू भाषा में करे और कठिन धार्मिक विचारोंके प्रगट करनेके लिए फ़ारसी व अर्बीके कठिन शब्द तलाश करे। हिन्दू स्त्रियोंके व्याख्यानों का अनुवादकरता हुआ फ़ारसी व अर्बी के शब्दों का प्रयोग तो बहुत ही बुरा

मालूम होता है, बस ऊपर लिखी बातों से हमारे विचार में हमारी भाषा पर जो आक्षेप किया जाता है वह हमको कुछ जचता नहीं। यदि हम उद्योग करें तो हम मुसलमानी उर्दू में भी अपने विचारोंको प्रगट कर सकते हैं परंतु हमें ऐसा करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और न इस में कुछ लाभ ही प्रतीत होता है। वरंच इसके विपरीत यदि हम ऐसा करें तो बहुत से हिन्दू भाई हमारे लेखोंसे पूरा लाभ भी न उठा सकेंगे इसके अतिरिक्त यह प्रगट है कि पुस्तक लिखना और उन से द्रव्य कमाना या केवल भाषा का लालित्य दिखाना न हमारा पेशा है और न हमारा अभिप्राय है। हम तो अवकाश के समय अपने विचारोंको इस अभिप्रायसे जमा करते हैं कि जिन लोगों तक हम अपने विचारोंको व्याख्यानों द्वारा नहीं पहुंचा सकते उन तक अपने विचारों को लेख द्वारा पहुंचावें। यदि हम उस समय को जो बहुत कम होताहै उर्दू लालित्य की योग्यता व विद्वत्ता के दिखाने में खर्च करें तो शायद हम से कुछ भी न बन सकेगा।

असल तो यह है कि भारतवर्ष की तमाम देसी भाषाएँ इस समय परिवर्तन हो रही हैं। इन में नये नये विचारों के प्रगट होनेके लिये भिन्न २ भाषाओंके आश्रय की आवश्यकता है बस किसी तरह भी यह आशा नहीं हो सकती कि लोग उर्दू फारसी की पवित्रता को स्थित रखने के लिये आवश्यकताओं को पूरा करने की उस सुगम प्रणाली को हाथ से छोड़ दें और देसी लिटरेचर की उन्नति को रोक दें।

इस पुस्तकका जब लिखना आरम्भ किया गया तो प्रथम ये विचार सामने रक्खा गयाथा कि मुहावरे की उर्दू लिखी जावे परंतु फिर हमने देखा कि प्रथम तो मुहावरे की उर्दू

जानने का दावा हम नहीं कर सकते और दूसरे हमें हिन्दी शब्दों से रुकने के लिये बहुत उद्योग करना पड़ेगा जिसमें हमारा बहुत समय लगेगा। इसलिये हमने इस उद्योग को छोड़ दिया और जो शब्द हमारी लेखनी में आये लेखबद्ध कर दिये।

अन्त में हम कुछ शब्द अपने पुस्तक के मूल्य के सम्बंध में प्रगट कर देना चाहते हैं क्योंकि हमारे बहुत से मित्रों को यह शिकायत रहती है कि हम अपनी तुच्छ पुस्तकों को बहुत मंहगी बेचते हैं। प्रथम तो हम अपने मित्रों को यह जताना चाहते हैं कि हमारी सब पुस्तकों का मूल्य अन्य भाषा अर्थात् बंगाली या अङ्गरेज़ी या उर्दू में छपी पुस्तकोंसे सस्ता है। दूसरे यह कि पबलिक की सहायता इससे प्रगट होती है कि हमारी अच्छी से अच्छी पुस्तक में अभी तक हमको हानि रही है। पूरी लागत भी अभी वसूल नहीं होने पाई। यद्यपि यह हमारा विश्वास है कि हमारी पुस्तक को हजारों मनुष्यों ने पढ़ा है तथापि अब तक एक एडिशन का समाप्त न होना भी सर्व साधारण की कदर को जाहिर करता है। अतएव ऐसी अवस्था में यह आशा रखना उचित नहीं है कि समय और मस्तिष्क परिश्रम के अतिरिक्त हम पुस्तकोंके छपाने के लिये रुपया भी अपने पास से खर्च करें। इस विषयमें पञ्जाब की हिंदू पबलिक को बङ्गाल की पबलिक से या मुसलमान महाशयों से कुछ शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में मैं यह तुच्छ भेंट अपनी जाति की सेवा में समर्पित करता हूं।

लाजपत राय

लाहौर ६-११-१९००

भूमिका।

संसार में कौन सी ऐसी जाति है जिसने वीरों की देवता के तुल्य वंदना नहीं की है और जिन्हें सृष्टि में एक साधारण जीवधारी विचार कर भी सृष्टिकर्ता का उच्चासन (उन्हें) नहीं प्रदान किया है, मनुष्य में यह बात स्वाभाविक है कि वह अपने से श्रेष्ठ शक्ति वा कुशलता की ओर झुकता है और जब वह किसी पुरुष विशेष को अपने से बढ़कर योग्य देखता है और उसकी योग्यता वा कुशलता के यथोचित विवेचन करने में अपने को असमर्थ देखता है तथा अपने अंतःकरण को उसकी महान् शक्ति से आकर्षित पाता है, तो वह स्वतः उस पुरुष विशेष को ऐसा आदि पुरुष विचारने लगता है, जो अपने गुण और लक्षण में एक है, और जिसका न कोई उत्पन्न करने वाला है और न संहार ही कर सकता है। अन्तर केवल इतना ही है कि शिक्षित और धर्मिष्ट जातियां (यद्यपि इनका सत्कार, पूजन के दरजे से कम नहीं होता) इन पुरुषों में और उनके उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर में भेद की सीमा को मिटाने नहीं देतीं परन्तु जो जातियां अनपढ़ होने के कारण अज्ञानरूपी अंधकार में फंसी हैं, उन्हें इसका ज्ञान वा भेदाभेद का विचार दृष्टिगोचर रखना किसी प्रकार संभव नहीं—यों तो मुख से सब कुछ कहदें और उच्च स्वरसे मानवपूजन की निन्दा करें परन्तु यथार्थ में कोई भी इस दोष से बचा हुआ प्रतीत नहीं होता, इस सृष्टि की सारी जातियां एक न एक प्रकार से मानवपूजक हैं। संसार की कोई विद्या वा शिक्षण पद्धति ऐसी नहीं, जो इस विषयकी शिक्षा न देती हो। इसकी पुष्टि में उन जातियों के सम्मुख भी

बहुत से दृष्टान्त उपस्थित किये जाते हैं, जिन्हें इस बात का गर्व है कि हम तो एक परमेश्वर के उपासक हैं। अङ्गरेजी भाषा का प्रसिद्ध लेखक मि० कारलाइल जिसने कि लालित्य मय शब्दजटित हार पिरोकर उनमें अपने पवित्र विचारों के अमूल्य नग जड़े हैं। जिसने शब्द रूपी मोतियों को इस प्रकार लालित्य रूपी सम्बन्धमें संगठित किया है कि यह पृथ्वी की तह में से खोदे हुये हीरे और लालों से जियादा मूल्यवान् और प्रकाशमान प्रकट होते हैं अपने उस सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "हीरो वर्शिप" में लिखता है कि "संसारके महापुरुष वास्तव में उस महान् अग्नि की एक चिंगारीके सदृश हैं जिसके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशमानहै, और जिसके तापसे खनिज, उद्भिज्ज तथा मनुष्य, पशु आदि समस्त संसार स्थित है। जिसकी दाह मानों दया की वर्षा है और जिसकी ठंडक मानों हृदय में उमंग उत्ते जन और आकर्षण उत्पन्न करने वाली है"।

२ वैदिक महापुरुष।

उन्नीसवीं शताब्दी के इस अङ्गरेजी विद्वान् ने जो भाव इस पुस्तक में प्रकट किये हैं, वह लाखों वर्ष आर्य्यावर्त में आर्य्य ऋषियों द्वारा उनकी निज पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं—संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थों में 'अग्नि' शब्द का प्रयोग (जिसका प्रयोग वैदिक ग्रन्थों में अद्वैत परमात्मा के लिये हुआ है) विद्वान् ऋषि, मुनि, आप्त पुरुषों और महात्माओं के लिये हुआ है। यह भाव ऐसा सर्वव्यापक है कि मानों प्रत्येक भाषा और प्रत्येक देशवासी इसी रंग में रंगा है। संस्कृत भाषा में देव वा देवता परमात्मा के लिये आता है। परन्तु महान् पुरुषों के लिये भी

इस शब्द का प्रयोग होता है । अंग्रेजी में गाड के अर्थ परमेश्वर के हैं; परन्तु उसी 'गाड' शब्द का बहुवचन 'गाडस्' देवताओं के लिये आता है। मुसलमान मतावलम्बी हजरत मुहम्मद को नूर इलाही कहते हैं। उधर ईसाई हजरत मसीह को 'खुदा का बेटा' मानते हैं । बौद्धमत वाले महात्मा बुद्ध को 'लार्ड' कहके पुकारते हैं । इसी प्रकार आर्यगण श्रीराम और श्रीकृष्ण को अवतार कहते हैं। हिंदुओं में आप्त पुरुष, ऋषि, मुनि और विद्वानों के आदर और पूजन की परिपाटी वैदिक समय से चली आती है । वेदमंत्रों में स्थान २ पर आज्ञा दी गई है कि तुम धर्मात्मा, और आप्त पुरुषों का सत्कार करो और उनकी पूजा को अपना परम धर्म समझो। आर्य लोगों के नित्य कर्म में भी विद्वानों और आप्त पुरुषों के पूजन को एक मुख्य कर्तव्य कहा है और हर एक यज्ञ और उत्सव पर इसका करना आवश्यक समझा है । ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् और दूसरे आर्ष ग्रंथों में इस विषय की पूरी २ विवेचनाकी गई है । पर किसी वैदिक ग्रंथमें किसी महात्मा वा आप्त पुरुष को परमात्मा का पद नहीं दिया है ।

३ अवतारों की यथार्थता ।

आर्य्यावर्त में सबसे पहिले बौद्ध धर्मवालों की शिक्षा से लोगों को परमात्मा के अस्तित्व में एक महान् शंका उत्पन्न हुई । और इस पवित्र भूमि के रहने वाले परमात्मा की उपासना के उच्चासन से गिर कर मानवपूजन के अंधकार रूपी पाश में आफंसे। उपासना की यह परिपाटी जनसाधारण में ऐसी प्रचलित हुई कि वैदिक धर्मोपदेशकों ने भी बौद्ध धर्मानुयायी बनना अपने लिये हितावह विचारा। ब्राह्मणों ने

महात्मा बुद्ध के स्थान में श्रीरामचंद्र और श्रीकृष्ण को देवता बनाके अवतारों की पदवी दी। धीरे २ इस भाव ने यहां तक ज़ोर पकड़ा कि कुछ काल पश्चात् पौराणिक भाषा के समस्त ग्रंथों में इसी की चर्चा देख पड़ने लगी और चारों ओर से अवतार ही अवतार प्रगट होने लगे। कवियों ने जो महान् पुरुषों के जीवन लिखने में अपने उच्च विचारों को प्रगट किया था और खगोल विद्या को पढ़ कर सब प्राकृतिक दृश्यों को देखकर काव्य बद्ध करने में जो समय व्यतीत किया था, उन कविजनों के परिश्रम और संस्कृत विद्या को पौराणिक समय के धार्मिक पुस्तक रचयिताओं ने समयानुकूल परिवर्तन कर दिया।

बस फिर क्या था विद्या तथा धर्म के तत्ववेत्ताओं ने इस परिपाटी की ऐसी चाल चलादी कि लोक परलोक के प्रायः सभी सिद्धान्त चाहे अच्छे हों या बुरे, परमेश्वरकृत काव्यों में सम्मलित कर लिये गये और राजन साधारण को कारण और कर्त्ता में भेदाभेद का विचार न रहा। महान् पुरुषों के जीवन चरित्र इस साँचे में ढालेगये, कि दूसरी जाति वाले उनको मिथ्या वा बनावटी और अपवित्र समझने लगे।

४ श्रीकृष्ण।

कवियों के अति प्रेम के उमंग मानसिक भावों की चंचलता और विश्वास की निर्बलता ने जो अपमान और अन्याय श्रीकृष्ण महाराज पर किया है उसका दूसरा दृष्टान्त किसी भाषा में भी नहीं दिखाई देता—यद्यपि श्री तुलसीदास जी ने अपनी भक्ति के तरंग में श्रीरामचंद्रजी पर भी वैसे ही आक्षेप किये हैं, परंतु इन्हों ने उनको उस दर्जे तक

नहीं पहुंचाया है जहां तक पौराणिक लिट्रेचर वालों ने श्री-कृष्ण जी को पहुंचादिया है। इसका कारण यह ज्ञात पड़ता है कि श्रीरामचंद्र को श्रीकृष्ण के समान उपदेशक की उपाधि नहीं दी गई श्रीराम को उनकी विमाता कैकेयी ने अपनी ईर्षा और द्वेष से वर बना दिया। इसलिये कवियों ने भी पितृभक्ति और भ्रातृस्नेह का मुकुट उनके माथे पर रख दिया। परंतु यह मुकुट उसके मस्तक पर अधिक शोभायमान होता है जो प्रत्येक प्रकार से धार्मिक जीवन का आदर्श हो अर्थात् शेष वस्त्र भी ऐसे उपयुक्त होने चाहियें जिससे मुकुटकी सौंदर्यता भली प्रकार से प्रकाशित हो, श्रीराम का धार्मिक जीवन यद्यपि एक आदर्श स्वरूप है किंतु इनके और श्री कृष्ण के धार्मिक जीवन में बहुत अन्तर है। श्रीकृष्ण जैसे सच्चे प्रेम, रसिकता और वीरता में आदर्श माने जाते हैं वैसे ही सच्चे धर्मोपदेशक भी थे। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ था जबकि वैदिक धर्म का बेड़ा मिथ्या वैराग्य और फिला-सोफी के भंवर में घूमता हुआ एक ओर बहा जा रहा था। धर्म अपने यथोचित स्थान से गिरा दीख पड़ता था, कभी मिथ्या वैराग्य और कभी शुष्क भ्रांतिमय फिलासफी का पलड़ा भारी हो जाता था। इनको ऐसे समय में धर्मोपदेश करना पड़ा था, अतएव इनका जीवन धर्मोपदेशक का एक उच्च आदर्श है और इस लिये हम देखते हैं कि भारतवर्ष में कदाचित् एक भी पुरुष ऐसा नहीं जिसपर श्रीकृष्ण की शिक्षा वा उपदेश का कुछ असर न पड़ा हो—सब ही श्री कृष्ण के नाम की दुहाई देते हैं और उनके वचन को प्रमाण मानते हैं। हमारा यह कथन अत्युक्ति न होगा कि भारत का धार्मिक आकाश इस समय भी श्रीकृष्ण के धर्मोपदेशों से प्रकाशमय दीख रहा है।

५ बीस वर्ष पहले श्रीकृष्ण के बारे में लोग क्या विचारते थे ?

अभी बीस वर्ष नहीं बीते जब हम सरकारी पाठशालाओं में शिक्षा पाते थे उस समय श्रीकृष्ण उन तमाम अपवित्र बातों का कर्ता माने जाते थे जो कृष्णलीला या रासलीला में दिखाई जाती हैं उस समय श्रीकृष्ण हमारी दृष्टि में तमाशबीन, विषयी, और धूर्त दीख पड़ते थे और हम विचारते थे, कि भारतवासी मात्र की सामाजिक निर्बलता इन्हीं की अश्लील शिक्षा का फल है। आर्य्यधर्म्म के विपक्षियों ने श्रीकृष्णके विषयमें ऐसी ऐसी गप्प उड़ा रक्खी थीं हमारे हृदय में उनके लिये सम्मान के भाव का उदय होना तो दूर रहा हम उनके नाम से दूसरों के सम्मुख अपने को लज्जित विचारने लगते थे और भीतर ही भीतर उस पवित्रात्मा के नाम से घृणा करने लग गये थे। परन्तु जब पाठशाला से छुट्टी मिली और मुल्लाओं के पंजे से जान बची संकीर्ण और अंधकारमय कोठरी से निकल कर प्रकाशमय मैदान में आये और वहां ज्ञान रूपी वायु का झोंका लगा तो दिमाग़ में एक विलक्षण परिवर्तन का संचार होने लगा।

६ मानसिक भावों में परिवर्तन।

इस संकीर्णता से निकल कर बाहर मैदान में आते ही मानसिक शक्तियां कुछ ऐसी विस्तृत हुईं कि वे गूढ़ और तत्व विषयों के मननकी ओर झुकने लगीं और झट मेरे कान में भनक पड़ी कि हैं ? एक ओर तो श्रीकृष्णचंद्र के नाम के साथ ऐसी अश्लील बातें जोड़ी जाती हैं, उधर उन्हीं को उस जगत्प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीता' का रचयिता कहा जाताहै। यह

पुस्तक अपने विषय की गूढ़ता, सच्चे उपदेश, भाषा की सरलता, भक्ति और प्रेम में संसार के मनुष्यकृत ग्रंथों में अद्वितीय है और जिसकी अलौकिक लेखप्रणाली अपना आदर्श आपही कही जासकती है। कानों में यह भनक पड़नी थी कि साथ ही किसी ने उत्तर दिया, कि जो नीति और आध्यात्मिक विद्या का ऐसा उपदेशक हो वह ऐसा तमाशबीन, विषयी और धूर्त नहीं होसकता जैसा कि कृष्ण-लीला में दर्शाते हैं। हमारे हृदयमें अभी इस भावका अंकुरमात्र ही था और अभी भली भांति जड़ नहीं पकड़ सका था कि एकदूसरी भनक सुनाई दी और वह यह थी, कि श्रीकृष्ण चन्द्र पर विषयी होने का जो कलंक लगाते हैं वह केवल कवियों का हस्तक्षेप है। इनको किसी प्रकार वास्तविक घटना नहीं कह सकते। फिर इनके अन्तर्गत ऐसे प्रमाण पाये जाते हैं जिससे सिद्ध होता है कि इन लोगों (कवियों) ने अपनी इच्छानुकूल उन्हें अपना लक्ष्य बना लिया है। निदान यह भाव ऐसे परिपक्व होते गये कि कुछ कालोपरान्त उनके हृदय पर श्रीकृष्ण की बुद्धिमत्ता और नीति ने अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया।

अब वह समय आन पहुंचा है कि कोई शिक्षित मनुष्य इस बात पर विश्वास नहीं करता कि श्रीकृष्ण के आचरण वास्तव में वैसे ही थे जैसा कृष्णलीला में दिखलाते हैं। धर्म्म विषयक चाहे परस्पर कितना ही विरोध हो पर शिक्षित मण्डली में अब एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा जो उनके नाम के साथ उन निर्लज्ज बातों को मिश्रित समझता हो, जो अशिक्षित मण्डली अब तक उनके माथे मढ़ती है। पुराने फैशन के पौराणिक धर्मनिष्ठ वाले भी इस यत्न में हैं कि श्रीमद्भागवत

में से प्रेम और भक्ति का निचोड़ निकालें और उससे यह सिद्ध करालें कि उनकी मोटी बातों की तहमें पवित्र प्रेम और अमृतरूपी भक्ति के अमूल्य रत्न दबे पड़े हैं।

इस प्रकार हरएक पुरुष इस अनुसन्धान में यत्नवान् होता है कि उसकी तहसे दुर्लभ और अमूल्यरत्न खोज निकाले और उस महात्मा के जीवन की घटनाओं को इधर उधर से एकत्र करके जीवनचरित्र के रूप में प्रकाशित करे। यह बात प्रमाणित है कि पूर्व काल में जीवनचरित्र लिखने की परिपाटी न थी इसी से श्रीकृष्ण का कोई जीवनवृत्तान्त हमारे लिट्रेचर में मौजूद नहीं। इसलिये उनके जीवन की कहानी क्रमानुसार लिखना मानों उन कवियों के हस्तक्षेपों और बहु विश्वासों के संग्रह से उन वास्तविक घटनाओंका निचोड़ निकाल कर अलग करना है जिनको हम युक्तिसंगत कहसकें और जिनके क्रमानुसार संग्रह को हम जीवनचरित्र की पदवी दे सकें।

७ पुराणों की प्राचीनता।

श्रीकृष्ण के नाम से जितनी घटनायें जन साधारण में प्रचलित हैं उन सब के कारण पुराण हैं और हिन्दू धर्म ने इन्हें उनके प्रमाणपर सच्चा मान लिया है। इसलिये सबसे पहिले यह अनुसन्धान करना उचित होगा कि इन पुराणों को कहां तक ऐतिहासिक होनेका गौरव प्राप्त है या उनके लेख कहाँ तक विश्वास योग्य हैं।

(अ) प्राचीन आर्यजाति ऐतिहासिक विद्या से अनभिज्ञ नथी।

परन्तु अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से प्रकट करने से पूर्व हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि हम इस बात के मानने

वाले नहीं हैं कि प्राचीन काल में यद्यपि आर्य्य जाति विद्या, सभ्यता और दर्शन शास्त्र में सर्व श्रेष्ठ मानी जाती थी और सब शिल्प विद्या आदि का वर्णन संस्कृत के लिटरेचर में अबतक पाया जाता है। परन्तु यह सब कुछ होते हुवे भी ऐतिहासिक विद्या से पूर्ण अनभिज्ञ थी और उसमें न इतिहास पढ़नेकी रुचि थी और न लिखने की परिपाटी थी।

असल बात यह है कि संस्कृत लिटरेचर की वर्तमान दशा देखकर हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन आर्य्य लोग अमुक अमुक विद्या और शास्त्र में निपुण थे पर निर्णय के साथ यह नहीं कह सकते कि वे उनके अतिरिक्त अमुक विद्या से निरे अनभिज्ञ थे। प्राचीन आर्य्य सभ्यता को इतना समय व्यतीत होगया है कि उसका यथार्थ अनुमान करना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य है। फिर इस ही अन्तर में यहाँ बहुतसे परिवर्तन हुए हैं इसलिये किसी विद्या विशेष के ग्रन्थोंके न मिलने से यह परिणाम निकाल लेना कि पुराने आर्य्य लोग उस विद्या से अनभिज्ञ थे, युक्तिसंगत नहीं। परमेश्वर जाने कितने अमूल्य रत्न पुरानी इमारतों के खंडहरों में दबे पड़े हैं और कितने तो भूमिसात ऐसे समागये हैं कि अब उनका खंडहर के रूप में भी दर्शन होना दुर्लभ है और शायद अभी बहुत से ऐसे हैं जो ब्राह्मणों के बेस्टनों में पड़े सड़ रहे हैं उन बेचारों को यह भी ज्ञान नहीं कि इन फटे पुराने जीर्ण ग्रन्थोंमें कैसे उच्चतम भाव पड़े नष्ट हो रहे हैं। जिनके जानने के लिये आधुनिक शिक्षित संसार लाखों रु० खर्च करने के लिये उद्यत है। प्राचीन आर्य सभ्यता के विषय में अनुसन्धान आरंभ होगया और लोग इन सब रत्नों को खोद कर निकाल रहे हैं। ऐसी अवस्था में निर्णय सहित यह कथन करना असम्भावित प्रतीत

होता है कि प्राचीन आर्य्य जाति अमुक विद्या से अनभिज्ञ थी इसलिये हम पुनः यही कहते हैं कि वर्तमान लिट्रेचर को देख कर कभी यह निर्णय नहीं किया जासकता कि प्राचीन आर्य्य इतिहास विद्या से अनभिज्ञ थे। हमारे लिट्रेचर में अभी ऐसे प्रमाण मौजूद हैं जिनसे यह परिणाम निकाल सकते हैं कि प्राचीन समय में इतिहास का पढ़ना और लिखना विशेषतया गौरव दृष्टि से देखा जाता था और विद्यारसिकों की एक विशेष मण्डली का यही काम था कि राजा और महाराजों के दरबार में प्राचीन कथाओं को सुनाया करें।

प्राचीन ग्रन्थों ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और पौराणिक समय के लिट्रेचर में इस विषय के अनेक प्रमाण उपस्थित हैं जो वैदिक लिट्रेचर में जहाँ जहां भिन्न२ विद्याओं और शास्त्रों का वर्णन किया है वहाँ २ पुराण और इतिहास का शब्द भी मिलता है इससे यह परिणाम निकलता है कि उस समय पुराण और इतिहास एक पृथक् लिट्रेचर का नाम था जिसे आजकल ऐतिहासिक लिट्रेचर कहते हैं। प्रमाण के लिये हम यहाँ कुछ उद्धृत करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद्में जो दस उपनिषदों के अन्तर्गत है और जिसको श्री स्वामी शंकराचार्य व श्री स्वामी दयानंद और अन्य विद्वानों ने प्राचीन माना है। एक स्थान पर भिन्न २ विद्याओं का वर्णन करते हुये इस प्रकार का लेख है:-

स होवाच। ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणꣳचतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमम्।

(१) अर्थात् भगवन्! ऋग् यजुः साम और अथर्व को

जानता हूं और इसके अतिरिक्त इतिहास और पुराण से भी विज्ञ हूं।

(२) एक स्थान पर शतपथ ब्राह्मण (१४-६-१०-६) में कहा गया है :—

ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यातानि ॥

अर्थ—ऋग् यजुः साम अथर्ववेद इतिहास पुराण उपनिषद्, सूत्र, श्लोक और उनके व्याख्यान आदि।

(३) तैत्तिरीय आरण्यक में दूसरे आरण्यक के नवें श्लोक में लिखा है :—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः।

अर्थात्—वेद इतिहास पुराण गाथा आदि

(४) इसी प्रकार मनुस्मृति में तीसरे अध्याय के २३२वें श्लोक में भी व्याख्यान इतिहास और पुराण शब्द कई स्थान पर आये हैं रामायण, महाभारत और पुराणों के पढ़नेसे विदित होता है कि पुराकाल में इतिहासवेत्ताओं और इतिहासलेखकों के अतिरिक्त एक ऐसी मंडली होती थी जिनका कर्तव्य यही होता था कि वे राजदर्बार में प्राचीन घटनाओं और राजों महाराजों तथा वीर योद्धाओं के चरित्र सुनाया करें। महाभारत में स्थान स्थान पर आया है कि सूत महाराज ने अमुक अमुक वृत्तान्त वर्णन किया।

(५) संस्कृत का प्रसिद्ध कोशप्रणेता अमरसिंह पुराण शब्द की व्याख्या करता हुआ कहता है कि पुराण के पांच लक्षण हैं। या यों कहिये कि पुराणों में पांच प्रकार के विषय होते हैं।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिच।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात्—सृष्टि की उत्पति का वर्णन, सृष्टि विशेष का वृत्तान्त, प्रसिद्ध घरानों का इतिहास, भिन्न २ समय का वर्णन और महापुरुषों के जीवनचरित्र।

(६) विष्णुपुराण के तीसरे खण्ड के ६ठे अध्यायके १६वें श्लोक में इतिहास को चार भाग में विभाजित किया है।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पसिद्धिभिः। पुराणं संहिताञ्चक्रे पुराणार्थ विशारद॥

अथर्ववेदवक्ता व्यास ने एक पुराण संहिता लिखी है, जिसमें चार प्रकार के विषय थे अर्थात् १ आख्यान, २ उपाख्यान, ३ गाथा और ४ कल्पसिद्धि।

१ आख्यान उसको कहते हैं जिसे वर्णन करने वाले ने निज नेत्रों से देखा हो।

२ उपाख्यान उन घटनाओं को कहते हैं जिन्हें वर्णन करने वाले ने अन्य मनुष्यों से सुनकर लिपिबद्ध किया हो।

३ गाथा उन गीतों का नाम है जो पूर्व जनों की बाबत गाये जाते हों।

४ कल्पसिद्धि उस परिपाटी से तात्पर्य्य है जो श्राद्ध करने में बर्ती जाती है।

उपर्युक्त प्रमाणों के होते हुए निश्चित रूप से यह कथन करना कि प्राचीन आर्य्य लोगों को इतिहास मालूम न था और उनके समय में इतिहासलेखकों का कुछ मान न था इस प्रकार का कथन है कि जिसको स्वीकार करने के लिये हम कदापि उद्यत नहीं। हम ऊपर कह आये हैं कि समय के परिवर्तन से यदि संस्कृत भाषा में किसी शास्त्र विशेष का लोप हो गया हो तो उससे यह परिणाम निकालना कि उस भाषा (संस्कृत) में उस शास्त्र का कभी अस्तित्व ही न था सर्वथैव मिथ्या है हमारे पास इस प्रश्न के लिये बहुत प्रमाण हैं जैसे प्राचीन लिट्रेचर की बहुत सी पुस्तकों का कुछ पता नहीं। आर्य्यों के धर्मपुस्तक (अर्थात् ब्राह्मण, सूत्र और स्मृतियां) भी काल के हस्तक्षेप से रक्षित नहीं रही हैं ऐसी दशा में पुराणों और इतिहासों का लोप हो जाना और इस समय न मिलना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। अतएव हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि प्राचीन आर्य्यों के समय में इतिहास और जीवनचरित्र विद्यमान थे और उनको इतिहास और गाथा कहते थे। अब यह प्रश्न उठता है कि जो पुस्तकें वर्तमान काल में संस्कृत में पुराणों के नाम से प्रसिद्ध हैं उन्हें ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है वा नहीं ? यदि नहीं तो कारण क्या है ?

(आ) पुराणों का ऐतिहासिक गौरव।

हम निःशंक यह कहने को उद्यत हैं कि वर्तमान पुराणों को ऐतिहासिक गौरव प्राप्त नहीं है। स्वयं उन्हीं पुराणों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि वह प्राचीन लिट्रेचर के पुराण और इतिहास नहीं है वरञ्च आर्य्य जाति के समय में रचे गए हैं और उनमेंसे बहुत से तो उस समय लिखे

गए हैं जब आर्य्यजाति अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता को खो बैठी थी और अपने धर्म और कर्म को नष्ट करके 'हिन्दू' के कलंकित नाम से पुकारी जाती थी, जब कि उसको अपने आपको, अपने धर्म का, अपनी मानमर्यादा तथा अपनी स्त्रियों के सतीत्व को संरक्षित रखने के लिए अपने प्राचीन आचार व्यवहारों को त्याग करना पड़ा जिससे उनका प्राचीन धर्म कर्म ऐसा दब गया कि उसके चिन्ह भी शेष न रहते ? यदि अंग्रेजी राज्यके आगमन के साथ उस पर प्रकाश की आभा न पड़ती और उसके ऊपर से कूड़ा करकट के उठा देने का उन्हें (आर्य्य जाति को) अवसर न मिलता।

प्रत्येक सुशिक्षित आर्य्य जानता है कि पुराण १८ हैं परन्तु इनके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी पुस्तकें पाई जाती हैं जो उपपुराण के नाम से प्रसिद्ध हैं जो ऐसे किस्से कहानियों से भरी हैं कि कोई मनुष्य भी उन्हें पढ़कर सत्य वा वास्तविक नहीं कह सकता। उनका अधिकांश भाग तो ऐसी बातों से परिपूर्ण है जो बुद्धि और प्रकृति दोनों के विरुद्ध हैं और उनका अनुमान होना भी असम्भव है।

अंग्रेजी तथा आर्य्य विद्वानों ने सहमत होकर यह व्यवस्था दी है कि वर्तमान पुराण वह पुराण नहीं हैं जिनका वर्णन उपनिषदों वा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है उन अंग्रेजी पुराणतत्ववेत्ताओं ने वर्तमान पुराणों का समय निश्चय किया है जिसके मानने से कदापि यह परिणाम नहीं निकलता कि वर्तमान काल में से कोई भी विक्रम संवत् के बहुत पश्चात् के हैं इन में से बहुत पुराणों का समय तो १४ वीं वा १५ वीं शताब्दी ईस्वी तक निश्चय किया गया है।

इसके अतिरिक्त पुराणों में बहुत से ऐसे प्रमाण मिलतेहैं जिनसे सिद्ध होताहै कि प्राचीन पुराण तो लुप्त हो गए हैं और वर्तमान पुराण आधुनिक समय में बनाये गये हैं।

(१) मत्स्यपुराण में ब्रह्मवैवर्तपुराण का वर्णन करते हुवे यों लिखा है :—

नं० १

अर्थ—"वह पुराण जिस को सूतनी ने नारद के सामने वर्णन किया और जिस में कृष्ण का महत्व रथन्तर कल्प के समाचार और ब्रह्म वराह चरित्र वर्णित हैं अठारह हज़ार श्लोकों में है और उसका नाम ब्रह्मवैवर्त पुराण है"

अब यदि हम उस पुराण को देखें जो आजकल ब्रह्मवैवर्त पुराण के नाम से प्रसिद्ध है तो हमको ज्ञात होजायगा कि इस में न ब्रह्म वराह चरित्र है न रथन्तर कल्प के समाचार हैं और न उस में इस बात का ही कहीं पता लगता है कि इस पुराण को सूतनी ने नारद के सामने वर्णन किया था।

(२) विष्णु पुराण के ३ रे खंड के ६ ठे अध्याय के १६ से १६ श्लोक तक यों लिखा है :—

वेदव्यास ने (जो पुराणों की विद्या में पूर्ण थे) एक संहिता बनाई थी जिस में आख्यान उपाख्यान गाथा और कल्पसिद्धि थीं उन्होंने फिर पुराण अपने प्रसिद्ध शिष्य लोमहर्षण को दे दिया। सूत लोमहर्षण के ६ शिष्य हुए सोमती, अग्निवर्त्त, मित्रायु, सनस्पानिया, अकृतवरन और सूतनी। इन में से कश्यप, सूतनी और सन स्पानिया ने एक २ पुराण संहिता लिखी परन्तु सब का मूल वही संहिता थी जिसका नाम लोमहर्षण था और जिस को लोमहर्षण ने रचा था।

(३) अग्नि पुराण में भी यही लिखा है :—

नं० ३

अर्थ-लोमहर्षण सूत रचयिता ने व्यास से पुराण प्राप्त किया और सूरनी उसके शिष्य हुए और सनस्पानिया और दूसरों ने पुराण संहिताओं को रचा।

(४) इसकी पुष्टि भागवत पुराण के दसवें स्कन्ध के ३रे अध्याय के श्लोकों से होती है।

(४)

अर्थ-आरुणि, कश्यप, सूरनी, अकृतवरन, सनस्पानिया और हृतमेय ये ६ पौराणिक थे। उन्होंने मेरे पिता से पुराण सीखे जो स्वयं व्यास के शिष्य थे। और असल पुराण संहिता का अध्ययन करके उन्होंने एक एक पुराण रचा।

(५) भागवत के १२ वें स्कन्ध ७ वें अध्याय के ५ वें श्लोक पर टीका करते हुए पं० श्रीधर यह लिखते हैं :—

नं० ५

अर्थ-प्रथम व्यास ने संहिता लिखी और मेरे पिता लोम हर्षण को सिखाया उनसे आरुणि और दूसरों ने एक संहिता पढ़ी और उनका शिष्य मैं हूं।

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वर्तमान पुराणों के रचयिता के विचार में वेदव्यास जी की बनाई हुई पुराण संहिता वास्तव में एक ही थी और फिर उस से ६ संहिता हुईं वे६ संहिता कौन थीं और फिर वह क्या हुईं इसका कुछ पता नहीं चलता मि० रमेशचन्द्रदत्त, प्रोफेसर मैक्समूलर तथा अन्य यूरोपीय पुरातत्ववेत्तागण भी इस विषय में सहमत हैं कि प्राचीन पुराणों का कुछ पता नहीं चलता और वह लुप्त होगए हमको ऐसा प्रतीत होता है कि व्यास जी की बनाई

हुई पुराण संहिता (यदि वास्तव में व्यास जी ने कोई इस नाम की पुस्तक रची थी) तो वह बौद्धों के समय में नष्ट होगई और पौराणिक समय में दन्तकथाओं अथवा अन्य लेख प्रमाणों के आधार पर वर्तमान पुराणों की रचना हुई और उस समय से आज पर्यन्त इनमें बराबर कोई न कोई काट छांट होती चली आई है और समय समय पर कुछ पंडित महाशय अपने वाक्य चातुर्य्य वा बुद्धि का परिचय देने के हेतु टिप्पणी के तौर पर नवीन श्लोक इन में बढ़ाते रहे हैं। इन पंडितों के वंशवालों ने अपना कर्तव्य समझा कि पुराणों पर कुछ न कुछ अपनी बुद्धि लड़ावें और दासत्व के समय के दुर्बल विचारों को सम्मिलित करके उन को एक अनोखी खिचड़ी बनादी। यहांतक कि वर्तमान पौराणिक लिटरेचर विविध प्रसंगों का एक ऐसा संग्रह बन गया है कि उस में से वास्तविक तथा कल्पित रचनाओं का पृथक् करना कठिन ही नहीं वरन असम्भव सा हो चला है सम्भव है कि इस संग्रह में सच्ची घटनायें और उत्तम विचारों के मोती दबे पड़े हों।

परन्तु इस समय भी उनकी अवस्था ऐसी शोचनीय हो रही है कि उनमें से यथाक्रम किसी घटना का निकालना दुर्लभ सा प्रतीत होता है। प्राचीन आर्य्य सभ्यता का विद्यार्थी जिसने उपनिषदों की अद्वितीय विद्या तथा दर्शनों की फिलासोफी का अध्ययन करके प्राचीन आर्य्यों की सभ्यता के उत्कर्ष का विचार बाँधा है वह जब पौराणिक लिटरेचर तक पहुंचता है तो यकायक उस के भीतर ठंडी सांस निकलती है और यदि उसको आर्य्यों के नाम से कोई सम्बन्ध है वा उसके देह में वही प्राचीन आर्य्यों का रक्त फैल रहा है, जिन्होंने रामा-

वण और महाभारत में प्रसिद्धि पाईथी तो स्वतः उसके नेत्रों से आंसुओं की धारा वह निकलती है और वह चिल्ला उठता है कि 'हाय ! कहां थे और कहां गिर पड़े। वैदिक ऋषियों की सन्तान ! जिन्होंने शास्त्रों की फिलासोफी की रचना की थी उनकी ही सन्तान फिर पुराणों और तंत्रोंकी रचयिता बनीहैं !!

कदाचित् आपके मनमें यह प्रश्न उपस्थितहो कि श्रीकृष्ण के जीवनचरित्र को पौराणिक विषय के वादानुवादों से क्या प्रयोजन है। तो हमारा उत्तर यह है कि दुर्भाग्यवश श्रीकृष्ण का जीवन वृतान्त जो कुछ लोगों पर विदित है, अथवा हो सकता है उन सब का आधार पौराणिक लिट्रेचर पर है। पुराणों ने जातीयता को नष्ट करके मानुषी जीवन को निर्बल बनाने और नीति तथा आध्यात्मिक स्थिति से गिराने में जो काम किया है वह सब से अधिक उसी महान् पवित्रात्मा से सम्बन्ध रखता है जिनकी संक्षिप्त जीवनी लिखने के हेतु हमने आज लेखनी उठाई है।

श्रीकृष्ण पर पुराणों ने क्या क्या अत्याचार नहीं किये हैं, यहां तक कि संसार के एक महान् पुरुष को अपने नीचभावों के तीरों से ऐसा वेधित किया है कि उसकी सूरत ही बदल गई है। इन्हीं पुराणों के कृपाकटाक्ष से अधिकांश आर्य्य सन्तान का मन श्रीकृष्ण की ओर से ऐसा फिर गया है कि वे उन्हें विषयी और अपवित्र समझने लगे हैं और उसी पौराणिक शिक्षा के कारण बहुत से आर्य्य सन्तान शिक्षा पाकर मुसलमान और ईसाइयों के जालमें जा फंसे। कई बार अच्छे अच्छे सुशिक्षित पुरुषों के मुख से सुना गया है कि इस धर्म भूमि की कुल अवनति और आपदाओं के मूल श्रीकृष्ण जी ही हुए हैं जिन्होंने अपनी निकृष्ट शिक्षासे महाभारत का युद्ध

कराया हैं और देश को अस्तव्यस्त किया। जब हम किसी आर्य्यसन्तान के मुख से महात्मा कृष्ण के विषय में ऐसे अपमान सूचक शब्द सुनते हैं, हमारा कलेजा मुंहको आता है। परन्तु इन बिचारे नई सभ्यता वालों का क्या अपराध है? पौराणिक गप्पों ने इस प्रकार चक्कर में डाल दिया है कि उनके लिये अपने जातीय लिट्रेचर से सत्य और असत्य को पृथक् करना असंभव प्रतीत होता है। हमारे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि पुराणों में सत्य का लेश भी नहीं। हमारा मत है कि हमारी जाति का इतिहास कदाचित् कुछ पुराणों से मिल सके। परन्तु उपमा, अलंकार, यार लोगों की घड़न्त, और हर पीढ़ी के पंडितों के स्वेच्छाचार को इस लिट्रेचर में इतना अधिकार है कि उसमें से सच्ची घटनाओं का निकालना यदि असंभव नहीं तो बहुत ही कठिन है।

यों तो लगभग प्रत्येक पुराण में श्रीकृष्ण के जीवन के कुछ न कुछ हाल अवश्य मिलते हैं, परन्तु जिनमें यथाक्रम या सविस्तर वर्णन किया गया है. उनके नाम ये हैं।

ब्रह्मवैवर्त, भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण, इनके अतिरिक्त 'हरिवंश' नामक पुस्तक में भी श्रीकृष्ण के वृतान्त बहुत पाये जाते हैं और महाभारत में भी प्रायः कृष्ण का वर्णन आता है। साधारणतः तो पुरा तत्ववेत्ताओं का यह मत है कि इन कुल पुराणों में विष्णुपुराण और महाभारत सब से प्राचीन जान पड़ते हैं। परन्तु इनके विषय में भी यह निर्णय करना कठिन है कि इनका कौनसा भाग पुराना और कौन नया है।

प्रोफेसर विलसन (जिन्हों ने विष्णुपुराण का अंग्रेज़ी अनुवाद किया है) का मत है कि विष्णुपुराण में इस बात के

बहुतेरे प्रमाण मौजूद हैं कि उसमें दसवीं शताब्दी ईस्वी तक के वृतान्त पाये जाते हैं। परन्तु भागवत तथा अन्य पुराणों की अपेक्षा विष्णुपुराण अधिक प्राचीन है भागवत के विषय में तो यह झगड़ा चला आता है, कि कौनसी भागवत अठारह पुराणों में गिनती करने योग्य है। श्रीमद्भागवत या देवी भागवत ? वैष्णव अपने भागवत को असल पुराण बतलाते हैं, और शाक्त अपनी पुस्तक को। युरोपीय विद्वानों का मत है कि श्रीमद्भागवत तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई है। जो कुछ हो विद्वानों की दृष्टि में भागवत से विष्णुपुराण अधिक प्राचीन है। तथा उसमें अलंकार का मिश्रण भी कम होने से उसकी बातें अधिक विश्वसनीय मानी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त औरों की अपेक्षा विष्णुपुराण इस योग्य है कि घटनाओं के अनुसन्धान की नींव उसी पर रक्खी जाये। हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त और ब्रह्मपुराण भी विष्णुपुराण से पश्चात् के माने जाते हैं। प्रोफेसर विलसन की सम्मति है कि ब्रह्मवैवर्त गोकलिये गोसाइयों की रचना है और १५ वीं शताब्दी ईस्वी से पीछे की लिखी हुई है। अब रहा महाभारत सो उसके विषय में याद रखना चाहिये कि वर्तमान महाभारत असली महाभारत नहीं है। वा यों कहो कि कोई यह नहीं बता सकता कि वर्तमान महाभारत में कितने श्लोक असली हैं और कितने प्रक्षिप्त अर्थात् बाद में मिलाये गए हैं। जैसे पुराणों के विषय में साधारणतः यह कहा जाता है कि वे वेदव्यास जी के बनाए हुए हैं वैसे ही महाभारत के विषयमें भी यही कहा जाता है। परन्तु जैसा हम ऊपर कह आये हैं कि कम से कम वर्तमान पुराण व्यास के रचे हुए नहीं हैं वैसे ही हमारे पास इस बात के भी बहुतेरे प्रमाण हैं कि

आधुनिक महाभारत का कुल अंश व्यास जी का लिखाहुवा नहीं है। स्वयं महाभारत के आदिपर्व से प्रतीत होता है कि व्यास जी ने असल महाभारत रच कर वशम्पायन को सुनाया जिसने लोमहर्षण को उसकी शिक्षा दी और जिससे उसके पुत्र उग्रश्रवा ने सीखी। आधुनिक महाभारत के पहले दो श्लोकों में ग्रंथकर्ता (जो अपना नाम नहीं प्रगट करता) लिखता है कि वह उस महाभारत को लिखता है जो उग्रश्रवा ने कुलपति शौनक के यज्ञ (बारह वर्ष के यज्ञ) में ऋषियों के सन्मुख सुनाई थी।

आदिपर्व्व प्रथम अध्याय के आठवें श्लोक से प्रगट होता है कि स्वयं उग्रश्रवा को भी आठ हज़ार श्लोक याद थे और उस समय भी यह विवाद था कि असल महाभारत कौन से श्लोक से प्रारम्भ होता है।

आदिपर्व्व के निम्नलिखित श्लोक से प्रगट होता है कि व्यास जी ने असल में केवल चौबीस हज़ार श्लोक बनाए थे और फिर डेढ़ सौ श्लोकों में उन २४ हज़ार का संक्षिप्त आशय वर्णन कर दिया था।

श्लोकार्थ—व्यास ने असल में २४ हज़ार श्लोकों में भारत बनाई विद्वान् उसीको असल महाभारत कहतेहैं। परन्तु आधुनिक महाभारत में १ लाख ७ हज़ार ३ सौ ६० श्लोक हैं और २६८ श्लोकों में तो केवल सूचीपत्र लिखा गया है। इससे यह परिणाम निकलताहै कि आधुनिक भारतमें कितनी वृद्धि हुई हैऔर इसी से उसकी ऐतिहासिक प्रमाणता कितनी कम होगई है। बहुतसी हस्तलिखित प्रतियों में तो आदि के कई एक अध्याय लुप्तहैं जिससे प्रोफेसरमैक्समूलर मि० रमेशचन्द्र दत्तकी कवि-

तावद्ध महाभारत की भूमिका से यह परिणाम निकालते हैं कि यह सारा अध्याय पीछे से बढ़ा दिया गया है सारांश यह कि वर्तमान महाभारत में बहुत कुछ मिलावट है। फिर भी श्री-कृष्ण विषयक जो कुछ हम जानना चाहते हैं वह हम को इन्हीं दोनों ग्रन्थों से विदित हो सकता है (१) विष्णुपुराण (२) महाभारत अतएव हमारे देशवासियों को चाहिए कि कृष्णजी के चरित्र जानने के लिये इन दोनों पुस्तकों का ध्यानपूर्व्वक अध्ययन करें और फिर निष्पक्ष भाव से परिणाम निकालें कि क्या कवि की अत्युक्ति है और क्या वास्तविक है।

(८) वास्तविक तथा मिलावट का बोध कैसे हो सकता है हम सब इस बात को मानते हैं कि बौद्धधर्म ने श्री कृष्ण के पश्चात् जन्म लिया है। हिन्दू श्रीकृष्ण को द्वापर का अवतार मानते हैं और महाभारत की लड़ाई से कलियुग का आरम्भ बताते हैं। युरोपीय, प्राचीन तत्ववेत्ता कृष्ण का समय हज़रत मसीह से हज़ार वर्ष पहले ठहराते हैं। यह बात अनुसन्धान द्वारा मालूम होती है कि महात्मा बुद्ध का जन्म हज़रत मसीह से पांच सौ वर्ष पहले हुआहै अतएव यह परिणाम निकलताहै कि विष्णुपुराण और महाभारत में जहां जहां बौद्ध धर्म की शिक्षा के चिन्ह पाये जाते हैं वे भाग (महाभारत के) बौद्ध समयके पश्चात् के हैं। अतः ये विश्सवनीय नहीं हो सकते इस प्रकार संस्कृत लिटरेचर का अध्ययन हमें बताता है कि बौद्ध धर्म्म से पहले इस देश में मूर्तिपूजा प्रचलित न थी और न मूर्तियों के लिये मन्दिर बनाने की परिपाटी थी।

इसके लिये यह कहना युक्ति से बाहर नहीं हो सकता कि महाभारत और विष्णु पुराण के जिन भागों में मूर्तिपूजा और

मंदिरों का वर्णन है वे पीछे से मिलाये हुए हैं। हम भलीभांति कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म से पहिले के लिटरेचर में ईश्वर के अवतार लेने का कहीं वर्णन नहीं है और न उस समय तक हिन्दुओं की (तसलीस) त्रिमूर्ति (विष्णु, शिव और ब्रह्मा) की पूजा का प्रचार था वरन उस समय तक जाति के बन्धन भी ऐसे प्रबल न थे जैसे कुछ काल पश्चात् होगए हैं। इन बातों का विचार करके विष्णुपुराण तथा महाभारत में से बहुत कुछ सत्य निकल सकता है। जातिबंधन के विषय में इतना कह देना पर्य्याप्त होगा कि स्वयं व्यास जी महाराज (जो महाभारत के रचयिता हैं) जन्म से शूद्र थे जिससे सिद्ध होता है कि उस समय (जब व्यास जी ने भारत लिखा है) जाति का कुछ अधिक विचार न था यदि यहँ मानलें (और इसके मानने में संकोच भी न होना चाहिये) तो यह बात स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण का जन्म उस समय में हुआ जब कि देश में वैदिक धर्म्म अपनी असल पवित्रता में फैल रहा था जाति का विचार जन्म से न था मनुष्यों को परमात्मा का पद नहीं मिलता था। अवतारों की अभी उत्पत्ति नहीं हुई थी मूर्तिपूजा का नाम व निशान न था और हिन्दुओं की त्रिमूर्ति अभी स्थापित नहीं हुई थी। वैदिक कर्मकांड की प्रथा प्रचलित थी, बुद्धधर्म का जन्म न हुआ था, पर फ़िलासोफी ने लोगों का विश्वास निर्बल कर दिया था और उन्हें श्रद्धा होने लग गई थी। एवं इन बातों को सन्मुख रखकर और कवि कृत्रिम अलंकारादि का विचार करके यदि हम महाभारत तथा विष्णुपुराण में से कुछ यथार्थ बातें निकालना चाहें तो निष्फलता कदापि संभव नहीं। परन्तु साथ ही याद रखना चाहिये कि ये बातें बड़ी कठिनाई तथा अनुसन्धान द्वारा

मालूम हो सकती हैं-क्योंकि असल इतिहास का मिलना असंभव है।

उपरोक्त बातों के पश्चात् अब हम यह दिखलायेंगे कि क्या कृष्ण के जीवन काल का निर्णय करना वास्तव में असंभव है अथवा नहीं ?

(६) कृष्ण वा महाभारत का समय। महाभारत के समय का निर्णय करना तनिक कठिन है क्योंकि उस समय का कोई यथाक्रम इतिहास मौजूद नहीं परन्तु इस विषय में अनुसंधान द्वारा जो जो बातें अब तक जानीगई हैं पाठकोंके सूचनार्थ लिखते हैं।

(अ) यह बात हिन्दुओं में साधारणतः प्रसिद्ध है कि महाभारत की लड़ाई से कलियुग का आरम्भ हुआ है। और कृष्ण का जन्म द्वापर में हुआ है। कलियुग को आरम्भ हुए लगभग ५००० वर्ष माने जाते हैं. गणितशास्त्र वाले भी कलियुग का आरम्भ ४९९६ वर्ष से निश्चय करते हैं।

(क) कश्मीर का इतिहास राजतरंगिणी का लेखक लिखता है कि कलियुग के ६५३ वें वर्ष में गोंड नाम का राजा कश्मीरमें वर्तमानथा और युधिष्ठिर और कौरव चुन में थे, गोंड ने लगभग ६५ वर्ष राज्य किया जिससे युधिष्ठिर का समय लग भग २४० वर्ष मसीह से पूर्व स्थिर होता है अर्थात् आज से ४३०० वर्ष होते हैं।

(ख) विष्णुपुराण से मालूम होता है कि युधिष्ठिर का पोता परीक्षित राजा नन्द से १०१५ वर्ष पहले हुआ है। पहिला नन्द चन्द्र गुप्त से १०० वर्ष पूर्व हुवा चन्द्रगुप्तने मसीह से ३०१५ वर्ष पहिले राज्य पाया जिससे परीक्षित का समय १४१० वर्ष मसीह से पूर्व स्थिर होता है।

पु. [illegible] दण्डी
नन्दभी [illegible] लय
पु. [illegible] कमार
दयानन्द महिला म[illegible]

(ग) एक दूसरे स्थान पर विष्णुपुराण, परीक्षित का समय १२०० वर्ष कलियुगी ठहराता है जिस से परीक्षित का काल लगभग १९०० वर्ष मसीह से पूर्व सिद्ध होता है ।

(घ) महाभारत के पढ़ने से विदित होता है कि जिस समय महाभारत की लड़ाई हुई थी उस समय सबसे छोटा दिन और सब से बड़ी रात माघ के महीने में हुआ करती थी क्योंकि भीष्मपितामह सूर्य्य के (खते उस्तवा) दक्षिण मे चले जाने पर मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु अब २४ दिसम्बर को सब से बड़ी रात और सबसे छोटा दिन होता है ज्योतिष विद्या के जानने वाले बताते हैं कि इस परिवर्तन को हुए कम से कम ३४२६ वर्ष हुवे जिससे यह परिणाम निकलता है कि महाभारत को भी हुवे ३४२६ वर्ष से कम नहीं हुए अधिक चाहे कुछ और हों।

(च) ज्योतिषविद्या की सहायता से जो यह परिणाम निकलता है उसके विषय में मि० बालगंगाधर तिलक ने "ओरियन" नामक अपने ग्रंथ में बहुत कुछ तर्क वितर्क के पश्चात् लिखा है कि वह समय जबकि माघ मास मे सूर्य्य उत्तरायण में होता था बहुत प्राचीन सिद्ध होता है इसके अतिरिक्त प्राचीन संस्कृत लिट्रेचर में महाभारत के प्रायः (होरोज़) वीरों का वर्णन आता है जिससे युरोपीय पुरातत्वज्ञ सिद्ध करते हैं कि-महाभारत की असल लड़ाई इन ग्रंथों के रचे जाने से बहुत पहिले हो चुकी थी।

(१०) प्राचीन संस्कृत लिटरेचर में कृष्ण तथा अन्य वीरों का वर्णन।

पाणिनि ऋषिकृत अष्टाध्यायी के सूत्रों में युधिष्ठिर और कुन्ती तथा वासुदेव और अर्जुन के नाम आते हैं

जैसे आठवें अध्याय के तीसरे पाद के ६५ वें सूत्र में युधिष्ठिर शब्द आया है इसी तरह चौथे अध्याय के पहिले पाद के १७४ वें सूत्र में कुन्ती शब्द का प्रयोग हुआ है फिर इसी अध्याय के तीसरे पाद के ६८ वें सूत्र में वासुदेव तथा अर्जुन का नाम आता है।

प्रोफेसर गोल्डस्टकर की सम्मति है, कि पाणिनि मुनि ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों से भी बहुत पहिले हुए हैं श्री स्वामी दयानन्द की यही सम्मति है—ब्राह्मण ग्रन्थों में से ऐतरेय और शतपथ में परीक्षित सौर जन्मेजय का वर्णन आया है। जनमेजय पाण्डवों के प्रपौत्र का नाम था जिसके दर्बार में प्रथम महाभारत सुनाई गई इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय आरण्यक में श्रीकृष्ण का नाम आता है छान्दोग्य उपनिषद् में 'देवकी के पुत्र कृष्ण' का वर्णन है आश्वलायन गृह्य सूत्र में भी महाभारत के युद्ध का वर्णन आया है इसी तरह महर्षि पतंजलि के भाष्य में कई जगह आया है कि कृष्ण और वासुदेव ने अपने मामा कंस को मारा इत्यादि। यह भी याद रखना चाहिये कि व्यास छः दर्शनकारों में सबसे अन्तिम दर्शनकार हुआ है व्यास को वेदान्त दर्शन का कर्ता मानते हैं अब इन बातों के रहते यह निर्णय करना बड़ा कठिन है कि महाभारत की लड़ाई कब हुई। और महाभारत नाम का ग्रन्थ कब रचा गया और कौन से व्यास ने उसको बनाया।

तथापि यह परिणाम निकला, कि महाभारत की लड़ाई को हुए बहुत काल बीता और असल महाभारत ग्रन्थ लड़ाई से कुछ काल पीछे लिखा गया परन्तु इसके बाद कालान्तर में उसमें परिवर्तन होते रहे। यहां तक कि आज यह सब कुछ अन्धकारमय होगया है और हमारे लिए महाभारत की

लड़ाई तथा महाभारत नामक ग्रन्थ के रचे जाने का समय निर्णय करना भी असम्भव सा होगया है।

यदि वास्तव में महाभारत की लड़ाई उपनिषद तथा सूत्रों के समय से पहिले हुई और असल ग्रंथ भी उससे पहिले बना तो फिर इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान महाभारत में जितनी बातें उस समय के धर्म से विरुद्ध पाई जाती हैं वह सब कालांतर में मिला दी गई हैं और असल ग्रन्थकर्ता की लेखनी से नहीं निकली हैं।

(११) क्या यह कथा कल्पित है ?

बहुत पुरातत्ववेत्ताओं ने यह सम्मित स्थिर की है कि महाभारत की कथा कल्पित है और इस की घटनायें यथार्थ नहीं और बहुत से लड़ाई को यथार्थ पर उसके नायकों को कल्पित मानते हैं, हमारी राय में ये दोनों कथन मिथ्या हैं, जिसके प्रमाण ये हैं:—

(१) कृष्ण और अर्जुन की वंशावली का पूरा २ पता चलता है उनके वंश में ऐसे राजे महाराजे हुये हैं जिन्हों ने ऐतिहासिक समय में राज्य किया है।

(२) सारे संस्कृत लिट्रेचर का प्रमाण इस कथन का उल्लंघन करता है (जैसा कि हमने ऊपर वर्णन किया है)

(३) कथा और कथा से सम्बन्ध रखने वालों के नाम सर्व साधारण में प्रसिद्ध हैं तथा देश के उन प्रान्तों में भी विदित हैं जहां सहस्रों वर्ष से पढ़ने लिखने का चिन्ह नहीं पाया जाता फिर कथा सम्बन्धी पुरुषों के नाम से प्रायः स्थानों के नाम मिलते हैं यदि नाम कल्पित होते तो ऐसा कदापि संभव न था।

(४) जो टूटे फूटे ऐतिहासिक चिन्ह संस्कृत लिटरेचर में पाये जाते हैं उनसे भी कथा की बहुतसी घटनाओं की अंशपुष्टि होती है।

(५) यदि कथा को यथार्थ मानें तो कथा संबन्धी नामों को कल्पित मानने का कोई कारण विशेष नहीं दीख पड़ता, तथा उसमें यह प्रश्न उठता है, कि यदि वे नाम कल्पित हैं तो कथा के यथार्थ नायकों के नाम क्या थे ?

(६) कृष्ण का अवतार के तुल्य माना जाना इस बात की अंशपुष्टि करता है कि कृष्ण किसी कल्पित व्यक्ति का नाम नहीं था।

(७) हमारे विपक्षी अपने इस कथन के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं देते कोई २ ग्रन्थकार तो इस बात का सहारा लेते हैं कि प्राचीन आर्य्यावर्त में एक स्त्री के कई पति होने की प्रथा न थी एवं द्रौपदी का पांच पाण्डवों से विवाह करना एक अत्युक्ति है और यथार्थ घटना नहीं। परन्तु महाभारत के पढ़ने वालों को मालूम है कि ग्रन्थकार ने इस घटना को अपवाद (Exception) के समय वर्णन किया है और इसके लिये कारण विशेष दिखलाया है। फिर ऐसे प्रबल प्रमाणों के मौजूद रहते कुछ महानुभावों की यह राय प्रमाणित नहीं कही जा सकती और न हम कृष्ण तथा अर्जुन प्रभृति नामों को कल्पित नाम मान सकते हैं।

(१२) क्या कृष्ण परमात्मा के अवतार थे ?

इस पुस्तक में कृष्ण विषयक जो घटनायें हमने इकट्ठा की हैं उनके पढ़ने से पाठकों पर यह विदित होजायगा कि कृष्ण महाराज का अवतार मानना कहाँ तक सत्य है। हमारी

राय है कि कृष्णचन्द्र ने कभी स्वयं इस बात का दावा नहीं किया और न उनके समय में किसी ने उनको पदवी ही दी, यह बातें नई गढ़न्त हैं और बौद्ध समय के पश्चात् प्रचलित हुई हैं।

समस्त वैदिक लिटरेचर अवतारों के सिद्धान्त के विरुद्ध है। वेद पुकार २ कर कहता है कि परमेश्वर कभी देह धारण नहीं करता। यूरोपीय विद्वान् भी इस बात में हमारे सहमत हैं और कहते हैं कि अवतारों का सिद्धान्त बौद्धमत के पश्चात् प्रचलित हुआ। इससे पहले भारतवर्ष में मूर्ति पूजा वा अवतारों के सिद्धान्त का मानने वाला कोई भी नहीं था। हम इस पुस्तक के अन्तिम भाग में इस बातों पर विचार करेंगे कि कृष्ण का चरित्र हमारे इस मन्तव्य की कहां तक पुष्टि करता है। तथा पाठक भी इसके अध्ययन से एक उपयुक्त सम्मति स्थिर कर सकेंगे।

सुहृदय पाठक! हम इन पृष्ठों में आपके सम्मुख एक महाशय का जीवन पेश करते हैं। श्रीकृष्ण यद्यपि अवतार न थे और मनुष्य थे। परन्तु मनुष्यों की सूची में उस श्रेष्ठतम आचरणके मनुष्य थे जिनको संस्कृत विद्वानों ने "मर्यादा पुरुषोत्तम" की पदवीदी है वह अपने समयके महान् शिक्षक थे, योद्धा तथा विद्यासम्पन्न थे, उनकी जीवनी हमारे लिये आदर्श रूप है। हम उनकी शिक्षा से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हमारी राय में तो आधुनिक शिक्षामण्डली को उनकी जीवनी ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिये, क्योंकि यूरोप की नास्तिक फिलासोफी बहुतेरे हिन्दूयुवकों के चित्त को चलायमान करके उनको हिन्दूधर्म के यथार्थ तत्व से पराङ्मुख कर रही है और इनके दलका दल युरोपियन थिओरी

अफ लाइफ' के पीछे भागा जा रहा है। उनकी दृष्टि में अच्छे २ स्वादिष्ट पकवान खाने, सुन्दर वस्त्र भूषण पहिनने तथा फैशनेबल सवारियों में बैठ के सुख संभोगादि से दिन काटने के अतिरिक्त जीवन का कुछ और उद्देश्य नहीं। आत्मा को वे कोई चीज़ नहीं समझते धर्म को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। तथा यावत् सांसारिक आपत्तियों का इसी को कारण समझते हैं। वे इसी में भारतवर्ष का हित समझते हैं कि इसका सर्वनाश कर दिया जाय और जन साधारण के हितार्थ एक लोकपालित राज्य स्थापित करके एक 'कामनवेल्थ' खड़ाकिया जाय जिसमें कोई किसी से न पूछे कि तेरा धर्म क्या है? और तू कुछ धर्म रखता है या नहीं! उनकी सम्मति में सब धर्म संबन्धी पुस्तकें समुद्र में फेंक दीजांय तथा धर्मसभाओं को देशनिकाला दे दिया जाय। उनकी राय है कि ऐसा न करने से देश का उद्धार नहीं हो सकता। भारतवर्ष का पोलिटिकल उद्धार भी इसी पर है कि किसी को दूसरे के आचरण पर प्रश्न करने का अधिकार न हो। हर एक मनुष्य को पूरी स्वाधीनता हो कि जो चाहे खावे पीवे और जो चाहे सो करे। केवल अनुशासन में उन्हें भाग मिलजावे और बड़े बड़े पद भी उन्हें मिलनेलगें। सरकार उनसे सलाहलेने लगजाय टैक्सलगाने और उठाने में उनको पूछ हो और उन्हें हर एक तौर के धार्मिक वा सामाजिक बन्धन से छुटकारा मिलजाय। हिन्दू युवकों की एक मंडली आजकल इस सिद्धान्त की माननेवाली हो रही है। परन्तु दूसरी ओर जिस मंडली को आध्यात्मिक उन्नति का ध्यानहै जिसको धार्मिक शिक्षा वा धार्मिक फिलासोफी से घृणा नहीं वे वैराग्य को वेदान्त, योग और संन्यास को ही अपना

मतवाद समझते हैं। उनके विचार में यह संसार स्वप्नवत् और सांसारिक सुख सब घृणित वस्तु है। उन्हें सांसारिक उन्नति की परवाह नहीं, वह अपने धुन में एक दम ब्रह्म वा एक दम परमयोगी बनने के अभिलाषी दीख पड़ते हैं उनका समझ में वह लोग पागल हैं जो आत्मोन्नति को छोड़कर भौतिक उन्नति के लिये तत्पर हो रहे हैं। आजकल नवशिक्षित मंडली साधारणतः इन्हीं दो में से एक मत की अनुयायी हो रही है। परन्तु इनके अतिरिक्त बीच का एक और दल है, जिसे उपरोक्त दोनों मंडलियां तुच्छ दृष्टि से देखती हैं। यह दल चाहता है, हिन्दू अपने प्राचीन शास्त्रोक्त धर्म पर स्थिर हो कर उसी धार्मिक शिक्षा के अनुसार उन्नति भी करें। यह शिक्षित मंडली जैसे एक ओर जाति को नवीन वेदान्त तथा वैराग्यसे बचानेका प्रयत्न करतीहै वैसेही दूसरीओर योरप की भौतिक (Material) फिलासोफी से भी बचने की चेतावनी देती है परन्तु मनुष्य में यह दोष है कि वह सदा जियादती की ओर झुकता है जिसे संस्कृत में अति दोष कहते हैं हमारी जाति में यह दोष इस समय प्रबल हो रहा है और इसी से हमारे नवशिक्षित युवकगण अपने आचरण को मध्यम श्रेणी में नहीं रख सकते। ऐसे मनुष्यों के लिये श्रीकृष्ण की जीवनी तथा उनकी फिलासोफी बड़ी उपयोगी और लाभकारी होगी परन्तु खेद है कि गीता और महाभारत को पढ़कर लोग कृष्ण की शिक्षा के भाव को समझने में गलती करते हैं और उस को वैराग्य, योग तथा नवीन वेदान्त की सिद्धि करके लोक परलोक को लात मार बाल बच्चों को छोड़ भस्म रंगा लेते हैं, हाय! वह यह नहीं समझते कि जिस कृष्ण ने अर्जुन को लड़ने पर तत्पर किया जिसने लड़ाई की समाप्ति पर युधिष्ठिर

को (उसकी इच्छा के प्रतिकूल) राज्य करने पर मजबूर किया, जिसने स्वयं विवाह किया और बाल बच्चे उत्पन्न किये और अपने जीवन का अधिकांश भाग सांसारिक व्यवसाय में व्यतीत किया, जिसने अपने शत्रुओं से बदला लिया, जिसने दुष्ट पापात्माओं का नाश किया और जिसने दीन दुखियाओं की सहायता की जो स्वयं संसार में रह कर सांसारिक धर्म का पालन करता हुआ उत्तम श्रेणी की आत्मोन्नति को प्राप्त हुआ था, उसकी शिक्षा से हम कैसे यह भावार्थ निकाल सकते हैं कि हमारे लिये यही कल्याणकारी है कि हम अपने बाल बच्चों तथा माता पिता को त्याग कर वन में चले जायें वा अपना सांसारिक धर्म पालन किए बिना योगसाधन में लगजायें। कृष्ण जी की शिक्षाका एकमात्र सारांश यह है कि मनुष्य अपने कर्तव्य को (चाहे वे सांसारिक हों वा धार्मिक) सचाई, दृढ़ता तथा शुद्धाचरणसे पालन करे इसीसे उसे सत्य ज्ञान मिलेगा इसी से परम मोक्ष को प्राप्त होगा कृष्ण ने युद्ध क्षेत्र में बैठकर अर्जुन के लिये यह बात परम कर्तव्य ठहराई है कि वह अपने क्षात्र धर्म के पालन करने के हेतु अपने हाथों से लाखों जीवों का वधकरे, बरञ्च प्रयोजन पड़ने पर अपने वंश वालों के भी शिर छेदन करे। उसने अपने हाथों से बहुतेरी लड़ाइयों में शस्त्र चलाये और रक्त बहाया। ऐसाव्यक्ति, कब इस बात की शिक्षा दे सकता है कि बीसवीं शताब्दी के पतित हिन्दू (जो अपने कर्म से न पूर्ण ब्राह्मण हैं और न पूर्ण क्षत्रिय) अपने बाल बच्चों को अनाथ छोड़ और जातीय कर्तव्यों पर वज्राघात कर बिना ब्रह्मचर्य्य पालन किए बिनागृहस्थ आश्रम को निबाहे बिना यथाक्रम वेदशास्त्र को पढ़े और बिना अपने वर्णाश्रम के कर्तव्य पालन किए, योगसाधन में

तत्पर हो जायें और स्वयं ब्रह्म बनने की उत्कट कामना में बन का रास्ता लें। कृष्ण की शिक्षा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि जब तक उसे ब्राह्मण पदवी का अधिकार प्राप्त नहो तब तक वह अपने शत्रुओं के साथ लड़ाई करे यदि धर्म, कर्म, न्याय, सत्यता, इत्यादि के लिए दूसरों के सर कुचलने का अवसर आन पड़े तो अपनी जान जोखिम में डाल कर भी उससे मुख न मोड़े हम कर्तव्यों के पालन करने में मिथ्या दया वा वैराग्य को पास तक न फटकने दें। यदि प्रत्येक पीड़ित मनुष्य अपने पीड़ा के हेतु दया का भाव दिखावे और वैराग्य को काम में लावे, तो एक दिन संसार से न्याय बिलकुल ही उठ जायगा ऐसे अवसर पर दया या वैराग्य का भाव दिखाना एक प्रकार की कायरताहै। ऐसे अवसर पर किसीका यह कहना कि जब कुछ न बन पड़ा तो वैराग्य का आश्रय ले लिया बहुत उचित जान पड़ता है। बाजे बाजे ईसाई धर्म की केवल इसीलिये प्रशंसा करते हैं कि यदि कोई तेरे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी उसकी ओर फेरदे किन्तु उन से पूछे कि इस पर कभी किसी ने साधना भी की है अथवा स्वयं ईसाई मतावलम्बी इसका कहांतक साधन करतेहैं। नेचर इसके विरुद्ध शिक्षा देती है-ये बातें केवल कहने की हैं कोई सामर्थ्य वाला पुरुष इस कायरता की क्रिया में नहीं जा सकता। जो लोग कृष्ण की शिक्षा पर अनुचित समालोचना करके उसको महाभारत की लड़ाई तथा उससे जो हानि पहुंची है उसका उत्तरदाता ठहराते हैं। वह टुक विचारें तो सही कि उनकी फिलासोफी का क्या अर्थ है यदि इन के घर में कोई चोर या डाकू आघुसे तो क्या वे इस अवसर पर दया का भाव दिखावेंगे या कोई विचारशील दयावान उस चोर को अपना माललेजाने

की आज्ञा देगा, अथवा स्वहितका विचार कर उसव्यवहार विरुद्ध कार्य्य के लिये उसे हानि पहुंचाने में तत्पर हो जायगा। क्या धर्म की यही आज्ञा थी, कि अर्जुन रणक्षेत्र से भाग खड़ा होता और इस प्रकार उन सब कर्तव्यों पर पानी फेर देता, जिन पर आशा करके युधिष्ठिर तथा अन्य महाराजे सेना सहित सम्मिलित हुए थे। क्या उस समय कृष्ण का यही कर्तव्य था कि अर्जुन को भागता देख खुद भी उसके साथ लग जाता। हम नहीं समझते कि जो लोग कृष्ण पर इस प्रकार की अयोग्य आलोचना करते हैं वे कैसे धर्म के रक्षक वा प्रचारक कहला सकते हैं उन का धर्म केवल मौखिक है उन्हें इस बात की परवाह नहीं कि उनका धर्म मनुष्यसमाज के उपयुक्त है वा नहीं। उन्हें इस से मतलब है कि उनका व्याख्यान सुनने वालों को सुधामय प्रतीत हो। हमारा तो विश्वास है कि दया तथा वैराग्य के इस झूँठे विचार ने ही हिन्दुओं का सत्यनाश कर दिया है और उनकी श्रेष्ठता को मिट्टी में मिला दिया। न उनको लोक का छोड़ा न परलोक का। यदि अब भी भारत वासी इन बहु विश्वासों के पंजे से निकलना न चाहें जब कि आधुनिक पाश्चिमात्य शिक्षा तथा गीता उनको इस बात की शिक्षा देती है तो ऐसी हालत में उनकी उन्नति का विचार मानों एक भ्रम है जिसका पूरा होना कदापि संभव नहीं। इन बातों पर विश्वास रखने वाले न लौकिक उन्नति कर सकते हैं न पारलौकिक क्योंकि आध्यात्मिक संसार में भी उसी की पहुंच है जो मनुष्य लोक में हर एक परीक्षा में उत्तीर्ण होकर आध्यात्मिक उन्नति के सोपान पर पैर रखता है। आध्यात्मिक संसार में उन लोगों की पहुंच नहीं हो सकती जो इस संसार के नियमों या परीक्षाओं पर लात मारते हैं और

जो नियमानुसार अनेक साधनाओं से अपनी आत्मा को इस योग्य बनाते हैं कि वह सद्विचार तथा पवित्रता से उस परब्रह्म के चरण कमलों को अपने मस्तकसे लगावें जिसके आधीन समस्त ब्रह्माण्ड है।

इन पृष्ठों में हम एक पवित्रात्मा महान् पुरुष का जीवन वृत्तान्त लिखते हैं जिस ने अपने जीवन काल में धर्म का पालन किया है और धर्म ही के अनुसार धर्म और न्याय के शत्रुओं का नाश किया है रहा यह कि क्या कृष्ण ने अद्वैत की शिक्षा दी वा द्वैत की (अर्थात् कृष्ण के मतानुसार आत्मा और परमात्मा एक है वा भिन्न) यह ऐसा प्रश्न है जिस पर इस पुस्तक के दूसरे भाग में विचार करेंगे।

लाजपतराय

नवम्बर १६०० ई०

॥ ओ३म् ॥

प्रथम अध्याय।

कृष्ण की जन्मभूमि-

यपि वृन्दावन के कुञ्ज मे जहां किसी समय कृष्ण जी गोपियों के संग क्रीड़ा किया करते थे अब उनकी वंशी की गूंज सुनाई नहीं देती। यद्यपि यमुना की धारा प्रति दिन गो रक्त से रंगी जाती है। तथापि यात्री के लिये वह भूमि अब भी पवित्र है, उसके लिये वह पवित्र (१) आरडन के समान है जिस के तट पर बैठ कर देश निकाला दिया गया इसराइल नबी की प्राचीन लड़ाइयों का स्मरण करके आंसू बहाता है।'

कर्नल टाड

समय के हेर फेर से अंगरेजी शिक्षासे तथा नवीन वासनाओं के उत्पन्न हो जाने से भारतवर्षीय शिक्षितमंडली के मानसिक भावों और विश्वासों में चाहे कितने परिवर्तन क्यों न हुए हों पर कौन सा हिन्दू है जिसको गंगा और यमुना ये दोनों नाम प्यारे न मालूम होते हों। अथवा जिस के चित्त में इन दोनों नामोंके मुंह में आते ही या कान में पड़ते ही किसी तरह का कोई भाव न उत्पन्न होता हो।

(१)—जारडन मक्के के पास एक नदी का नाम है।

प्यारी यमुना ! क्या तू वही यमुना है जिस की रेती में हमारे महान् पुरुष वीर योद्धा गण अपनी बाल्यावस्थामें क्रीड़ा किया करते थे और जिसके तटपर कुछ बड़े होने पर उन्होंने धनुष विद्या सीखी थी।

यमुने ! क्या सचमुच तू वही नदी है जिसके जल ने अनाथ पांडवों के संतप्त हृदय को शान्ति दी थी और जिस के तट पर उन्होंने बड़े परिश्रम और चाहना से इन्द्रप्रस्थ बसाया था। यमुने ! क्या वास्तव में तू वही यमुना है जिस के किनारे के वनों को पांडवों ने काट डाला था और उनपर अनेक नगरियां बसादी थीं जो पश्चात् आर्य्यों की राजधानी बनी जहाँ उनकी राज्यपताका इतनी ऊंचाईसे फहराती दीख पड़ती थी कि उसे सैकड़ों कोसोंसे देखकर उनके शत्रुओंका चित्त भी भयभीत हो जाता था। यमुने ! क्या तेरी धारा वही धारा है जिसमें कृष्ण महाराज जलक्रीड़ा किया करते थे और जिसमें गर्भवती देवकी कृष्ण जैसे पराक्रमी महान् पुरुष को प्रसव करके स्नान करने आती थी और स्नान करने पर परमात्मासे अपने बच्चे की रक्षार्थ प्रार्थना करती थी। यमुने ! हमें तुझसे यों प्रश्न करने की इसलिये आवश्यकता हुई है, कि काल की कुटिलता ने तेरी दशा बदल दी, दुख सहते २ तेरा हृदय विदीर्ण होगया और नख से सिर तक तेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग पर उदासी छागई, तुर्कोने तेरी छाती पर वह २ मूंग दले कि मारे आघातों के छाती चलनी सी होगई है। तेरे तटपर भांति भांति के सुन्दर भवनों की जो पंक्तियां थीं उनका आज कहीं चिन्ह भी नहीं बाकी रहा-जो किसी समय धन सम्पन्न तथ ऊंचे ऊंचे राजप्रसादों से सुशोभित होने के कारण इन्द्रपुर कहलाती थी, उसकी आज जर्जर अवस्था देख कर आ

आठ आंसू रोना पड़ता है। केवल यही नहीं, वरन दूर दूर से यात्रीगण तेरी पुरानी संपत्तियों को याद कर कर के रोने के लिये अब भी उमडे चले आते हैं तेरे तट पर अब भी एक शहर बसा हुआ है जो हमको तेरी सारी पुरानी बड़ाईका स्मरण दिलाता है। और जिसके पुराने खंडर उसके नवीन मंदिरो के साथ मिल कर मानों काल की कुटिल गति का संदेह प्रमाण दिखा रहे हैं।

सुहृदय पाठक! आप समझ ही गए होंगे कि हमारा तात्पर्य्य मथुरा की नगरी से है, जो श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण हिन्दुओं का एक महान् तीर्थ स्थान गिना जाता है। जिसकी स्तुति में हिन्दू कवियों ने अनेक कविताएँ रचडाली हैं।

ऐसा कहते हैं कि महाराज रामचन्द्र के समय में उस स्थान पर एक घना बन उपजा हुआ था जो एक जंगली राजा मधु के स्वत्व में था। और जिसके नाम पर इस प्रान्त को मधु बन कहतेथे राजा मधु के मरने के उपरान्त उसका पुत्र लवण महाराजा रामचन्द्र से लड़ने पर तत्पर हुआ जिस पर शत्रुघ्न लड़ने का भेजा गया लड़ाई में लवण मारा गया और महाराज शत्रुघ्न को जय हुई। जिसके स्मारक में उन्होंने इस स्थान पर मथुरा नगरी बसाई। इसका मथुरा नाम क्यों पड़ा यह प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर देना कठिन है, संभव है कि मधुपुरी से बिगड़ता २ मथुरा बन गया हो अथवा संस्कृत शब्द 'मथ' से कुछ सम्बन्ध रखता हो-'मथ' शब्द के अर्थ मथने अर्थात् मक्खन निकालने के हैं, संभव है कि दूध दही और मक्खन की बहुतायत से इसका नाम मथुरा पडगया हो "हिन्दावस्था में मथुरा शब्द गोचर के लिये

प्रयोग हुआ है फिर (१) गोकुल व्रज, और वृन्दावन ये सब नाम भी यही प्रगट करते हैं कि प्राचीन समय में इस प्रान्त में बड़े बड़े वन थे जो अपने गोचरों तथा पशुओं के लिये प्रसिद्ध थे और जहां दूध दही तथा मक्खनादि बहुतायत से मिलती थी।

ऐतिहासिक समय में पहिले पहिल मथुरा का वर्णन महात्मा बुद्ध के जीवनचरित्र में आया है जिससे प्रगट होता है कि उस समय भी यह शहर भारतवर्ष के दक्षिण प्रांत के प्रसिद्ध शहरों में से था यहनहीं कहा जा सकता कि उससमय भी इसे कोई धार्मिक श्रेष्ठता प्राप्त थी वा नहीं पर बुद्धदेव के वहां प्रायः व्याख्यान देनेसे विदित होताहै कि यह शहर उस समय भी एक बड़ा केन्द्र होगा ।क्योंकि महात्मा जी विशेषतः ऐसे ही बड़े बड़े स्थानों में व्याख्यान दिया करते थे जहां लोगों की अधिक भीड़ भाड़ होती थी एवं उनको आशा सफलीभूत हुई। और मथुरा कई शताब्दियों तक बौद्धशिक्षा का केन्द्रस्थल बना रहा।

इसके उपरांत मथुरा का वर्णन यूनानियों के सम्बन्ध में हुआ है। और इसमें कुछ संदेह नहीं मालूम होता कि यूनानियों ने इस पर विजय प्राप्त किया और कुछ काल तक मथुरा बाक्तरिया वंश के आधीन रहा।

इसके पश्चात् फिर चीनी यात्री फाह्यानके भ्रमणवृत्तांत में मथुरा का वर्णन आता है। फाह्यान ५ वीं शताब्दि के आदि में यहां आया है। उसने अपने भ्रमणवृत्तांत में मथुरा का

(१) श्रीमद्भागवत में गोकुल व गाय का निकास 'गो' शब्द अर्थात् गाय से बताया है। मा० अ० १० श्लोक २५।

वर्णन किया और लिखताहै कि उसकी राजधानी का भी यही नाम था। उसके कथनानुसार मथुरा में उस समय बौद्ध मत का विशेष प्रचार था। सब छोटे बड़े उसी मत के अनुगामी हो रहे थे। शहर में उस समय २०० विहार (अर्थात् बौद्धों के धार्मिक मंदिर) थे। जिनमें ३ हज़ार बौद्ध भिक्षुक रहते थे और सात स्तूप (मेमोरियल मीनार) थे। फाहियान से २०० वर्ष पश्चात् एक और चीन का यात्री हुआनलिस्टांग यहां आया वह भी मथुरा के विषय में लिखता है कि शहर मथुरा का घेरा उस समय ४ कोस का था। यद्यपि विहार की गिन्ती२०० ही थी पर उन में रहने वाले भिक्षुकों की गिनती घट कर अब २००० हो गई थी इस के अतिरिक्त ब्राह्मणों ने भी ५ मंदिर बनवा लिये थे स्तूपों की गिनती उस समय बहुत बढ़ गई थी हुआनलिस्टांग के समय में बुद्ध तथा पौराणिक धर्म में परस्पर विरोध फैल रहा था और एक दूसरे को दबाने की चेष्टा कर रहा था जिस का परिणाम यह हुआ कि महाराज शङ्कराचार्य्य और कुमारिल भट्ट की युक्तियों से बुद्धधर्म परास्त हुआ और पौराणिक मत की फिर सारे भारतवर्ष में साधारणतः पताका फहराने लगी, महमूद गजनवी के आक्रमणों के समय में भारत का दक्षिण प्रांत पौराणिक मत का अनुयायी हो गया था और मथुरा हिन्दुओं का तीर्थस्थान बन चुका था। महमूद ग़ज़नवी ने मथुरा को सन् १०१७ में लूटा और मंदिरों का विध्वंस किया और वहां के सब से बड़े मंदिर के विषय में अपने नायब को यों पत्र लिखा "यदि कोई मनुष्य ऐसा मकान बनाना चाहे तो बिना एक करोड़ दीनार के नहीं बनवा सकता और बड़े पक्के कारीगर भी उस को २०० वर्ष से कम में नहीं तैयार कर सकते" इतना लिख कर हज़रत बड़े अहङ्कार से लिखते हैं कि "मरे हुक्म से तमाम

मंदिरों को जलाकर ज़मीन से मिला दिया गया" २० दिन तक शहर लूटा गया और महमूद को तीन करोड़ का द्रव्य हाथ आया तारीख़ यमीनी का लेखक लिखता है कि इस मन्दिर की स्तुति न लिखने से हो सकती है और न चित्र खींचने से,इस दुष्ट के अपहरण के बाद मुसलमानों के राज्यमें मथुरा फिर कभी पूरी दीप्तिमान् अवस्था को प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उन्हें सदा यही भय लगा रहा कि कहीं फिर मुसलमानों को इसके लूटने का विचार न पैदा होजाय पर मुसलमानों का इतिहास स्वयं इस बात की साक्षी दे रहा है कि उनके समय में मथुरा अनेक बार उनके धार्मिक पक्षपात का शिकार बन चुका है 'तारीख़ दाऊदी' का लेखक 'बाबी' है, कि सिकंदर लोधी ने मथुरा के सब मंदिरों को नष्ट कर दिया और मंदिरों से सराय और मुसलमानी पाठशालाओं का काम लिया। मूर्त्तियों को कसाइयों को सौंप दिया कि वह उन से मांस तौला करें और मथुरा के हिंदुओं को शिर और दाढ़ी मुड़ाने या किसी अन्य प्रकार से पिण्ड तर्पण कराने को भी मना कर दिया।

सिकंदर के पश्चात् जहांगीर के समय तक पुनः मथुरा ने सांस लिया, परंतु, फिर भी औरंगज़ेब के आक्रमण से दब-गई। सन् १६६९ ई० औरङ्गज़ेब ने मथुरा पर आक्रमण किया और केशवदेव के बड़े भारी मंदिर को गिरवाकर पीछे फिरा इसी अवसर पर मथुरा का नाम इस्लामाबाद वा इस्लामपुर रक्खा। इस मंदिर पर ३३ लाख की लागत हुई थी। इस मंदिर की मूर्त्तियाँ नवाब कुदसिया बेगम की मसजिद (जो आगरे में है) की सीढ़ियों में दबाई गईं ताकि प्रत्येक आने जाने वाले के नीचे आवें और मंदिर की जगह एक बड़ी भारी

मसजिद तैयार की गई जो अब तक बनी हुई है। इस मंदिर का नीचे का चबूतरा २८६ × २६८ फुट था। आखिर मुसलमानी अत्याचार का समय और औरंगज़ेब के मरते ही हिंदुओं का भाग्य फिर गया और मथुरा प्रांत पर जाटों ने अधिकार जमाया और अङ्गरेज़ी राज्य तक लड़ते भिड़ते इस प्रांत का कुछ न कुछ भाग अपने आधीन बनाये रहे। मथुरा की वर्तमान इमारतें इसी समय की बनी हुई हैं। इन इमारतों की बनावट ऐसी उत्तम है कि ये भारतवर्ष की दर्शनीय इमारतों में गिनी जाती हैं हम और इमारतों को छोड़ कर केवल उन इमारतों का यहां उल्लेख करेंगे। जिन को कृष्ण की जीवनी से कुछ सम्बंध है।

(१) केशवदेव के नवीन मंदिर के निकट एक जलाशय है जो पोतड़ा कुंड कहाजाता है अर्थात् जिसमें कृष्ण महाराज के पोतड़े धोए जाते थे।

(२) इसी जलाशय के तट पर एक कोठरी है जो 'कारागृह' के नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात् जिसमें वासुदेव और देवकी बंदी बनाकर रक्खे गये थे। यही कोठरी है जहां पुराण के अनुसार कृष्ण ने जन्म लिया।

(३) यमुना के सब घाटों में विश्रामघाट नामी है इस के विषय में किंवदंती है, कि कंस का बध करके कृष्ण और बलराम ने यहां विश्राम किया था इस घाट की इमारतें दर्शनीय है।

(४) योग घाट उस स्थान का नाम है जहां कंस ने नंद और यशोदा की अज्ञान बालिका योगनिद्रा को (जो देवकी के साथ लेटी हुई थी) देवकी की संतान समझ कर जमीन

पर दे मारा और वहां से वह देवी का रूप धारण करके लोप होगई।

(५) "कुबजा कुआं" नामक स्थान पर वृन्दावन से लौटती समय पहुंच कर कृष्ण जी ने एक कुबड़ी की कमर करामात से सीधी करदी थी।

(७) इसी तोर से "रणभूमि" वह स्थान है जहां कृष्ण व बलराम वे कंस के पहलवानों से युद्ध करके उन्हें पराजित किया था।

(७) यमुना पर दो छोटे ग्राम हैं जिनमें से एक का नाम अब तक 'गोकुल' और दूसरे का 'महावन' है। किम्वदंती है कि जिस नंद गोप को कृष्ण महाराज पालन पोषण के लिये हवाले किए गए थे वह यहां का रहने वाला था। अब कृष्ण संबंधी जो मकान गोकुल में दिखाये जाते हैं वह महावन में हैं जो वर्तमान गोकुल से कुछ दूरी पर बसा हुआ है जिस घाट पर जन्म की रात्रि के समय कृष्ण चन्द्र नंद के हवाले किये गये थे उसे 'उत्तरेश्वर घाट' कहते हैं इनके अतिरिक्त वह स्थान दिखाये जाते हैं जहां गोकुल में रहकर कृष्ण के जीवन काल की दूसरी घटनायें हुई हैं वहां गोकुल और महावन दोनों स्थान पवित्र गिने जाते हैं, जिनमें से गोकुल नदी के तट पर है और उसमें बड़े २ मंदिर बने हुये हैं, महावन के निकट शाहजहां के समय तक बहुत बड़ा वन था और जहां शाहजहां प्रायः शिकार खेलने को आया करता था।

गोकुल आजकल एक बड़ा कस्बा है, जो वल्लभाचारी सम्प्रदाय की जन्मभूमि होने से इस दशा को प्राप्त हुआ है।

इस सम्प्रदाय की ओट में ऐसा व्यभिचार होता है कि लेखनी उसे लिखते हुए लजाती है।

(८) मथुरा से ६ मील ऊपर तीन ओर प्यारी यमुना से घिरा हुआ द्वीपाकार में वृन्दावन का कसबा बसा हुआ है जहां कृष्ण जी ने बचपन के कई वर्ष व्यतीत किए हैं संस्कृत में वृन्दा: तुलसी के पेड़ को कहते हैं इसलिए यह अनुमान होता है कि इस बन में कभी तुलसी के पेड़ बहुत उपजते होंगे जिससे इसका नाम वृन्दाबन पड़गया हो। अस्तु इस नामका चाहे कुछ और ही कारण क्यों न हो परन्तु अब तो यह नाम ऐसा प्रसिद्ध तथा चिरस्थायी होगया कि जब तक कृष्ण का नाम जीवित रहेगा तब तक उनका यह नाम हिन्दुओं के लिए पूजनीय बना रहेगा।

तीन ओर यमुना की लहरें और उसके किनारे किनारे सुन्दर तथा ऊंचे मन्दिरों की पंक्ति यह एक ऐसा दृश्य है जिसे देखकर प्रत्येक मनुष्य प्रकृति और मनुष्यकृत शोभाओं के मेल से अपना चित्त हर्षित कर सकता है वृन्दावन में सं० १८८० में ३२ घाट और लगभग १००० मन्दिर थे वृन्दावन वैष्णव सम्प्रदाय का मुख्यस्थान तथा राधावल्लभियों की जन्मभूमि है।

(९) इस अध्याय को समाप्त करने के पहले कुछ और शब्दों का विवरण करना हम आवश्यक समझते हैं।

"ब्रजमण्डल" मथुरा के निकटस्थ प्रदेश जो ४२ मील की लम्बाई तथा ३० मील की चौडाई में बसे हैं उन्हें ब्रजमण्डल कहते हैं। कृष्ण मत के मानने वाले इस सारे प्रान्त की यात्रा करते हैं, इस यात्रा को "वनयात्रा" कहते हैं। वन के अर्थ पशुओं के जंगल के हैं जैसे गोकुल के अर्थ गऊओं के हैं। यह यात्रा

भादों मास में कृष्ण चन्द्र के जन्मदिन के उत्सव में होती हैं यात्रीगण, मथुरा से यात्रा प्रारम्भ करते हैं और सारे ब्रजमण्डल के मन्दिरों बनों तथा घाटों की फेरी लेते हुए गोकुल वृंदावन इत्यादि स्थानों में होकर फिर मथुरा में लौट आते हैं हम स्थानान्तर में सिद्ध करेंगे कि यह बनयात्रा तथा रासलीला आदि प्राचीन काल की नहीं हैं। इन्हें पौराणिक समय के स्वार्थ पूर्ण पुजारियों तथा ब्राह्मणों ने अपनी जीविका के लिए रचा है।

हाय! खेद है कि कृष्ण महाराज की जन्मभूमि में इन्हीं के नाम पर उन्हीं पर विश्वास रखने वाले ऐसा अत्याचार करें। जिसे देखकर कौन सा विचारवान् पुरुष है जिस का हृदय कांप न उठता हो या जिसके अन्तःकरण से एक बार दीर्घ निश्वास न निकलता हो कुटिलकाल! तूने बड़ी अनीति मचा रक्खी है और तो सब अनर्थ किया ही था स्वतंत्रता छीनी, धन छीना, हीरे जवाहिर तक लूटे संसार की सब से बलवान् तथा सम्पन्न जाति को भिखारी बना दिया धार्मिक से अधर्म युक्त किया। विद्या और विज्ञान कला और कौशल सब कुछ ले लिया पर हमारे पूज्य महापुरुषों के पवित्र जीवनों को तो अकलङ्कित छोड़ देता। हाय तूने उनके नाम और यश को भी हरके मृतक बना छोड़ा, जिन के नाम से हमारी मृतक जाति अब तक अपने को जीवित समझती थी और जिन का श्रेष्ट नाम लेने से हमें फिर श्रेष्ठता की आशा होती थी।

दूसरा अध्याय।

श्रीकृष्णचन्द्र जी का वंश।

श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज मातृपक्ष से चन्द्रवंशी यादव क्षत्रियों के नाती थे और पैतृक ओर से सूर्य्यवंशी क्षत्रियों के वंश से थे। निम्नलिखित वंशावली से उन दोनों प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों से उनका सम्बन्ध भलीभांति प्रगट हो जायगा।

इक्ष्वाकु से बहुत पीढ़ियों पश्चात् उसके वंश में एक राजा हर्यश्व नामक हुआ है जिसने अयोध्या से निकाले जाने पर गोवर्धन की नींव डाली, उस समय मधुवन प्रान्त पर राजा मधु शासन करता था जिसने अपनी कन्या मधुमती का हर्यश्व के संग विवाह कर दिया इन्हीं दोनों को सन्तान का वंशवृक्ष पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है:—

वंशवृक्ष।

पैतृक पक्ष से—

हर्यश्व और मधुमती—

माधव

|

भीम

|

अन्धक

|

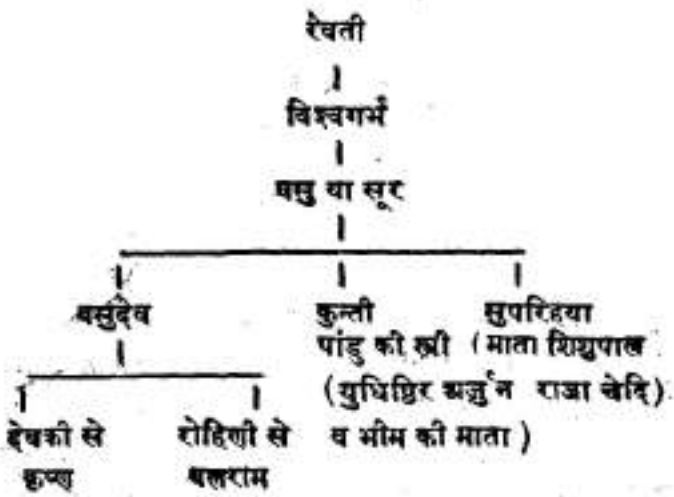

माता की तरफ से श्री कृष्ण जी का वंशवृक्ष निम्नलिखित है:—

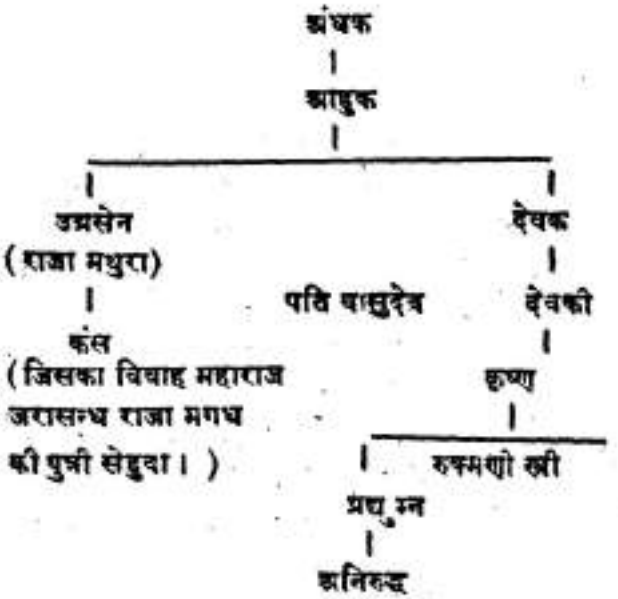

कृष्ण के जन्म के समय यादवों की गद्दी पर उग्रसेन का पुत्र कंस विराजमान था जो अपने पिता को उतार कर स्वयं गद्दी पर बैठा था कंस जरासंध का दामाद था यह जरासंध मगधदेश का राजा और अपने समय का बड़ा प्रतापी था इसी की सहायता से कंस अपने पूज्य पिता को जीते जी राज्य से च्युत करके स्वयं राजा बन गया पर औरंगजेब की नाईं इस ने पिता को बन्दीगृह का मुंह नहीं दिखलाया।

कंस अपने समय का ऐसा कृतघ्न तथा अत्याचारी राजा था कि उससे उसके अपने पराये सब तंग थे और जिस से छुटकारा पाने के हेतु उसकी प्रजा परमात्मा से सदा प्रार्थना करती थी उसके निंदनीय कार्यों में से पहिला तो यही था कि उसने अपने पूज्य पिता का यों अपमान किया, और अपने

इस कुत्सित कार्य्य से अपने वंश को कलंकित किया। सत्य है, योग्य के पुत्र सदा योग्य नहीं हुआ करते। ऐसे ही कपूत अपने वंश की मान मर्यादा को मिट्टी में मिला देते हैं कंस का वृद्ध पिता उसके बुरे आचरण को देखकर भीतर ही भीतर कुढ़ा करता था। पैतृक स्नेह तथा वंश की कुलीनता के लिये उसका पिता उसके विरुद्ध बलवा नहीं खड़ा करता था और उसके अत्याचारों को सहन करता था भाई बन्धु, धनी, राज्य कर्मचारी, यहां तक कि प्रजा भी इसके निन्दनीय कार्य्यों से तंग थी और उच्चवंश होने के कारण किसी को भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि सबल वृक्ष की इस शाखा को तोड़ डाले और वृक्ष को इसके बुरे प्रभावों से बचावें। पर यह कब सम्भव था कि ऐसे अन्यायी की अनीतियां निरंतर बढ़ती चली जायें और परमात्मा की ओर से उस की कुछ सुध न ली जाये।

अपने निन्दनीय कर्मों से कब तक परमात्मा की सृष्टि को तंग कर सकता था। और पालन पोषण कर्ता परमेश्वर भी उसके अत्याचारों का फल उसको देने वाला था। उस के अत्याचारों का अन्त अब निकट पहुंच गया था उस जगत् पिता ने मुक्त आत्माओं में से एक को फिर जन्म दिया जिस में उसके द्वारा संसार में फिर धर्म और न्याय का राज्य स्थापित हो और जन साधारण में वह एक आदर्श स्वरूप बन जाय।

इधर पितृद्रोही कंस को भी भास गया कि मेरे पापों का परिणाम अब मुझे शीघ्र मिलेगा उसके अन्तःकरण से आवाज़ आई कि उठ; अब भी अपने आचरणों के सुधारने तथा सुपथ पर आने का समय है अधर्म और पाप का साथ

छोड़ पूर्वजों के यश को जो तूने कलङ्कित किया है उस धब्बे को मिटाने का यत्न कर। पर जो आत्माएं पाप के करने में अभ्यस्त हो जाती हैं उनके लिये ऐसी ध्वनि किसी काम की नहीं होती। वे भयभीत होने पर भी और घोर पापों के करने में उद्यत होती हैं। और उस समय तक उनके पाप बढ़ते जाते हैं जब तक उन्हें परमात्मा की ओर से समुचित दंड साक्षात् नहीं मिलजाता।

—:o:—

तीसरा अध्याय।

श्री कृष्ण का जन्म।

विष्णुपुराण में लिखा है कि जब देवकीका विवाह वसुदेव से होचुका और दुलहिन को दुलहाके घर पहुंचने के लिये रथ पर सवार कराया गया तो कंस उसके सारथि बने। चलते चलते आकाशवाणी हुई कि "रे मूर्ख तू किस भ्रम में पड़ा है जिस लड़की को तू रथ पर बैठा के उस के श्वसुर के घर ले चला है उसी के उदर से एक पुत्र उत्पन्न होगा जिसके हाथ से तू मारा जावगा" यह बात कंस पर आकाशवाणी अथवा किसी योगी पुरुष के मुख से विदित हो गई कि मुझे अपने राजपाट में कुछ आशङ्का हो सकती है तो यह इस लड़की की सन्तान से है। क्योंकि उसके दादा के सन्तान में से और कोई उसके स्वत्व में टांग अड़ाने वाला नहीं था। इसी विचार के उत्पन्न होते ही उस की पापिष्ट आत्मा बड़ी बेचैन हुई। उसे अपनी मृत्यु चारों ओर आंखों

के सामने दीख पड़ने लगी अब इसके अतिरिक्त उसे और कुछ न सूझा कि उस अज्ञान बालिका का अन्त कर दिया जाय जिसमें उसकी ओर से कुछ शंका न रहे।

सत्य है पापी अपने को बहुत बलवान् और कठोरहृदय विचारता है पर वास्तव में उसका आभ्यन्तर पापों से खोखला होकर बलहीन हो जाता है। तनिक भय वा उस की छाया उसे भयभीत तथा शान्तिरहित कर देती है। उसके सारे पाप और सारी अनीतियां सदेह उसके सामने आ खड़ी होती हैं और नाना प्रकार से उसको डराने लगती हैं वह आत्मायें जिन्होंने उससे किसी प्रकार की पीड़ा पाई है भयानक रूप धारण करके उसके नेत्रों के सामने आ विराजती हैं और सोते जागते उसे भय दिलाती हैं। उसकी अवस्था उस चोर के समान हो जाती है जो अपनी परछाहीं से डर उठता है। वा तनिक खटका पाकर कांपने लगता है। आगे चल कर लेखक लिखता है कि कंस के चित्त में यह भाव उठते ही उसे विश्वास होगया कि अब मेरा अन्त आन पहुंचा मृत्यु से बचने के लिये उसने यह उपाय सोचा कि जैसे हो सके देवकी का वध कर देना चाहिये यह विचार आते ही उसने रथ को थाम लिया। खड्ग लेके देवकी की ओर लपका और चाहता था कि एक ही हाथ में उसका सिर धड़ से जुदा करदे पर वसुदेव ने विनय पूर्वक हाथ ओड़ कर उसे भगिनीवध के पाप से बचाया।

कंस क्रोधान्ध होकर स्त्री पर वार करने को उठा था पर जब चारों ओर से हाहाकार मच गया और उसकी निन्दा होने लगी तो उसे बड़ी ग्लानि आई उसने वसुदेव से यह प्रतिज्ञा करालो कि वह देवकी की सारी सन्तान को उसके

हवाले कर दे तब अपने विचार से बाज आया। और देवकी सहित वसुदेव को अपने घर जाने की आज्ञा दी (१) इस विषय में सब पुराण एक मत हैं कि वसुदेव ने निज प्रतिज्ञा पालन में अपने छः पुत्र कंस के हवाले कर दिये और कंस भी ऐसा निर्दयी था कि उसने इन छहों को एक एक कर मरवा डाला पर जब सातवीं बार देवकी ने गर्भ धारण किया तो पैतृक स्नेह के आगे निज प्रतिज्ञा पालन का विचार डावाँ-डोल होगया। किसी जाति वा धर्म में इस बात की व्यवस्था नहीं दी गई है कि जो प्रतिज्ञा बलात् कराई जाये उसका उल्लङ्घन करने वाला पाप का भागी हो सकता है। दुष्ट कंस ने देवकी के पुत्रों का वध तो कराही डाला था। वसुदेव के दूसरे पुत्रों को भी (जो दूसरी स्त्रियों से थे) मरवा डाला।

क्या किसी लेखनी में शक्ति है कि उस पिता के अतिरिक्त सन्ताप का चित्र खींच सके जिसके सम्मुख अज्ञान बालकों का सिर काटा जाय? कौन पिता है जो ऐसी दशा में उसके प्राण की रक्षा की एक बार चेष्टा न करेगा? सर्वो

---

(१) इस विषय में पुराणों में बड़ा मतभेद है कोई पुराण कहता है कि यह आकाशवाणी हुई कि इस लड़कीकी सन्तान द्वारा तेरा वध होगा। कोई लिखते हैं कि यह ध्वनि आई कि आठवें सन्तान से तेरा विनाश होगा। कोई-इस आकाशवाणी को नारद जी के सिर मढ़ते हैं। पुराणों में जहां कहीं लड़ाई झगड़े का काम लेना होता है वहाँ नारद जी की सहायता ढूंढी जाती है। साधारण बोलचाल में लड़ाई लगाने वाले व इधर की उधर पहुंचाने वाले को 'नारद मुनि' कहते हैं न जाने नारद जी को यह सार्टिफिकेट किस कारण मिला। क्योंकि नारद एक विख्यात शास्त्रकार तथा महर्षि का नाम है। पुराण के लेखक का शायद यह तात्पर्य है कि किसी दुराचारी ने राजा को यह कुमन्त्रणा दी थी जिसमें कोई उसका वंशज राज्याधिकार का दावा न करे। अथवा इसके राजकोष विषयों में विरोध न करे।

की स्वाभाविक मृत्यु माता पिताके जीवनको धिक् जीवन बना देती है, बहुतेरे ऐसे हैं जो अपने बच्चे की अकाल मृत्यु के सन्ताप में पिघल पिघल कर जान गंवा देते हैं, वा जीवन भर शोकसागर में पड़े रहते हैं। पर यहां तो एक दो की कौन कहे छः के छः पुत्रों का उसके सामने वध हुआ। वसुदेव जी इस सन्ताप से महादुःखी होगए थे इसके सहनकी विशेष शक्ति न लाकर दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि जैसे होगा अब इस दुष्ट के हाथ से अपने बच्चों को बचाऊंगा। इस सातवें गर्भ की रक्षा के विषय में पुराण में लिखा है कि देवताओं ने देवकी जी के गर्भ से बच्चा निकाल रोहिणी जी के गर्भ में डाल दिया (रोहिणी वसुदेव की दूसरी पत्नी का नाम है) और यह बात प्रगट की गई कि देवकी का गर्भ नष्ट होगया इस कथन से दो परिणाम निकाल सकते हैं:—

एक तो यह कि देवकी का गर्भ छिपाया हो और रोहिणी जी का गर्भवती होना प्रसिद्ध किया गया हो रोहिणी जी गोकुल ग्राम में नन्द के घर रक्खी गई और देवकी जी के बच्चा उत्पन्न हुआ तो उस को तत्काल रोहिणी की गोद में रख के यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि देवकी का गर्भ नष्ट हो गया।

दूसरा यह कि वास्तव में बलराम जो रोहणी के ही पुत्र थे और देवकी जी का सातवां गर्भ भय चिन्ता वा किसी अन्य कारण से नष्ट होगया था इससे परिणाम यह निकला कि सातवें बच्चे की जिसकी इस प्रकार गुप्त रीति पर रक्षा की गई वह बलराम था।

देवकी जी सातवीं बार गर्भवती हुई इस पर तो पहिले हीसे पहरा बैठता था पर इस बार पूरी रखवारी होने की

आज्ञा हुई एक सुरक्षित स्थान में बन्द कर के उन पर पहरा चौकी बैठा दिया गया और ऐसा प्रबन्ध किया गया जिसमें किसी प्रकार से भी वह अपने बालक को न बचा सके। ऐसा मालूम होता है कि इस बालक के वध के लिये कंस की ओर से जैसा उत्तम प्रबन्ध किया गया था वैसा ही दूसरे पक्षवाले इसके बचाने में सन्नद्ध थे।

इधर कंस ने पूरे तौर पर पहरा चौकी बैठा दिया और यह प्रबन्ध किया कि बच्चा किसी प्रकार बचने न पावे। उधर वसुदेव और उनके मित्रों ने बच्चे के बचाने के लिये पूरी २ युक्ति की जिसका परिणाम यह हुआ कि दुष्ट कंसकी सारी युक्तियाँ निष्फल हुईं और वसुदेव और उसके मित्र अपने यत्न में सफल हुए। जिस रात्रि में कृष्ण का जन्म हुआ उसी रात्रि को उन्हें राजमहल से निकाल कर गोकुल पहुंचा दिया और वहां से नन्द की नवजात बालिका को लाकर देवकी के साथ सेज पर लिटा (१) दिया।

---

(१) भागवत पुराण में इस विषय में एक कथा है जिस दिन से देवकी जी गर्भ से थीं तो वह एक दिन यमुना में स्नान करने को गईं वहां उन्हें नन्द की पत्नी यशोदा से समालाप हुआ। आपस में जब दुःख की चर्चा चली तो यशोदा ने देवकी को वचन दिया कि मैं तेरे बालक की रक्षा करूंगी। और अपना बालक बदले में तुम्हें देदूंगी। प्रियपाठक! यह बात हिन्दुस्तान के इतिहास में कुछ पहिली नहीं है, ऐसे दृष्टान्त बहुत मिलते हैं जिसमें कि राजकुमारों की इस तरह रक्षा की गई है और दूसरी स्त्रियों ने उनके हेतु अपने प्यारे पुत्रों का बलिदान दिया है महाराणा उदयसिंह (चित्तौड़) इसी तरह बचाए गए उनकी दासी ने कुंवर को फूल के टोकरे में रखके दुर्ग से बाहर कर दिया और उसकी जगह पालने पर अपना लड़का लिटा दिया जब उदयसिंह के शत्रु उसको ढूंढते २ वहां आये तो उसने रोते हुए पालने की ओर इशारा कर दिया जिस पर शत्रुओं ने उसी लड़के को उदयसिंह समझ कर एक ही कटार से उसका निबटेरा कर दिया।

सारांश यह कि भादों के कृष्ण पक्ष की आठवीं तारीख़ को मथुरा की राजधानी में कृष्णचन्द्र ने जन्म लिया रात अन्धेरी थी मेघ का भयङ्कर शब्द मानों पापियों का हृदय कम्पायमान कर रहा था आँधी इतने वेग से चल रही थी मानों वह पृथ्वी तल से इमारतों को उखाड़ कर फेंक देगी और वर्षा ऐसी होरही थी मानों वह प्रलय करके ही सांस लेगी यमुना जी बाढ़ पर थी जिस रात्रि को कृष्ण ने जन्म लिया वह रात्रि वास्तव में भयंकर थी क्योंकि प्रकृति देवी क्रोध से विकट रूप धारण किये हुए थी।

बच्चे के जन्म लेते ही वसुदेव जी उसे कपड़े में लपेट बड़ी सावधानी से महल से बाहर निकले, कहते हैं कि उस रात्रि को सारे पहरे वाले योगनिद्रा से ऐसे मतवाले होगये थे कि उन्हें इस बात की सुध न रही कि कौन महल से निकलता है और कौन अन्दर जाता है पर इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि या तो पहरे वालों की असावधानी से वसुदेव को बाहर निकल आने का अवसर मिला अथवा पहिरे वाले जान बूझ कर वसुदेव का हित समझ कर मचल गए हों तात्पर्य यह कि वसुदेव जी कृष्ण को छिपाकर रनवास से बाहर निकल आये यह समय आधी रात का था बाहर निकलते ही शेषनाग (१) ने अपने फण से कृष्ण पर छत्र लगादिया और इस प्रकार उन्हें भीगने से बचा लिया अब यमुना में पैर रक्खा तो आँधी बंद होगई, आकाश मण्डल स्वच्छ होने

(१ नाग एक जंगली जाति का नाम था जो यमुना के आस पास रहती थी इस पुस्तक में आगे भी कई स्थान पर इसका वर्णन आवेगा। इतिहास में भी इस जाति का वर्णन आया है इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस जाति का कोई सरदार वसुदेव का सहायक बनगया हो।

लग गया और तारे चमकने लगे, नदी नालों के जल का वेग कुछ कम हो गया झील तथा सरोवर में रंग बरंग पुष्प महकने लगे जंगली वृक्षों में पुष्प लग गये और उनपर पक्षि-गण कलोल करने लगे देवता पुष्प वर्षा करने लगे अप्सरायें नाचने लगीं सारांश यह कि सृष्टि मात्र में बधाइयाँ बजने लगी कहां तो यमुना का जल अथाह हो रहा था और कहां महाराज का पैर चूमते ही इतनी उतर गई कि वसुदेव उस में से पैदल पार होगए-(१) दूसरे तट पर नन्द जी बाट देख रहे थे उन्हों ने कृष्ण को ले लिया और अपनी लड़की को वसुदेव के हवाले किया।

कृष्णचंद्र रातों रात गोकुल में पहुंचा दिये गए उनकी जगह यशोदा की लड़की देवकी के साथ लाकर लिटादी गई कंस को दूसरे दिन जब ज्ञात हुआ कि रात को देवकी के बालक जन्मा है तो यह तत्काल उठ खड़ा हुआ और सउरी में चला गया देवकी उसे देख रोने और विलाप करने लगी पर उस दुष्ट ने एक न माना और उस लड़की को (जो) उसके साथ सेज पर लेटी हुई थी) उठाकर पृथ्वी पर देमारा।

दुष्ट कंस! पाप ने तेरी आँखों पर पट्टी बाँध दी सारी आर्य्य मर्यादा को तूने मिट्टी में मिला दिया इस अज्ञान बालिका के वध से तूने अपने को महापाप का भागी बना लिया और यह न विचारा कि मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता जिस राज्यके लिये तू ऐसे पाप कर रहा है वह तुझसे

(१) सुहृदय पाठक! आप तो समझ ही गए होंगे कि इसके क्या अर्थ हैं यह पुराण की रसीली भाषा है इसे मैंने इस लिये ज्यों की त्यों करदिया है कि आप भी इसके आनन्द से मग्न हों यह कृष्ण का प्रथम अलौकिक कार्य है

है पर ऐसे घोर पाप करने से तेरी आत्मा घोर अधोगति को प्राप्त होती है।

पाप से बढ़ कर अंधा करने वाली दूसरी शक्ति जगत् में नहीं है एक पाप के छिपाने के लिये मनुष्य को अनेक पाप करने पड़ते हैं। पाप बड़ा बली है, जो लोग पाप पर विजयी नहीं हो सकते उनको सदा खटका बना रहता है। रस्सियाँ साँप बनकर उनको डसने दौड़ती हैं। सारा संसार उनको शत्रु दीख पड़ता है, जितना कोई सीधा तथा निष्कपट होता है उतना ही वह (पापी) उससे भय खाता है। अज्ञान बालकों को भी वह अपना शत्रु समझ कर उनके वध पर उतारू हो जाता है यहाँ तक कि उसके पापकी गठरी इतनी भारी हो जाती है कि वह स्वयं उसीके बोझ से दबकर मर मिटता है

पुराण का लेखक आगे लिखता है कि जब लड़की को उठा कर भूमि पर फेंक दिया तो वह तत्काल देवी का रूप धारण कर वायु में अन्तर्धान होगई और कंस खड़ा देखता का देखता रह गया (१) पर उसे भासगया कि या तो मेरे साथ धोका किया गया या मैंने इस बालिका को वृथा मारा आगमवाणी तो बालक विषय में थी चाहे कुछ हो पर उसने यादववंश के सारे बालकों के वध की आज्ञा (२) देदी दूंढ २ के राजकुमार मारे गये बहुतेरे भाई वृन्द देश छोड़ कर चल दिए और बहुत दिनों तक यह मार पीट जारी रही।

(१) हज़रत ईसा के जन्म के विषय में भी ऐसी ही कथा प्रसिद्ध है कि हिरोदेशी (जो उस समय यहां का अनुशासक था) ने इसी तरह तथा इसी भय से अनेक बालकवध करवाले थे।

(२) शाहनामे में फरेदूं के जन्म के विषय में भी ऐसी ही कथा लिखी है।

चौथा अध्याय।

बाल्यावस्था गोकुल ग्राम।

मने पिछला अध्याय श्रीकृष्ण को यशोदा की सेज पर लेटा छोड़कर समाप्त किया था, पाठकों को इस बात के जानने की लालसा होगी कि इस यशोदा का पति नंद कौन था, पुराणों से पता लगता है कि यह एक जाति विशेष का सरदार था, जिसे पुराणों में गोप लिखा है। इस जाति का कोई विशेष निवासस्थान नहीं था अबभी भारतवर्ष में ऐसी जातियाँ हैं, जो किसी जगह टिककर नहीं रहती वरन अपने छकड़े और पशु लिये आज इस गाँव में हैं तो दो चार महीने बाद दूसरे गाँव में चली जाती हैं, इन में से कोई जातियाँ डंगर रखती हैं और दूध मक्खनादि बेचती हैं और कोई २ दूसरा व्यवसाय करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण जी के जन्म के समय कोई ऐसी ही जाति उस जंगल में (जो यमुनापार स्थित था) आकर ठहरी हुई थी, जहाँ वे अपने डंगर चराते तथा दूध मक्खन बेचते थे। सुतरां श्रीकृष्ण के जन्म को गुप्त रखने के लिए किसी ऐसी जाति से सहायता लेना कुछ अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है। क्योंकि वहाँ पर श्रीकृष्ण के छिपाए जाने का बहुत कम संदेह होसकता था। फिर कंस को भी यह शंका नहीं हो सकती थी कि इस रमते चरवाहों की मंडली में एक राज

कुमार यों पाला जा रहा है । हम ऊपर कह आए हैं कि वसुदेवजी के दूसरे पुत्र बलराम भी गोकुल में पहुंचा दिये गए थे और वह भी गोपियों के पास पालन (१) के हेतु रख दिए गये थे। इस प्रकार दोनों भाई बलराम और कृष्ण को इकट्ठे रहने का अच्छा अवसर मिला। कृष्ण के बचपन के नाम की बहुत सी आश्चर्यजनक घटनायें वर्णन की जाती हैं उनको परमेश्वर का अवतार मानने वाले भक्तों ने उनके जीवन की सामान्य घटनाओं को भी ऐसी रंगीली भाषा में वर्णन किया है कि किसी विचारवान् के लिये ये कदापि विश्वसनीय नहीं हो सकतीं पर इनके भक्तों का यही मतलब था।

सांसारिक सामान्य बातों के लिये अलौकिक शब्द प्रयोग नहीं हो सकते। सुतरां हर एक महान् पु०ष बहुत सी ऐसी बातों का कर्ता वर्णन किया जाता है जो जन साधारण की दृष्टि में अलौकिक तथा आश्चर्यजनक दीख पड़ती हैं। प्रत्येक महान् पुरुष के अनुयायी तथा भक्तों ने उसके बचपन की घटनाओं को इस प्रकार अलंकृत कर दिया है कि वे लौकिक से अलौकिक होजाती हैं। पर विचारवान् पुरुष अपनी विवेचना शक्ति द्वारा उन अलौकिक व्यवहारों में से भी कुछ न कुछ सत्य अवश्य निकाल लेता है । कृष्णचन्द्र ने अपने बचपन में गोकुल में रह कर जो अलौकिक कार्य्य किये हैं उनका हम यहाँ संक्षेप विवरण लिखते हैं:—

(१) कृष्णचन्द्र को गोकुल पहुँचे अभी बहुत दिन न बीते थे कि एक पूतना नाम्नी 'राक्षसी' रात को नन्द के घर में

(१) अब भी बहुत लोग अपने बच्चों को पड़ोसी दाइयों के हवाले कर आते हैं, और उनके बच्चे प्राप्त होने पर उन्हें अपने घर ले आते हैं।

घुस आई और कृष्ण को उठाकर निज स्तन से दूध पिलाने लगी। उसके दूध में यद्यपि ऐसा विष भरा था कि यदि कोई दूसरा पान करता तो मर जाता, परन्तु कृष्ण ने इतने वेग से उसके स्तन को मुख में लेके खींचा कि वह चिल्ला उठी, उसकी चिल्लाहट से बहुतेरे स्त्री पुरुष इकट्ठे होगए।

इस घटना की सत्यता यों प्रतीत होती है, कि कृष्ण जी "पूतना" नामक रोग में ग्रसित होगये हों चिकित्सा के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सुश्रुत' में 'पूतना' नाम एक भयंकर रोग का बताया गया है। जिसकी पीड़ा से छोटे बच्चे प्रायः मर जाया करते हैं (१) हैं।

---

(१) इस घटना के विषय में पुराणों में बड़ा मतभेद है जैसे विष्णुपुराण में लिखा है कि "पूतना" ने रात को सोते हुए कृष्ण जी को उठाकर निज स्तन से लगालिया और दूध पिलाने लगी। चिल्लाहट सुन कर यशोदा जागी इत्यादि इत्यादि।

भागवत की कथा यह है कि एक दिन जब यशोदा मन्दिर में विराजमान थीं तो पूतना एक सुन्दर रूप धारण करके उस के पास जा बैठी और अपनी बातों से यशोदा को ऐसा मोह लिया कि चुपके २ कृष्ण को उसकी गोद से अपनी गोद में लेलिया और छातियों से दूध पिलाने लगी और हरिवंश पुराण में "पूतना" नाम एक पक्षी का कहा गया है।

वर्तमान समय की चिल्लाहट का हाल इसी से प्रकट होता है कि इस घटना के बाद यशोदा को यज्ञ की रक्षा के हेतु टोने कराने पड़े। और मंत्र यंत्र तथा तावीज़ गले में लटकाने पड़े। कहाँ तो यह कथन कि महाराज ईश्वर थे और कहाँ उनकी रक्षा में टोने टोटकों की आवश्यकता हुई सारांश यह कि इनका परस्पर विरोध इनकी सत्यता को भली भांति प्रगट कर देता है।

(२) दूसरी बात इस प्रकार वर्णन करते हैं कि यशोदा ...ष्ण को अपने छकड़े के नीचे लिटा कर आप वस्त्र धोने ...ली गई कृष्ण सो रहे थे जब जागे और माता न मिली तो ...क से व्याकुल हो चिल्लाने लगे और इस जोर से लातें ...मारने लगे कि वह छकड़ा जिस पर घड़े इत्यादि रक्खे हुए ...उलट गया। जिससे कुल बासन टूट गए पर कृष्ण के चोट ...आई और वह फिर सो गये। जब यशोदा आई तो बच्चे ...को सोता पाया। वह इस घटना को देख चकित हो गई। फिर ...सने और नन्द ने मिलकर उन टूटे हुए घड़ों और बर्तनों की ...जा की और उन पर दही और फल फूल चढ़ाया। पाठक ...नन्द ! क्या आप ने नहीं सुना, कि किसी मकान की छत गिर ...गई और उसमें जो बालक सो रहे थे सही सलामत सोते हुए ...रह गए। यदि ऐसी घटनायें खोजी जांय तो बहुत मिलेंगी ...जिन में छत गिर गई हों। चारपाइयां टूट गई हों उन पर के सोये अज्ञान बालकों को कोई चोट नहीं लगी। शेष रही यह बात, कि कृष्ण जी की लात की चोट से छकड़ा उलट पड़ा तो इसका यथेष्ट प्रमाण ही क्या है। और फिर भी यह कोई ऐसी अलौकिक वा असंभव घटना नहीं कही जासकती। संभव है कि छकड़ा किसी ऐसी तरह खड़ा हो कि उस पर तनिक ठोकर लगने से वह गिर पड़ा हो। अथवा किसी पशु ने गिरा दिया हो वा कोई अन्य कारण से गिर पड़ा हो।

(३) तीसरी घटना (१) यह है कि एक उड़ने वाला राक्षस (कदाचित् कोई पखेरू हो) तृणावर्त नामी उनको लेकर उड़

(१) इस घटना के स्मारक में महावन में एक कोठरी बनी हुई है। जहां कृष्ण की मूर्त्ति बना कर उस पर दो परों की छाया डाली हुई है।

गया परन्तु बालक में इतना बोझ था कि तत्क्षण भूमि पर आ गिरा। बच्चा तो बच गया पर वह 'स्वयं वहीं मर गया।

हम प्रति दिन ऐसी बातें देखते हैं, जिसमें परमात्मा बड़ी तत्परता से अबोध बालकों की रक्षा किया करते हैं। कई बार बालक छत से गिर पड़ा है पर उसे तनिक भी चोट नहीं आई है तात्पर्य्य यह कि ये सारी घटनायें ऐसी हैं कि जिसमें से यदि कवियों की अत्युक्ति निकाल दी जाये तो फिर उन में असंभवता को गन्ध भी नहीं रह जाती और न उन्हें अमानुषी ही कहने का साहस पड़ता है।

एक वर्ष बीतने पर वसुदेव ने अपने पुरोहित गर्ग को भेजा जिसने चोरी चोरी उनका नामकरण संस्कार कर दिया सुरा रोहणी के बालक का नाम बलराम और देवकी के पुत्र का कृष्ण रक्खा गया।

यह दोनों बालक ज्यों ज्यों बड़े होते गये उनकी चंचलता भी बढ़ती जाती थी इन में कृष्ण विशेषतः चतुर और चंचल थे। रेंगते रेंगते डंगरों में जा घुसते और छोटे छोटे बछड़ों से खेला करते। दूध दही के बरतन को उलट देते। जब तनिक टांगों में बल आया तो इन के ऊधम ने और भी रंग पकड़ा। घर से निकल जाना, दूसरों के घरों में जाकर ठट्ठा करना, बछड़ा या गउओं को पूछ खींचना। इत्यादि बातें ऐसी थीं जो एक चंचल, चतुर तथा बुद्धिमान् लड़के में हुआ करती हैं। और जिनसे तंग आकर उनके माता पिता वा शिक्षक उन्हें ऊधमी कहने लग जाते हैं क्योंकि उनको ऐसे चंचल लड़कों के शिक्षण का ढंग नहीं आता। वह स्वयं इसके ढंग से अनभिज्ञ होते हैं। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि कृष्ण अपनी बाल्यावस्था में बड़े चंचल तथा ऊधमी थे। अपने

कामों को बड़ी फुर्ती से करते थे। भय तो कभी इनके पास नहीं फटकता था। उत्तर देने तथा हंसी ठट्ठे में भी वैसे ही प्रवीण थे। पुराण तो इनके हंसी ठट्ठे का यहांतक वर्णन करता है कि वह पड़ोसियों का दूध पीजाते थे, दही खाजाते थे और यदि इस बीच में कोई आ निकलता तो दूर सामने खड़े हो हीस हीस कहने लग जाते। सारांश यह, कि कृष्ण अपने समकालीन बालकों से प्रत्येक बात में बढ़े चढ़े थे। गोप बालकों की मंडली में बैठे हुये वा फिरते हुए भी एक विचित्र आनबान रखते थे और अपने साथियों में सरदारी और बड़प्पन के रंग ढंग दिखाते थे।

निडर ऐसे थे कि कैसी मरखही गाय वा सांड से न डरते, भेड़ियों वा दूसरे जंगली जानवरों से निर्भय बन में घूमा करते थे यशोदा बिचारी इधर उधर ढूंढा करती, इन्हें देखते ही बिजली की तरह वह कहीं छिपजाते. कभी यमुना में जा घुसते। रात को जब वह सो जाते तो वह समझती कि आज का दिन कुशल से बीता। पर इतने चंचल होते हुये भी वह सब को प्यारे लगते थे। क्योंकि एक तो वह ऐसे रूपवान् थे कि सब छोटे बड़े उन पर प्रेम रखते, दूसरे उनकी चंचलता मानो एक मोहनी थी जो कठोर से कठोर हृदय को भी शांत करके हंसा देती थी। तीसरे अपने हमजोलियों में वह बड़े सर्वप्रिय थे। उनकी बात सब मानते उनसे जुदा होना उन्हें बड़ा खटकता वह दिन भर उन्हें अपनी हास्यप्रद बातों से हंसाया करते। नाचते वह ऐसे थे कि देखने वाला हंसते हंसते बावला होजाता। उनकी बोली ऐसी सुरीली थी कि छोटी उमरमें गड़रियों के गीत गान करके भीड़ अपने पास जमा कर लेते, कुछ बड़े होने पर बंसी बजाने में प्रवीण हो गए थे। इन सब

गुणों ने मिलकर उस जंगली जाति को ऐसा मोहित कर लिया था कि वे उनके (कृष्णके) भक्त हो गए थे। कृष्ण ने गड़रियों, चरवाहों, किसानों, तथा जमींदारों के बीच ऐसे गुण प्रगट किए जिससे प्रत्येक छोटा बड़ा उनकी ओर खिचने लगा।

समय के फेर ने उन्हें महलों के बदले फूस की झोपड़ियों का मुंह दिखलाया। सुन्दर सुन्दर सवारियों के स्थान में छकड़े की सवारी दी। धनुष बान तथा ढाल तलवार के बदले गाय हांकने का डंडा हाथों में पकड़ाया। बहुमूल्य सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण न देकर तन ढकने को एक लंगोटी दी। शस्त्रविद्या से युद्ध करने की शिक्षा की अपेक्षा बनैले पशुओं से मल्लयुद्ध करना सिखाया। और संगीत शास्त्रों से शिक्षा न दिला कर देहाती बंशी पर संतोष कराया। कुटिल काल! तू बड़ा प्रबल है तेरे हथखंडों से न कोई बचा है और न बचेगा।

पर यह सब बातें उन्हें ऐसी भाईं और उन्होंने अपनी विपत्ति से ऐसा लाभ उठाया कि उन सब कठनाइयों ने उनकी स्वाभाविक सौजन्यता तथा जातीय कुलीनता को और भी निर्मल बनादिया।

उन गोपों की मंडली में किसी २ को ही यह मालूम था कि इस चञ्चल लड़के के भेष में एक राजकुमार पल रहा है, जो समर्थ होकर अपने माता पिता के शत्रुओं का सिर कुचलेगा और अपने रक्त के प्यासों का लहू पिएगा। जो अपने देश और अपनी मातृभूमि को अत्याचारी कर्मचारियोंके पंजे से छुड़ा कर उनका उद्धार करेगा। जो फिर विद्या और

शस्त्र की शिक्षा पाकर ऊंचे से ऊंचे धर्म का उपदेश करेगा और अन्त में अपने पीछे अपना शुद्धाचरण छोड़ जावेगा कि लाखों वर्ष तक लोग उसको परमेश्वर की पदवी देकर उसका पूजन करेंगे।

बिचारी यशोदा कृष्ण के ऊधम से ऐसी तंग आगई थी, कि उसने हारमान कर एक दिन कृष्ण की कमर में रस्सी डाल दी और उस रस्सी को लकड़ी की एक ओखली से बांध दिया पर ज्यों यशोदा ने पीठ मोड़ी कि कृष्ण ने रस्सी तोडना आरम्भ किया और ऐसा जोर लगाया, कि ओखली को भी साथ खींच ले चले उनके आंगन में (१) अर्जुन के दो वृक्ष थे ओखली वृक्ष में फंस गई। कहते हैं, कि जब कृष्ण ने दूसरी बार जोर लगाया तो वृक्षों जड़से उखड़ कर गिर पड़े जिस पर इतना कोलाहल मचा कि सारा गांव उमड़ आया कृष्ण लोगों को देख कर हंसने लगे। हम नहीं कह सकते कि इस घटना में कहां तक सत्य है पहिली बात तो कुछ असम्भव नहीं जान पड़ती पर दूसरी बात अर्थात् एक छोटे से बच्चे के बल से दो बड़े वृक्षों का जड़ से उखड़ जाना कदापि सम्भव नहीं। हां यदि उन्हें बड़े वृक्ष की अपेक्षा छोटा पौधा मान लें तो झगड़ा मिट जाता है पर ऐसा जान पड़ता है कि कृष्ण के भक्तों ने इन पौधों को अत्युक्ति से बढ़ाते २ ऐसे बड़े वृक्ष की पदवी प्रदान करदी है जिन के बोझ से आधा गांव दबगया।

---

(१) यह वर्णन विष्णुपुराण में नहीं है। मिस्टर पाल जिन्होंने अंगरेजी में कृष्ण जीवनी लिखी है, लिखते हैं कि अर्जुन एक छोटे से पेड़ का नाम है जिसको अंगरेजी और बंगला में क्रोटी कहते हैं।

अवतारों की अमानुषी शक्ति के मानने वालों के लिये (चाहे वे किसी जाति के हों) इन सब कथाओं को सर्वतो भाव से सत्य मान लेने में कुछ संदेह नहीं होना चाहिये हां वे महाशय जो उनकी अमानुषी शक्ति को नहीं मानते हैं वे अपने लिये आप परिणाम निकाल लेंगे।

पांचवां अध्याय।

गोकुल छोड़ वृन्दावन जाना।

इस प्रकार गोकुल में रहते जब कुछ काल बीत चुका तो गोपों ने अपने जातीय स्वभाव अथवा आवश्यकता के हेतु अपना निवासस्थान बदलना चाहा और गोकुलसे कुछ दूरी पर एक वन पसन्द किया, जिसका नाम वृन्दावन रक्खा (१)

---

(१) जंगलों में घूमने वाली ये जातियां यदि स्थिर होकर एक स्थान में बस जांय तो फिर वो अनस्थिर जातियां न कहलायें और दूसरी जातियों के समान शहरों व देहातों की आबादियों में मिल जावें और न इस कदर डंगर रख सकें जितने कि वह इस अवस्था में किसी खर्च के बगैर रख सकती हैं। यह जाति इसी में प्रसन्न रहती है कि किसी स्थान पर सर्वदा के लिये न रहें अपनी इच्छा से समय समय पर घर बदला करती हैं जब किसी एक जगह से उनका जी उकता जाता है या वहां पर उनके डंगरों के लिये पूरी हरयाली नहीं रहती तो वह उसी समय अपना डेरा उठा किसी दूसरी जगह झोपड़ी डाल देती है। हरिवंश पुराण में इस स्थान व गृहों के बदलने का कारण यह लिखा है कि गोकुल में भेड़ियों की तकलीफ इतनी बढ़ गई कि गोप लोगों ने अपने जान व माल के बचाने के लिये इस जगह को छोड़ देना आवश्यक समझा।

गया। गोपों ने गोकुल में मिट्टी वा ईंट के घर द्वार तो बनाए नहीं थे जो उन्हें उनके छोड़ने में कठिनता होती। विचार करते ही सारी आबादी अपना डेरा डंडा उठा अपने छकड़ों और डंगरों को आगे हांक वृन्दावन की ओर चल दिए और यहां जाकर गोकुलकी तरह एक हल्का बांधकर बस्ती बनाली ऐसा जान पड़ता है कि वृन्दावन को चरी तथा घास पात की बहुतायत के विचार से पसन्द किया था। स्थानों का यह परिवर्तन प्रत्येक प्रकार से कृष्ण के अनुकूल पड़ा। अर्थात् उनकी वंशी की सुरीली गूंज से सारा वृन्दावन गूंजने लगा आस पास के बन बाटिका का कोई स्थान कृष्ण और उनके साथियों से छिपा न रहा। जहां लहलहाती हरियाली देखते वहीं डंगर हांक ले जाते। डंगर हरी घासों से पेट भरते और आनन्द पूर्वक स्वच्छ वायु में अठखेलियां करते उधर ये लड़के किसी छाये में बैठ गाने बजाने का आनन्द लूटते। सन्ध्या को अपने डंगर हांकते हुए अपने ग्राम में आ जाते। भोजन से छुट्टी पाने पर सारा गांव क्या बाल क्या वृद्ध सभी एकत्र होते और कृष्ण की वंशी सुनते। युवा और युवतियां तो कृष्ण की वंशी पर ऐसे लट्टू थे कि जब यह वंशी बजाते तो इनके दल के दल एक वृत्त बना कर उसके गिर्द नाचते और चक्कर लगाते और बाकी सब तमाशा देखते।

जंगल में जब कभी कोई बनैला पशु मिल जाता तो सब के सब मिल कर उसका पीछा करते और या तो उसको मार डालते या भगा देते। ऐसी घटनाओं का पुराणों में प्रायः वर्णन किया है। हम उनमें से कुछ को यहांउधृत करते हैं :—

(१) एकदिन का ज़िक्र है- कि कृष्ण और बलराम अपने साथियों सहित डंगर चरा रहे थे। साथियों में से किसी लड़के ने कहा कि इस बन में एक जगह खजूर (वृक्ष विशेष) का कुंज है जिसमें बड़ी २ और मीठी खजूरें (फल) लगी हुई हैं। पर उस कुंज के बीच में एक भयङ्कर पशु है। जिसके भय से वहां कोई नहीं जाता। यह सुन कृष्ण और बलराम वहां जाने पर तैयार होगए। और वहां जाकर ईंट और पत्थर चलाने लगे, ईंट और पत्थर की भरमार से वह पशु चौंका और भयभीत हो बाहर निकला (पुराणों में इस पशु का नाम दहनक है, और शकल गदहे की लिखी है) जब सामने आया तो लड़कों ने उस पर ढेले बरसाना आरम्भ किया। यहां तक कि वह बिचारा चोटों से मर गया।

(२) ऐसे ही अरिष्ट नामी सांड से लड़ाई का वर्णन है।

(३) तीसरी लड़ाई केशी नामी घोड़े से हुई। और कृष्ण ने उसपर जय प्राप्त किया। फिर एक लड़ाई (कालिया नाग) से हुई।

कहते हैं कि यमुना के एक भाग में जहाँ एक झील सी बन गई थी कालिया नामक एक नाग रहता था जिसके भयसे कोई उधर फटकने नहीं पाता था। कृष्ण एक दिन संयोग से वहां जा पहुंचा और कालिया ने उसे आ घेरा कृष्ण उससे भिड़ गए और कुछ देर लड़ाई होने पर कालिया घायल होकर भाग निकला (१)।

इसके दो अर्थ होसकते हैं—

(१) यह कि यमुना के किसी भाग में "कालिया" नामक कोई सर्प रहता था और कृष्ण ने उसे वहां से भगा दिया।

पुराणों में इन्हीं घटनाओं को अमानुषी मानने हैं और इन पशुओं को "दैत्य वा राक्षस" लिखते हैं पर हमें तो इन में कोई ऐसी असाधारण बात दिखाई नहीं देती जो हमें इन घटनाओं को मनुष्य कृत मानने में तनिक भी बाधा डालती प्रतीत हो। गांव भैंडगर चराने वाले लड़कों से आए दिन ऐसी घटनायें हुआ करती हैं, ग्रामीण बालकों की मंडली में कृष्ण और बलराम का लीडर बनजाना कौनसी बड़ी बात थी

एक क्षत्रिय कुल का युवराज जिसको विधाता ने राज्य करने को बनाया था पर जो काल की कुटिल गति से ग्रामीण चरवाहों की मंडली में आगिरा था। यदि वह एक छोटी सी बस्ती में सब का शिरोमणि बन जाये तो इस में कुछ आश्चर्य नहीं। यदि उस पुरी में उसका डंका बजने लगा था तो यह कोई विचित्र बात नहीं थी। सारा बन उसके मीठे गान से गूंज उठा। सारे बन में उसकी शूरता सराही जाने लगी। गडरियों और ग्वालों के लड़कों पर कृष्ण और बलराम राज्य करने लगे। ये दोनों राजकुमार जंगली बालक सेना के सेनापति बन बैठे, ये उनकी बनावटी लड़ाइयां आगे का परिचय देती थीं जब कि उन्हें सचमुच युद्ध की रचना करनी होगी,

---

(२) यह कि नाग जातिका कोई सरदार "कालिया" नामक वहां रहता था। जो गोपों को कुछ हानि पहुंचाता था, कृष्ण ने इस सरदार को लड़ाई में हराकर उस जंगल में से भगा दिया हो।

मि० पाल यही दूसरा अर्थ लगाते हैं क्योंकि पुराणों में कालिया को मनुष्य माना है और उसकी स्त्रियों की कान की बालियां तथा दूसरे आभूषणों का वर्णन किया है।

उनकी मनमोहनी वाणी मानों उस वशीकरण के सदृश थी जिससे उन्होंने सारी सृष्टि को अपने वश में कर लिया था और जिससे स्वर्ग का द्वार खुल गया और मोक्ष का मार्ग सुगम होगया था। जिस बालक ने बचपन में बनैले पशुओं को वध करके मनुष्य का उपकार करना सीखा हो वह वयप्राप्त होकर अत्याचारी दुष्टात्माओं को अत्याचार वा अनुचित कार्य्य करने से कैसे न रोकता। वह अपने अंतिम समय तक यही शिक्षा देता रहा कि दुष्टों को चाहे ये पशु हों चाहे मनुष्य सदा दण्ड देते रहना चाहिये। जिससे परमेश्वर की अबोध प्रजा उनके अत्याचारों से सुरक्षित रहे।

छठवां अध्याय।

रास लीला।

हिन्दुओं में कृष्ण के नाम पर एक 'इन्टिटयूशन' प्रसिद्ध है जिसे रासलीला कहते हैं। इस रास लीला के विषय में अनेक मिथ्या बातें जन साधारण में फैली हुई हैं। जिससे कृष्ण के निर्मल नाम और यश पर एक प्रकार का धब्बा लगता है यहां तक कि उसी आशय पर कृष्ण को विषयी और दुराचारी बताते हैं। लाखों हिन्दू तो कृष्ण का नाम केवल रासलीला के सम्बन्ध से जानते हैं। वे न कृष्ण की उच्च शिक्षा से परिचित हैं और न उनको यह ज्ञात है कि कृष्ण ने अपने जीवनकाल में

अपने देश के लिए क्या २ कार्य्य किये हैं और इतिहास उनको किस प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है वह केवल उस कृष्ण से परिचित हैं और उसी की पूजा अर्चना करते हैं जो रासलीला में गोपियों के साथ नाचता और गाता था।

इस 'इन्स्टिट्यूशन' में जहां तक सत्य का लेश है वह इस-को जहां तक श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्ध है उसे हम पिछले अध्याय में दिखा चुके हैं। इससे अधिक वा इसके अतिरिक्त जो कुछ कहा जाता, या किया जाता है, अथवा सुना जाता है वह मिथ्या है।

स्मरण रखना चाहिये कि कृष्ण और बलराम १२ वर्ष से अधिक गोप लोगों में नहीं रहे। १२ वर्ष की अवस्था में वा उसके लगभग अथवा उससे कुछ पश्चात् वे मथुरा में चले आए और फिर यावज्जीवन उनको कभी गोकुल व वृन्दावन में जाने का अवकाश न मिला, यहांतक कि उन्हें मथुरा भी छोड़नी पड़ी। ऐसी दशा में टुक विचारना चाहिये कि गोपियों से प्रेम या सहवास करने का उन्हें कब वा किस आयु में अवसर मिला होगा।

सुतरां वह उन सब अत्याचारों के कर्त्ता कैसे कहे जासकते हैं जो उनके नाम से रासलीला वा ब्रह्मोत्सव में दिखाये जाते हैं। हिन्दुओं की सामाजिक अधोगति की यदि थाह लेना हो तो केवल ब्रह्मोत्सव देख लेना चाहिए संसार की एक ऐसी धार्मिक जाति जिसकी धर्मोन्नति किसी समय जगद्विख्यात थी, आज अपने उस धर्म पर यों उपहास करने पर उतारू होगई है धर्मके नामपर हज़ारों पाप करने लगी है और फिर आड के लिये ऐसे धार्मिक महात्पुरुष को चुन लिया है। जिसकी शिक्षा में पवित्र भक्ति कूट २ कर भरी हुई है।

दुःख की बात है कि हमने अपने महान् पुरुषों का कैसा अपमान किया है। कदाचित् यह इसी पाप का फल है कि हम इस अधःपतन को पहुंच गए हैं और कोई हमारी रक्षा नहीं करता।

रासलीला का यथार्थ चित्र तो यों है कि वर्षा की ऋतु है। चारों ओर हरियाली लहलहारही है, एक प्रशस्त मैदान में मीलों तक घास पात वा वनस्पतियों के अतिरिक्त और कुछ दीख नहीं पड़ता वृक्षों में फूल खिले हुए हैं और फल लटक रहे हैं। प्रकृति देवी का यौवन काल है। आकाश मंडल मेघों से घिर रहा है। मेघों का रह रह के मधुर स्वर से गरज जाना कानों को कैसा भला लगता है, कभी २ बिजली ऐसे वेगसे इधर से उधर तड़प जाती है जिससे सारी पृथ्वी ज्योतिर्मयी होजाती है, मेघ धीरे २ बरस रहा है। पक्षिगण वृक्षों पर कलोल कर रहे हैं और उन्मत्त होकर पानी में स्नान कर रहे हैं पत्तों पर पानी की बूंदे मोतीसी दीख पड़ती हैं, और हाथ लगाते ही चूर २ होजाती हैं वायु के झोंकों से वृक्ष जिस समय झूमने लगते हैं और उनसे पानी टप टप चूने लगता है तो जान पड़ता है कि मानों अपनी प्रिया की चाह में आँसू बहा रहे हैं। उनके आँसुओं की बूंदे जिन पर पड़ती हैं उनके अशान्त तथा संतप्त हृदय को ठंडक पहुंचाती हैं। ऐसे सुहावन समय में प्रकृति मनुष्य के चित्त को चंचल करदेती है दुराचारी मनुष्य अपनी अपवित्रतामें उन्मत्त प्रकृति देवी के इस पवित्र सौन्दर्य पर हस्तक्षेप करने लगते हैं पर लज्जावश मनुष्य दृष्टि से छिपकर केवल कुछ मित्रों में ही ऐसा करने पाते हैं। परन्तु जन साधारण का हृदय अपनी सरलता में यों ही उछला पड़ता है। ऐसे सुहावने समय

में प्रत्येक मनुष्य की कवित्व शक्ति उत्साहित हो गाने बजाने की ओर खींचती है। गोपों की छोटी सी मंडली अपनी प्राकृतिक फुलवाड़ी में वही आनन्द मंगल से गाने बजाने में मग्न है। बालक कृष्ण को वंशी बजाने की बड़ी चाहना है। और उसने इस बाजे में प्रवीणता प्राप्त की है, जब वह वंशी बजाता है तो उसके चारों ओर भीड़ लग जाती है। गोपों के लड़के और लड़कियाँ वृत्त बनाकर उसके चहुं ओर खड़े हैं। और नाचना और गाना आरम्भ करते हैं। इस मंडली में जिसे देखिये वही इस रंग में रंगा हुआ दीखरहा है। ऐसे समय में कृष्ण भी वंशी बजाता बजाता नाचने लगता है। बस यही रास लीला है और यही रास लीला की विधि है।

पाठक वृन्द! यथार्थ तो बस इतना ही था। जिस पर हमारे पौराणिक कवियों ने ऐसी २ युक्तियाँ लगाईं इतना ताना तना कि बस पृथ्वी और आकाश को एक कर दिया। इन तांत्रिक कवियों ने कृष्ण का ऐसा चित्र खींचा है कि यदि उसका सहस्रांश भी सत्य हो तो हम यह कहने में तनिक भी नहीं सकुचायेंगे कि कृष्ण अपने जीवन के इस काल में बड़ा विषयी और कामातुर था। आज कल के पौराणिक विद्वानों पर भी इस बात की पोल खुल गई है और वह इन प्रेम प्रहसनों से परमेश्वरीय प्रेम का सार निकालने की चेष्टा करते हैं पर हमारी समझ में यह चेष्टा वृथा है। क्यों कि जब हम देखते हैं कि विष्णुपुराण में न राधा का वर्णन है और न गोपियों के संग कृष्ण की मुंहजोरियों का ही कुछ इशारा है और न चीरहरण की ही कहानी है। हरिवंश और महाभारत में भी इन बातों का कहीं वर्णन नहीं यह सारी कथाएँ ब्रह्मवैवर्त और भागवत पुराण के कर्ताओं की गढ़न्त हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण वल्लभाचारी गोसाइयों का बनाया है, जिन्हों ने देश में धर्म की आड़ में कैसा जाल रच रक्खा है, और अकथनीय अत्याचार (१) किया करते हैं। उन्हीं के एक चेले नारायण भट्ट ने "ब्रजयात्रा" और रासलीला की नींव डाली जितनी पुस्तकें राधा के प्रेम विषय की मिलती हैं वह प्रायः सब इसी पंथ के गोस्वामियों की रची हुई हैं।

परमेश्वर जाने इन लोगों ने कृष्ण के जीवन को क्यों कलङ्कित कर दिया है। पर जब उससे पहिले के ग्रंथों में इन बातों का कहीं वर्णन नहीं पाते तो इन पर विश्वास करने का हमें कोई कारण नहीं दीखता।

दूसरे कई एक पुराणों के अनुसार कृष्ण की अवस्था उस समय जब (वह मथुरा में आये हैं) १२ वर्ष की थी एवं कैसे संभव हो सकता है कि १२ वर्ष की अल्प आयु में उससे यह सब बातें प्रकट होतीं और उसके पास तरुण स्त्रियां भोग विलास की इच्छा से आतीं और कामातुर हो उससे अपना सतीत्व नष्ट करातीं। तीसरे महाभारत में प्रायः ऐसे स्थान आये हैं जहाँ कृष्ण को उनके शत्रुओं ने अनेक दुर्वचन कहे

---

(१) जैसे पुराणों में एक कहानी है कि राधा की सहेली मानवती का विवाह एक बुढ़िया के पुत्र से हुआ। कृष्ण मानवती को देख कर कामातुर होगये और अपनी मनोकामना पूर्ण करने पर तत्पर हुए, जिसके लिये अपनी ईश्वरीय प्रभुता काम में लाकर बुढ़िया के पुत्र का वेष धारण किया और उस के घर में जा घुसे और बुढ़िया को यह पट्टी पढ़ादी कि तू द्वार पर बैठ और यदि कोई भीतर आना चाहे तो न आ दे। यदि कोई तेरे बेटे का वेष बदल कर आवे और कहे कि मैं तेरा बेटा हूँ—तो भी तू द्वार न खोलियो। और सुद मानवती के सहवास का आनन्द लूटता रहा (देखो आदन साहब की पुस्तक मथुरा)

हैं और उसके जीवन के सब दोष गिनाये हैं जैसे राजसूययज्ञ के समय शिशुपाल क्रोध में आकर कृष्ण के अवगुण बताने लगा है और उसके बचपन के सब दोष कह गया है पर दुराचार या विषयी होने का तनिक इशारा भी नहीं किया है। क्या सम्भव था कि कृष्ण की जीवनी यों गंदी हो (जैसा कि ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है) और शिशुपाल क्रोध वश सभा के बीच उसके सब छोटे बड़े अवगुण प्रगट करे, और इसका (जो महादोष कहा जा सकता है) वर्णन तक न करे। वही अवसर तो उनके प्रगट करने का था क्योंकि भीष्म पितामह ने सारी सभा में उसी को उच्चासन देना चाहा था।

कृष्ण उनका समकालीन था यदि वास्तव में कृष्ण में ये दोष होते तो यह कैसे संभव था कि ऐसे २ धर्मात्मा महान् पुरुष उसका ऐसा सम्मान करते और सारे आर्य्यावर्त में उसका यों मान होता। संस्कृत के प्रायः पुस्तकों में कृष्ण को 'जितेन्द्रिय,, लिखा है। "जितेन्द्रिय,, उसको कहते हैं जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो यदि कृष्ण को वास्तव में राधा वा मानवती से प्रेम था तो इन पुस्तकों में उसे जितेन्द्रिय क्यों लिखते? अब रासलीला में नाचने के विषय में प्राचीन ग्रंथों से ऐसा प्रतीत होता है, कि उस समय वृत्त बनाकर नाचने की चाल सारे भारत में थी वरन् बहुत से ग्रंथकार तो कहते हैं कि स्त्री पुरुष मिलकर नाचते थे जैसे कि आजकल अङ्गरेज़ों में चलन है

हाँ 'चीरहरण लीला यह कथा भागवत में है, विष्णु-पुराण, महाभारत और हरिवंश में इसका वर्णन नहीं है आजकल के पौराणिक पंडित तो इसको वाक्यरचना बल-

लाते हैं। इसकी कथा यों है कि एक दिन गोपियां किसी सरोवर में नहा रही थीं उनके वस्त्र किनारे पर रक्खे थे। कृष्ण संयोग से वहाँ आपहुंचे वा इसी ताक में छिपे बैठे थे उन वस्त्रों को ले भागे और एक वृक्ष पर जा चढ़े। जब गोपियां स्नान करके जलके बाहर आईं तो क्या देखती हैं कि वस्त्र नहीं इधर उधर ढूंढने पर देखा कि कृष्ण महाशय एक वृक्ष पर बैठे हैं और वस्त्रों की गठड़ी पास रख छोड़ी है।

तब गोपियां अपना २ वस्त्र उनसे मांगने लगीं और कर जोड़ कर विनती करने लगीं। पर कृष्ण ने कहा कि 'नंगी मेरे सामने आओ तो दूंगा" सुतरां वह सब नंगी वस्त्रहीन उनके सामने आईं तब महाशय ने उनके वस्त्र लौटा दिये। आजकल के पौराणिक टीकाकार इसका सार यों निकालते हैं कि यहां पर कृष्ण शब्द परमेश्वरके लिये प्रयोग हुआहै। यमुना से तात्पर्य परमेश्वर का प्रेम, गोपियों के वस्त्रसे मुराद सांसारिक पदार्थ हैं। अब इस कथा से यह भाव निकलता है कि परमात्मा के प्रेम में मग्न होकर मनुष्य को चाहिये कि किसी सांसारिक पदार्थ का विचार न करे वरन् उनका ध्यान छोड़ दे। पर खेद है कि मनुष्य प्रेम की नदी में स्नान करके भी उन्हीं पदार्थों के पीछे दौड़ता है। परमात्मा उसे पश्चात्ताप दिलाने के हेतु उन पदार्थों को उठा लेता है जिससे उसे सम्बन्ध है। यहांतक कि वह (मनुष्य) अपने इष्ट पदार्थों के लिये कोलाहल मचाता है। परमात्मा उसकी पुकार सुन कर उसे अपने समीप बुलाता है। जब वह वस्त्रहीन आने में संकोच करता है तो परमात्मा उसको यह उपदेश करता है कि मेरे पास नग्न (नंगा आने में न सकुचो) मेरे पास आने में अपना तन वस्त्र से ढकने की आवश्यकता नहीं अपने

को सांसारिक पदार्थों से पृथक् करके मेरे पास आ। तब मैं तेरी सारी कामनायें पूरी करूंगा और तन ढकने को वस्त्र दूंगा।

यह वाक्यरचना चाहे कितनी ही उत्तम क्यों न हो पर इसके भाव में भ्रम पड़ने की आशङ्का है। यदि इन सब कथाओं में ऐसी अत्युक्ति बांधी गई है तो हमारी राय है कि इन्हीं अत्युक्तियों ने हिन्दुओं को बड़ी हानि पहुंचाई और उनके आचार व्यवहार को भी बिगाड़ दिया है। परमेश्वर के लिये अब उनको छोड़ो और सीधी रीति से परब्रह्म परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित होकर भक्ति और प्रेम के फूल चुनो। कमसे कम कृष्ण जैसे महान् पुरुष को कलङ्कित न करो यदि और किसी विचार से नहीं तो अपना पूज्य और मान्य समझ कर ही उस पर दया करो। उसे पाप कर्म का नायक न बनाओ। और उन महानुभावों से बचो जो इस इस महान् पुरुष के नाम पर तुम्हारा व्रत बिगाड़ रहे हैं और तुमको और तुम्हारी ललनाओं को नरकगामी बनाते हैं।

सातवां अध्याय

कृष्ण और बलराम का मथुरा में लौटआना और कंस का उन के हाथ से मारा जाना।

आ

खिर यह कब तक संभव था कि यादव वंश के दो राजकुमार यों गडरियों के वेष में छिपे रहते और कभी पहिचाने नहीं जाते। कस्तूरी चाहे कितने ही वेठनों में क्यों न लपेट कर रक्खी जावे, पर उसकी गन्ध छिपाये नहीं छिप सकती।

वैसे ही कृष्ण और बलराम का नाम धाम भी कब तक गुप्त रह सकता था। उनकी आकृति और उनका चाल चलन उन के वंश का परिचय देती थी उनका ऊंचा ललाट और विशाल नेत्र पुकार पुकार के कहते थे कि ये दोनों लड़के जन्म से गोप नहीं हैं और न दूध घी वा मक्खन बेचना इनकी जीविका है जब इनको इस तरह रहते रहते कुछ दिन बीत गये और उनके पराक्रम और शूरता की कहानियां चारों ओर फैलने लगीं तो धीरे धीरे यह चर्चा हुई कि ये लड़के गोप नहीं हैं।

होते होते कंस तक भी यह बात (१) पहुंचगई। और उसे तत्काल यह शंका उत्पन्न हुई कि हो न हो यह दोनों लड़के वसुदेव के हैं जो उसके चोरा चोरी गोपों के बीच पले हैं। कुछ ठहर कर उसको इसका विश्वास होगया और फिर उसे यह चिन्ता लगी कि जिस तरह से हो इन दोनों को पकड़ के यमलोक पहुंचाऊं। जिसमें फिर कोई खटका न रहे संसार के इतिहास में कंस जैसे सैकड़ों ज़ालिमों का पता चलता है। जिन्होंने राज्य के लिये अपने वंश का विध्वंस कर डाला था उनके क्रूर खड्ग ने न तो बच्चे को छोड़ा है और न (२) बूढ़े को जिन्होंने इसी तरह अपने किसी और

(१) विष्णु पुराण कहता है कि नारद जी ने कंस को बहकाया कि वे दोनों लड़के वसुदेव के हैं। इधर तो कंस को यों बहकाया कि जबतक ये दोनों लड़के जीवित हैं तब तक तेरा राज्य सुरक्षित नहीं उधर कृष्ण और बलराम को बदला लेने पर तत्पर किया।

(२) हज़रत मूसा की बाल्यावस्था की भी ऐसी ही अनेक कहानियां प्रसिद्ध है।

शत्रु से छुटकारा पाने के लिये उनको शेर वा किसी हाथी से मल्लयुद्ध कराया है मुसलमान और राजपूतों के इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टान्त (१) मिलते हैं। पाठक! आप टुक इन पृष्ठों को खोलिये और विचारदृष्टि से देखिये कि वह जगत् पिता जगदीश्वर कैसा न्यायकारी है। और अपने असहाय और पीड़ित प्रजा का कैसे संरक्षण करता है? वह उन्हें ऐसी सहन शीलता प्रदान कर देता है कि वे हर एक कष्टों को सहन करके अपने को बचा लेते हैं। और इन पर अत्याचार करने वाले अपनी सारी शक्तियों के रखते हुए भी उन्हीं के हाथों नीचा देखते हैं।

कृष्ण और बलराम का हाल सुनकर कंस को भास हुवा कि अबःमेरा अन्त आन पहुंचा उसे अब निश्चय होगया कि जो आकाशवाणी देवकी के विवाह के समय हुई थी उस के पूरा होने का समय अब आ पहुंचा है। दुष्ट कंस! तू किस नींद सो रहा है। तेरे क्रूर हाथ से सृष्टि को छुड़ाने वाला, तुझ से बदला लेने वाला अब आन पहुंचा। तेरी सारी युक्तियां उसका बाल बांका करने में निष्फल हुई। यद्यपि उस के वध करने की इच्छा में तू ने सैकड़ों अज्ञान बालकों का वध कर डाला पर जिस को बचाना मंजूर था उसे विधाता ने बचा ही लिया।

---

(१) कर्नल टाड ने ऐसी अनेक कहानियां लिखी हैं। उनमें से एक मुकुन्दलाल राठौर की है जिसको औरङ्गजेब ने जीवित शेर के पिंजरे में बन्द कर दिया था। जंगल का शेर राजपूतनी के बच्चे से आंख न लड़ा सका। और मुकुन्दलाल सही सलामत पिंजरे से निकल आया—

वह भी अकेला बिना किसी शस्त्र के शेर पर विजयी हुआ।

बादशाही महलों में न पल कर नेचरके महलों में उसने परवरिश पाई और जंगली जानवरों के पड़ोस में नेचर ने उसे उन क्रूर बातों की शिक्षा दी जो दुष्टों के वध करने के लिये बहुत आवश्यक हैं। सारी बाल्यावस्था में वह यही शिक्षा पाता रहा कि अपने शत्रुपर दया करना धर्म नहीं। क्षेमय ने उसको दुष्टों के लिये निर्दयी बनाकर उससे यह काम कराया। जिस से बचने के लिये उस के सारे भाई बहनों का वध हुआ था पाप और अहंकार के बस होकर कंसको कभी विचार भी नहीं हुआ कि जिसको परमात्मा बचाना चाहता है उसे दुनिया की कोई शक्ति नहीं मार सकती।

सारांश यह कि कंस अब उन के वध को तय्यार हुआ और अब की यह तदबीर निकाली कि चतुर्दशी के दिन जो दंगल हुआ करता है उस में कृष्ण और बलराम को न्योता दिया और यादव वंश के एक माननीय सरदार अक्रूर को उन को लेने को भेजा विष्णुपुराण कहता है कि चलती बार कंस ने अक्रूर से अपना भीतरी अभिप्राय कह दिया था यह सच हो या न हो पर अक्रूर जिस समय वृन्दावन में पहुंचा और उस की दृष्टि दोनों भाइयों पर पड़ी तो वह उन के रूप राशि पर मोहित होगया और उनपर दया खा-के उन्हें यथार्थ भेद बता दिया कंस से लोग ऐसे पीड़ित हो रहे थे कि कदाचित् अक्रूर ने कृष्ण और बलराम को कंस के विपरीत बहका दिया हो तो इस में सन्देह नहीं पर फिर भी यह भेद जान कर उनके हृदय में भय न समाया और गोपों को साथ लेकर अक्रूर के साथ मथुरा को चले और सूर्यास्त के बाद वहां पहुंचे और आते ही पहिले कंस

के धोबी से उनकी मुठभेड़ हुई वह कुछ नीचता से पेश आया यहांतक कि विवाद (१) बढ़ गया और वह उन के हाथ से मारा गया। इस के पश्चात् उनका ऐसा दबाव बैठ गया कि जिस वस्तु की उन्हों ने इच्छा की सब उन्हें मिलती गई।

उधर कंस ने यह आज्ञा दी कि जिस समय कृष्ण और बलराम दंगल में पैर रक्खें उसी समय एक मस्त हाथी उनके ऊपर छोड़ दिया जाय यदि इस हाथी से वह बच निकलें तो फिर राज्य के दो बड़े पहलवानों से उनका मल्लयुद्ध कराया जाय दूसरे दिन ऐसा ही हुआ जब दोनों भाई दंगल में आए ता एक उन्मत्त हाथी उन पर छोड़ा गया तो उन्होंने बड़ी शूरता से उसका मुकाबिला किया और उस को मार के आगे बढ़े फिर दो बड़े बलवान् पहलवान उनके मुकाबले के लिए सामने आए। दंगल के चारों ओर भीड़ छारही थी। स्वयं महाराज एक मंडपके नीचे विराजमानथे। रानियां अलग एक मंडप में से तमाशा देख रही थीं। और बाकी सारी सेना और प्रजा अपने स्थान पर विराजमान थी एक ओर वसुदेव और देवकी बैठे अपने प्यारे पुत्रों की जान की रक्षा मना रहे थे उनके समीप ही वृन्दावन के गोप बैठे हुए दोनों भाइयों की करतूत देख रहे थे चारों ओर सन्नाटा छा रहा था हाथी के साथ मल्लयुद्ध होते देख कर सारी सभा जयजयकार की ध्वनि से गूंज उठी जब वह कोलाहल कुछ कम पड़ा तो क्या देखते हैं कि दो हृष्टपुष्ट पहलवान इनका मुकाबला करने के लिये आगे आए इस

(१) कहते हैं कि कृष्ण बलराम आदि सैर कर रहे थे उन्होंने दरबार जाने के लिये धोबीसे वस्त्र मांगा और इसी पर विवाद बढ़ा।

पर लोगों को क्रोध आया और चारों ओर से त्राहि त्राहि की ध्वनि करने लगे पर महाराज के बैठे रहते किसकी चल सकती थी। लड़ाई शुरू हुई एक एक पहलवान एक एक राजकुमार से भिड़ पड़ा और आपस में हाथापाही होने लगी, परिणाम जो विचारा था वही हुआ। यादवबंशीय राजकुमारों के आगे किराये के टट्टू न ठहर सके और पटकन खा गये। उनके पटकन खाते ही कृष्ण के नजरों तले अंधेरा छागया इतने ही में गोपों के लड़कों ने आकर कृष्ण और बलराम के साथ जयकारा मारा और विह्वल हो नाचने लगे। इनका नाचना कंस के घायल हृदय पर नमक के तुल्य था महाराज इनकी ढिठाई देखकर जल गया और आज्ञादी कि अभी ये लड़के कृष्ण और बलराम सहित सभा से बाहिर निकाल दिये जायें और वसुदेव का कठोरता से वध किया जाय और नन्द बन्दी कर दिये जांय पर बलराम और कृष्ण की शूरता को देखकर किसी का साहस न पड़ा कि वह इन आज्ञाओं का पालन करता वा उसके हेतु आगे बढ़ता। लोग तो आगे से हीं कंस से दुःखित थे। और चाहते थे कि किसी तरह उससे छुटकारा मिले सारांश यह कि सारी सभा में से कोई भी उसकी आज्ञा पूरी करने के हेतु न मिला। कंस यह लीला देख अनाथ बैठा था और सोच रहा था कि मेरा सारा किया धरा मिट्टी में मिल गया कि इतने ही में कृष्ण कूद कर उस मंडप में आ गया जहां कंस विराजमान था और आते ही आव देखा न ताव कंस को बालों से पकड़ (१) कर भूमि पर देमारा।

(१) भागवत से मालूम होता है कि कंस और कृष्ण का मुक़ाबला हुआ और कंस के जो आठ भाई थे वह भी लड़े और मारे गए।

कुछ देर तक दोनों में लड़ाई हुई और अंत में प्रतापशाली कृष्ण के हाथ से वह मारा गया। कंस से उसकी प्रजा ऐसी आतुर हो गई थी कि इतनी भीड़ में से किसी ने भी उसके बचाने का यत्न न किया। मानो इस अवसर को दुर्लभ समझा और दोनों प्रतिपक्षियों को अपने आप में निपटा लेने का अवसर दिया हां कंस का भाई समाली आगे बढ़ा उसको बलराम ने थाम लिया और मारडाला।

—:o:—

आठवां अध्याय।

उग्रसेन का गद्दी पर बैठना और कृष्ण का शिक्षा के निमित्त बनारस जाना।

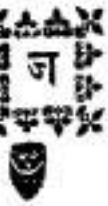

ज कंस के वध की सूचना उसकी रानियों तक पहुंची तब उन सब ने बड़ा विलाप करना आरम्भ किया, उधर उग्रसेन और कंस की माता भी रो रो कर कोलाहल मचाने लगी राजमहल के प्रत्येक स्त्री पुरुष के चेहरे से भय और शोक का पूरा आविर्भाव हो रहा था कंस के इस दुःखान्त परिणाम को देखकर लोग उसकी अनीतियों को तो बात की बात में भूलगए और उस के रक्त से भरे मृत शरीर को देख लगे रोने, और विलाप करने, घृणा का बदला लेने का भाव तो जाता रहा; उस की जगह दया और दुख का संचार होने लगा, कृष्णको भी इस शोक में मिलना पड़ा इसके

याद कृष्ण और बलराम वसुदेव और देवकी जीकी ओर बढ़े और अपना अपना माथा उन के पैरों पर रख दिया एक ओर तो उग्रसेन और उसकी पत्नी का अपने पुत्रों की मृत्यु पर विलाप और दूसरी ओर अपने बिछड़े हुए पुत्रों से मिलाप यह दोनों ऐसे दृश्य थे जो एक ही सभामण्डप में लोगों के हृदय में विपरीत भाव उत्पन्न कर रहे थे। इस सारे दृश्य में लोगों को परमात्मा के अटल न्याय की रेखा दिखाई देती थी, जो दुख और सन्ताप कंस समाली के मृत शरीर के देखने से होता था वह तत्काल वसुदेव और देवकी के बिहल हृदय के नीचे दब जाता था।

कंस की वह कार्य्यवाही लोगों के सामने फिर घूमने लगी जो उसने वसुदेव और देवकी के बच्चों को वध करने के लिये की थी बेचारे माता और पिता के आनन्द में सारी सभा आ मिली यादव वंश के सब छोटे बड़े एक एक करके कृष्ण के पैरों पर आ पड़े और सब ने मुंह से उसे राज्य तिलक लेने की प्रार्थना की। सारी सभा इस शब्द से गूंज उठी कि गद्दी पर बैठें और राज्य करें। युवा कृष्ण के लिये यह बड़ी कड़ी परीक्षा का समय था एक ओर तो राजपाट और सारे ऐश्वर्य उस के सामने हाथ जोड़े खड़े थे और सारे भाई बन्धु और प्रजा उससे आग्रह कर रहे थे कि कृष्णजी राजपाट अंगीकार करें दूसरी ओर उसके हृदय में न्याय और धर्म के उच्च भाव इकट्ठे हो रहे थे, उसके भीतर से यह शब्द आया कि मुझे गद्दी का अधिकार नहीं, मैंने कंस को इसलिये नहीं मारा कि उसका राजपाट स्वयं भोगूं यदि मैंने इस समय गद्दी स्वीकार कर ली तो संसार को यह कहने का अवसर मिलेगा कि राज्य के लालच में आकर कंस का वध किया पर मेरे हृदय में इस

का कभी विचार भी नहीं हुआ, इस विचार के आते ही कृष्ण ने ठान लिया कि नहीं, मैं गद्दी न लूंगा गद्दी उग्रसेन की है जिस से दुष्ट कंस ने अन्याय और बल से छीनी थी। उग्रसेन ने भी बहुत अनुरोध किया कि मैं इस से प्रसन्न हूं कि आप गद्दी पर बैठें पर कृष्ण ने एक न सुनी और सब के सामने उग्रसेन को फिर से गद्दी पर बिठा दिया जो लोग कंस के अत्याचारों से डरकर देश छोड़ कर चले गये थे उन सब को बुला लिया सारांश यह कि सब प्रबन्ध ठीक कर के कृष्ण ने भाई बलराम सहित विद्या के निमित्त काशी (१) जाने का निश्चय किया।

पाठक! विद्योपार्जन के समय का बड़ा भाग तो कृष्ण और बलराम का वृन्दावन के बनों में डंगर चराने और बंशी बजाने में व्यतीत हुआ। क्यों कि उनके प्राण रक्षा के हेतु उनकी वास्तविक अवस्था छिपाना आवश्यक था पर जब कृष्णको अपने वंश का पता लगा तो उसने कुछ विद्याध्ययन करना आवश्यक समझा क्यों कि उसके बिना वह अपने कर्तव्यों को पालन नहीं कर सकता था क्षत्रिय वंशावतंश दोनों राजकुमारों ने इस कमी को पूरा करने का संकल्प कर लिया और वहीं से उन

---

(१) हम कह नहीं सकते कि कृष्णके सामने वर्तमान काशी वा बनारस को यही गौरव प्राप्त था की उसे पौराणिक समय में मिला। प्राचीन ग्रन्थों में काशी का वर्णन आया है पर हमारे पास उसका कोई प्रमाण नहीं कि उससे तात्पर्य इसी "शहर बनारस" का है पुराणों के विरचित होने के समय तो काशी अपनी पूर्ण उन्नति की चोटी पर पहुंचा हुआ था इस लिये संभव है कि उन पुराणों के रचयिता पण्डितों ने अपने जमे हुए विचार के अनुसार यह लिख मारा हो कि श्री कृष्ण भी हो नहो विद्योपार्जन के लिये काशी ही गए हों पर यथार्थ तो यह जान पड़ता है कि वह विद्या के निमित्त काशी नहीं गए

प्यारे गोपों को विदा कर दिया जिन्होंने बचपन में रक्षा की श्री अपने धर्म के पिता और उसके सम्बन्धियों से बड़े हौसले से आज्ञा मांगी और अपनी धर्म की माता यशोदा को प्यार और प्रेम के भरे सन्देशे भेजे इसी तरह सब साथियों से गले मिल कर विदा हुए, जिनके साथ अपने बैद के दिन काटे थे और जिनकी संगत में सुख की नींद सोये थे। यह विचार मानों उस समय राजघरानों के साधारणतः अनुकूल था अपने धर्म का ज्ञान होते ही उन सब सम्बन्धों पर लात मार बैठे। नन्द और यशोदा का स्नेह और गोपों का प्रेम और खेल कूद उन के चित्त को चलायमान न कर सका।

कृष्ण की शिक्षा विषयक पुराणों से बस इतना पता मिलता है कि कृष्ण के गुरु का नाम सन्दीपन था जो अवन्तीपुर नामक स्थान का रहने वाला था। पुराण कहता है कि कृष्ण ने सन्दीपन से केवल ६४ दिन शिक्षा पाई और इसी अल्प-काल में सारी शास्त्रविद्या में निपुण होगए पर महाभारत में श्री कृष्ण की शिक्षा का स्थान स्थान पर वर्णन आया है। जिस से विदित होता है कि कृष्ण अपने समय का परम विद्वान् था और वेदशास्त्र का भी ज्ञाता था। महाभारत में एक स्थान पर वर्णन है कि कृष्ण जी ने दश वर्ष तक तप किया था जिस से हम परिणाम निकलते हैं कि उग्रसेन को मथुरा की गद्दी देकर श्री कृष्ण ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके दश वर्ष पर्य्यन्त केवल विद्या उपार्जन करते रहे।

—:o:—

नवाँ अध्याय ।

मथुरा पर मगधदेश के महाराज जरासन्ध का आक्रमण।

जिन दिनों कंस मथुरा की गद्दी पर विराजमान था उस समय मगध देश का राज्य महाराजा जरासन्ध के आधीन था, जिस ने सारे राजे महाराजों को जीत कर महाराज की उपाधि ली थी। कंस ने अपना बल बढ़ानेके लिये जरासन्ध से सम्बन्ध लगाया और उसकी दो लड़कियोंसे विवाह कर लिया था इसके अतिरिक्त कंस बधका लड़समाचार जब जरासन्ध को मिला तो वह क्रोधान्ध होगया और यादवों के नाश करने के हेतु लड़ाई की आज्ञा दे दी और अगणित सेना लेकर मथुरा में आन पहुंचा। जरासन्ध की चढ़ाई की खबर सुनकर मथुरा वालों ने श्रीकृष्ण बलराम को याद किया क्योंकि इस चढ़ाई के मूल कारण श्रीकृष्ण थे अतएव इस युद्ध के समय उन्हें अपने वंश की सहायता करना आवश्यक प्रतीत हुआ, इसलिये वह और बलराम जरासन्धसे पहिले मथुरा आन पहुंचे और बड़ी शूरता से अपनी जन्म भूमि और उसके राजा की रक्षा में तत्पर हुये। यद्यपि जरासन्ध की सेना के सामने यादवों की गिनती बहुत कम थी और उस महान् सामर्थवाले राजाके सम्मुख इनके राज्य की कुछ हस्ती क़त भी न थी, पर वह अपने शहर और राजा के

हेतु ऐसी जान तोड़ कर लड़े कि जरासन्ध की सेना के दाँत खट्टे कर दिए जरासन्ध यहाँ तक निराश हुआ कि उसने घेरा उठा लिया और चलता हुआ। इसी प्रकार अठारह बार उसने आक्रमण किया पर हर बार निष्फल रहा, अन्तिम बार बड़ी तय्यारी से आया और अपने साथ अपने आधीन राजाओं को लेता आया इस चढ़ाई की खबर पाकर यादवों को बड़ी चिन्ता हुई पर कृष्णकी सलाह से यह निश्चय कियागया कि इस अगणित सेना से लड़ना मानो अपने आप को बलिदान देनाहै बारह बार जरासन्ध ने म्लेच्छों की सहायता ली है अब उस से मुकाबला करना मानो अपना बल तोड़ना है। इस बातको विचारकर सबने यही निश्चय किया कि मथुरा छोड़ कर किसी और स्थान की शरण लेनी चाहिये इन्हीं बातों को विचार अपनी धन सम्पत्ति ले मथुरा को छोड़ दिया और पश्चिम में समुद्र के किनारे गुजरात के प्रदेश में वशतीमली नामक एक स्थान अपने वास के लिये चुना। यह शहर पहाड़ की घाटी में बसा हुआ था।

यहाँ कृष्ण ने एक टापू में द्वारिकापुरी की नींव डाली यह पुरी अब तक स्थित है। और हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है यहाँ यादवों ने एक मजबूत दुर्ग बनाया और अपने पहरे चौकी का पूरा प्रबन्ध करके (१) रहने लगे।

---

(१) जब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से राजसूय यज्ञ करने का विचार प्रगट किया और आज्ञा मांगी, तो कृष्ण ने कहा कि हे राजन्! जरासन्ध ने यहां के सारे राजे महाराजों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया है। बहुतेरी जातियां उसके भय से देश छोड़ कर भाग गई हैं, उसकी सेना में अगणित वीर योद्धागण इकट्ठे होगए हैं। जबतक तुम इसे न जीतलो

दसवां अध्याय।

कृष्ण का विवाह।

रार के राजा भीष्मक की रूपवती पुत्री का नाम रुक्मिणी था। कृष्ण जी इसके सौन्दर्य का हाल सुन कर उस पर आसक्त होगए। यह प्रेम दोनों ओर से था। वह भी कृष्णचन्द्र के रूप और गुण पर मोहित थी। उसकी मनोकामना यही थी, कि किसी प्रकार कृष्ण महाराज मेरा पाणिग्रहण करें, पर इस में एक रुकावट यह थी कि उसका पिता भीष्मक राजा जरासन्ध के दबाव में था। उसने जरासन्ध की सम्मति से रुक्मिणी की मंगनी चेदी के राजा शिशुपालसे करदी, जो जरासन्ध का सेनापति था, यहां तक कि विवाहका दिन नियत कर दिया

राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। इन्हीं बातों के अन्तर्गत उन्होंने उन सब लड़ाइयों का हाल वर्णन किया जो उन्होंने और उन के वंश वालों ने जरासन्ध से लड़ी थीं और जिनसे व्याकुल होकर अन्त में उन्हें द्वारिका की ओर भागना पड़ा था इस बातचीत से विदित होता है, कि उस समय केवल यादव वंश में १८ हजार भाई भतीजे मौजूद थे। जो सब के सब शस्त्रधारी और लड़ने भिड़ने में निपुण थे। इसी बातचीत में श्री कृष्णने कहा कि द्वारिकापुरी के इर्द गिर्द पहाड़ों का घेरा है जो तीन योजन है हर एक योजन में २१ छावनियां हैं और १०० दर्वाजे बनाए गएथे, जहाँ पर शस्त्रधारी यादवसेना रक्षा के लिये नियत थी। एक योजन चार कोस का होता है।

गया और शिशुपाल अपने स्वामी जरासन्ध के साथ विवाह करने को आन पहुंचा। जब कृष्ण को खबर मिली कि रुक्मिणी का पिता उसका विवाह करने लगा है तो वह (कृष्ण) भी बलभद्र और दूसरे साथियों सहित भीष्मक की राजधानी मंडेल में जा पहुंचा और जब रुक्मिणी मन्दिर से लौटती हुई अपने घर जा रही थी तो उसे ले (१) उड़े। रुक्मणी के भाई रुक्म ने जब यह लीला सुनी तो वह बड़ा कुपित हुआ और उसका पीछा किया, जब दोनों की मुठभेड़ हुई और रुक्म परास्त हुआ और निकट था कि वह मारा जावे तब उसकी बहिन ने उसका पक्ष लिया और उस की जान बचाई। इस तरह रुक्म को नीचा दिखाकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारिका में आए, और राक्षस (१) रीति से उस से विवाह कर लिया।

इस विवाह से प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ जिसका महाभारत में स्थान २ पर वर्णन आया है।

---

(१) किसी २ पुराणमें यह वर्णन है, कि रुक्मिणी ने स्वयं कृष्ण को सन्देसा भेजा और मन्दिर जाने के बहाने से अपने बाप के महल से निकल पड़ी और अपनी इच्छा से कृष्णचन्द्र के साथ हो ली।

(१) सूत्र शास्त्रों में विवाह आठ प्रकार का कहा है। जिन में से एक को राक्षस विवाह कहते हैं। जब कोई क्षत्रिय किसी लड़की को उसकी इच्छा विरुद्ध लड़ कर वा चोरी से भगा ले जाता था और उससे विवाह कर लेता था, तो उसे राक्षस विवाह कहते थे। महाभारत में लिखा है कि भीष्म पितामह ने काशी के राजा की दो कन्याओं को इसी तरह हरण करके अपने भाइयों का विवाह किया था। महाराज पृथ्वीराज का

ग्यारहवां अध्याय।

श्रीकृष्ण की दूसरी लड़ाइयां

द्वारिकापुरी में जानेके पश्चात् कृष्ण का जीवन दो भाग में विभाजित होता है। एक वह जो महाभारत के युद्ध में दीख पड़ता है और दूसरा वह जो दूसरी लड़ाइयों के वृत्तान्त से विदित होता है द्वारिका में वास करने के बाद श्रीकृष्ण की राजनीति का बड़ा अंश महाभारत में व्यतीत हुआ है। महाभारत में कृष्ण की जो बातें लिखी हैं उनसे उनके जीवन का कुछ न कुछ पता तो अवश्य चलता है इसलिये हम पहिले उन लड़ाइयों का वृत्तान्त वर्णन किया चाहते हैं जो पौराणिक लिटरेचर में उनके नाम से वर्णन की जाती हैं। यह वृत्तान्त अत्युक्तियों से ऐसे भरे हुयेहैं कि उनमेंसे यथार्थ बातों का निचोड़ निकालना संभव नहीं।

संयोगिता को ले भागना और उससे विवाह करना एक ऐतिहासिक घटना है, इसी तरह अर्जुन श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा को ले भागा था। पुराणों में कृष्ण की अनेक रानियों का वर्णन आता है। पर इसका पता लगाना कठिन जान पड़ता है, कि वास्तव में कितनी थीं। पर यह तो निश्चय है कि रुक्मिणी श्रीकृष्ण की पटरानी थी। विष्णुपुराण, भागवत और हरिवंश के भिन्न २ वृत्तान्त से ज्ञात पड़ता है कि कृष्ण की आठ रानियां थीं।

(१) विष्णुपुराण में (२६ वां अध्याय) उस आक्रमण का वर्णन आया है जो कृष्ण ने कामरूप (आसाम) की राजधानी शहर प्राग्ज्योतिष पर की थी । यहां के राजा का नाम 'नर्क' लिखा है । इस लड़ाई का कारण यह बताया जाता है कि प्राग्ज्योतिषका राजा बड़ा अन्यायीथा। डराकर लोगोंकी स्त्रियों और कन्याओं को अपने घर में डाललेता था । और जब उस प्रान्त के लोगों ने इस बात की कृष्ण से आकर दुहाई की, तो उन्हों ने 'नर्क' पर चढ़ाई की और उसको मार कर उन सब स्त्रियों को छुटकारा दिया। जो उसके महल में कैद थीं और जिनकी गिनती १६ हज़ार कही गई है ।

(२) दूसरी लड़ाई जिसका वर्णन विष्णुपुराण में है। करनाटक के राजा 'बान' से हुई जिसका कारण यह जान पड़ता है कि कृष्ण के पोते अनिरुद्ध और बान की पुत्री उषा में परस्पर प्रेम होगया था । यह प्रेम यहां तक बढ़ा कि अनिरुद्ध उषा की चाक्षुलयता से बान के महलों में जा पहुंचा। और वहाँ अपनी प्रिया के संग पकड़ा गया और बन्दी बना लिया गया । जब यह समाचार द्वारिका में पहुंचा, तो श्रीकृष्ण बलराम और प्रद्युम्न उसे छुड़ाने को गए। एक भयङ्कर लड़ाई के बाद बान पराजित हुआ और कृष्ण अनिरुद्ध को लेकर लौट आये ।

(३) तीसरी लड़ाई जिसका वर्णन विष्णुपुराण में आया है, बनारस के राजा पौण्ड्र से हुई थी। इस राजा ने वासुदेव की उपाधि ग्रहण करली थी पर कृष्ण की उपाधि भी यही थी। इसलिये ऐसा कहते हैं कि इस (पौन्ड्र) ने ईर्षावश श्रीकृष्णको एक उद्दण्ड सन्देशा कहला भेजा और इसी से दोनों में युद्ध हुआ जिसमें पौण्ड्र मारागया। इस लड़ाई में

पहिले चढ़ाई किस ओर से हुई इस विषय में मतभेद है। विष्णुपुराण के अनुसार जब कृष्ण को झूंठा और छली कहा गया तो पहिले उन्हों ने ही चढ़ाई की पर दूसरे यह कहते हैं कि जब कृष्णचन्द्र कैलाशयात्रा को गए हुए थे तो पौण्ड्र पहिले द्वारिका पर चढ़ आया और इसी से लड़ाई का आरम्भ हुआ।

बारहवां अध्याय।

द्रौपदी का स्वयंवर और श्रीकृष्ण का पांडुपुत्रों को पहिचानना।

आर्यावर्त में कौरवों पांचालों की लड़ाई इतनी प्रसिद्ध है कि एक छोटा बच्चा भी उसे भली भाँति जानता है। वस्तुतः कौरव और पांचाल दो जातियों के नाम थे, जो भारतवर्ष के उत्तर प्रान्त में शासन करती थीं। कुरु जाति के भोग्य भूमि का नाम कुरुवन था और पांचाल के देश का नाम पाँचाल ही था। यद्यपि दोनों जातियां एक ही वंश से थीं। पर दोनों में ऐसा विरोध था कि सदा आपस में लड़ती रहती थीं। पाण्डु पुत्र (युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव) और दुर्योधन इत्यादि यह सब कुरुवंश के राजकुमार थे और आपस में चचेरे भाई थे पांचाल के राजा का नाम द्रुपद था जो राजकुमारी द्रौपदी का पिता था। दुर्योधन का पिता धृतराष्ट्र अन्धा होने से गद्दी पर नहीं बैठा। पाण्डु राज्य करता था। पाण्डु के मरने पर धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन गद्दी का दावेदार हुआ और इसकी सिद्धि के लिये यह पाण्डुपुत्रों की

जात के पीछे पड़ा। यह लड़ाई इतनी बढ़ी, कि धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से कहा, कि वे कुछ काल के लिये शहर विराट में जा रहें पाण्डवों ने जब इस बात को स्वीकार कर लिया तो दुर्योधन ने अपने एक मित्र विरोचन को इस लिये आगे भेज दिया, कि वह युधिष्ठिर इत्यादि के रहने के लिये लाख इत्यादि का घर निर्माण करदे जिस में सब पाण्डव जारहें तो किसी दिन रात को जा उसमें आग लगादी जाय और इस प्रकार सब के सब अंदर जल मरें। पर दुर्योधन की इस करतूत की विदुर को ख़बर मिलगई। और उन्होंने अपने भतीजे युधिष्ठिर इत्यादि को इससे सूचित कर दिया और इसलिये सावधान होकर पांचों पाण्डव आग के पहिले वहां से भाग निकले और ब्राह्मण का रूप धर छिपे छिपे वन में फिरने लगे। इन्हीं दिनों में पांचाल की राजपुत्री द्रौपदी का स्वयंवर रचा गया था इस उत्सव में आर्यावर्त के सब क्षत्रिय राजा महाराजा उपस्थित थे श्रीकृष्ण भी अपने भाई बलराम के साथ आएहुए थे एक ओर ब्राह्मण के वेष में पांडवगण भी बैठे हुए थे।

इस स्वयंवर के जीतने का नियम यह रक्खा गया था कि एक तेल की कढ़ाईमें एक चक्रपर एक मछली का चित्र बना था। वह मछली घूमती थी इसकी परछांईं तेल से देख कर जो अपने बाण से मछली के नेत्र में निशाना लगावेगा वही द्रोपदी का पति होगा। ऐसा जान पड़ता है, कि उस समय धनुर विद्या में कर्ण और अर्जुन बड़े निपुण थे। इनको समता कोई नहीं कर सकता था अब उपस्थित राजाओं में से कोई भी इस नियम का पालन नहीं कर सका, तो कर्ण उठा जिसपर द्रोपदी ने कहा कि यह सारथि का पुत्र है इससे मैं विवाह नहीं कर सकती यह सुन कर कर्ण अपना सा मुंह

सेकर बैठ गया। अंत में ब्राह्मणों की पंक्ति में से अर्जुन उठा और उठते ही इस फुरती से बाण मारा, कि वह सीधा निशाने पर जा लगा बस फिर क्या था। द्रौपदी ने आगे बढ़ कर फूलों का हार उस के गले में पहिना दिया यह देख कर सारी सभा में कोलाहल मच गया। सारे राजे महाराजे कहने लगे कि स्वयंवर में ब्राह्मण राजकन्या को नहीं वर सकता। इस लड़ाई में अर्जुन और भीम ने वह हाथ दिखाया, कि श्रीकृष्ण ने उन्हें पहचान लिया और बीच में पड़कर यह निर्णय कर दिया कि इस ब्राह्मण ने नियमानुसार स्वयंवर जीता है इस लिये न्याय और नियमके अनुसार द्रौपदी इसकी ही होचुकी। श्रीकृष्ण का दबाव इतना था कि इस फैसले पर सब के सब चुप हो रहे, और वहाँ से चल दिये। अर्जुन अपने भाइयों सहित द्रौपदी को लेकर अपनी माता के पास गए फिर कृष्ण भी वहां पहुंचे युधिष्ठिर की माता कुन्ती, कृष्ण की बूआ थी। एक दूसरे को पहचान कर कुशल क्षेम पूछने पर पांडुपुत्र कृष्ण से पूछने लगे कि "आपने हमको किस तरह पहचाना" जिसके उत्तर में कृष्ण ने कहा कि अग्नि छिपाये नहीं छिप सकती। आपने जो विचित्र कार्य आज द्रुपद की सभा में किया है उसी ने आप सब का परिचय दिया। पांडवों को छोड़ कर और किस में सामर्थ्य थी जो ऐसे खेल खेलता।

तेरहवां अध्याय।

कृष्ण की बहिन सुभद्रा के संग अर्जुन का विवाह।

द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार जब धृतराष्ट्र के कानों तक पहुंचा तो उसने भीष्मजी की सलाह से विदुर को द्रुपद के दरबार में भेजा कि यह वहां से पाण्डवों को उनकी विवाहिता सहित ले आवें। अब विदुरजी राजा द्रुपद के दरबार में पहुंचे और उन्होंने अपना सन्देशा कहा, तो वहां कृष्णचन्द्र भी मौजूद थे द्रुपद ने विदुर से कहा कि इसकी व्यवस्था श्रीकृष्ण से लेनी चाहिये यदि उनकी सम्मति हो कि युधिष्ठिर आदि को अपने घर हस्तिनापुर जाना चाहिये तो मैं भेजने में कुछ हस्तक्षेप न करूंगा। फिर कृष्ण जी ने यह सम्मति प्रकाशित की, कि अब पाण्डुपुत्रों को स्वदेश जाना चाहिये यह सुन कर द्रुपद ने उन्हें जाने की आज्ञा दी। ऐसा जान पड़ता है कि कृष्णचन्द्र भी इस यात्रा में उनके साथ थे, यह हस्तिनापुर पहुंच गये राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों को शान्त करने के लिये पांण्डवों को राज्य बांट दिया और उनसे कह दिया कि वह खांडवप्रस्थ के वन को आबाद करलें।

यह सुन कर पाण्डव उस वनमें चले गये और वहां उन्हों ने इन्द्रप्रस्थ बसाया।

पाठक ! यह इन्द्रप्रस्थ वही शहर है जो आज कल देहली के नाम से प्रसिद्ध है। पर जहां देहली आज कल बसी है वहां से इन्द्रप्रस्थ की बस्ती कुछ दूरी पर है।

जब पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में जा बसे और आनन्द से रहने लगे तो कृष्णचन्द्र इस धर्म के काम को सम्पूर्ण करके द्वारिका पुरी को लौट आये।

कुछ काल बीतने पर अर्जुन जब द्वारिका गये। वहां कृष्ण ने उनका बड़ा सत्कार किया। राज्य के कर्मचारी और शहरके धनिक रहने वालों ने आदर पूर्वक स्वागत किया।

अर्जुन (१) अभी वहीं टिके हुये थे कि द्वारिका की एक पहाड़ी 'रेनका' पर एक मेला लगा इस मेले में विचरते विचरते अर्जुन ने सुभद्रा को देख लिया। सुभद्रा कृष्ण की अपनी बहिन थी और परम सुन्दरी थी। अर्जुन उसे देखकर प्रेमासक्त होगया और टकटकी बांध देखने लगा। कृष्ण भी इस भेद को समझगया। उन्होंने हंसी हंसी सुना भी दिया कि "जो रात दिन जंगल जंगल विचरता फिरता है उसे प्रेम प्रहसनों से क्या काम"।

पर जब कृष्ण ने उसे बतलाया कि सुभद्रा उसकी बहिन है तो अर्जुन उनसे इस बात का अनुरोध करने लगा कि

(१) अर्जुन इन दिनों १२ वर्ष के लिये घर छोड़ के बनवासमें था क्यों कि पांचों भाइयों में प्रतिज्ञा हुई थी कि यदि कोई भाई किसी दूसरे की उपस्थिति में द्रौपदी के कमरे में आवे तो उसको १२ वर्ष घर त्यागना पड़ेगा एक दिन किसी कार्य्यवश अर्जुन को अपने शस्त्र लेने के लिये द्रौपदी के कमरे में जाना पड़ा जब कि बड़ा युधिष्ठिर मौजूद थे इसलिये उन्हें १२ वर्ष घर निकाला मिला कुछ काल तक इधर उधर घूमकर अर्जुन द्वारिका जा पहुंचा कृष्ण जी की वार्ता में इसी का हवाला है।

उसका विवाह सुभद्रा के साथ होना चाहिये। कृष्ण जी भी चाहते थे कि यह सम्बन्ध होजाये। क्योंकि वह जानते थे कि अर्जुन अपने समयका प्रसिद्ध वीर है, इससे सम्बन्ध लगाना अपने को गौरवान्वित करना है। पर उन्हें इस बात का भय था कि कदाचित् उनके भाई वृन्द स्वीकार न करें। क्योंकि अर्जुन आदि के जन्म विषय में उस समय लोगों में बहुत चर्चा थी। इसलिये कृष्णजी ने इन बातोंकी चिन्ताकर अर्जुन से कहा कि मैं निश्चय नहीं कर सकता कि स्वयंवर में सुभद्रा तुम्हीं को वरेगी। क्षत्रियों में गन्धर्व विवाहकी चाल है और योद्धाओं के लिये यह बात प्रतिष्ठा की समझी जाती है कि वह विवाह करने की इच्छा से अपनी प्रिया को ले उड़ें अतएव यदि तुम सुभद्रा पर ऐसे मोहित हो तो तुम्हारे लिये इससे उत्तम कोई और उपाय नहीं, कि तुम उसको बलात् ले भागो। फिर निश्चय तुम्हारा विवाह (१) उससे होगा फिर यह ठहरी कि इस बारे में पहले युधिष्ठिर जी की आज्ञा ले लो आय। इसलिये इसके हेतु एक दूत उनके पास भेजा गया जब वहां से आज्ञा मिल गई तो एक दिन अर्जुन रथ लेकर सुभद्रा के रास्तेमें जा बैठा। वह उसके पाससे निकली तो उस को बलात् उठाके रथ में रख लिया और भाग चले। जब सुभद्रा की सहेलियों ने उसकी खबर दरबार में पहुंचाई तो सब लोग आग बबूला होगए। फिर शिशुपाल ने शंख बजाया

---

(१) याद रहे कि कृष्ण जी का विवाह रुक्मिणी के संग में इसी तरह हुआ था, इससे जान पड़ता है कि उस समय यह चलन क्षत्रियों में निन्दनीय नहीं गिना जाता था। क्योंकि जो कोई किसी कन्या को भगा ले जाता था वह विवाह की इच्छा से ले जाता था विवाह का संस्कार किए बिना उसके पास नहीं जाता था।

जिससे सारे यादव और भोज शस्त्रधारण करके इकट्ठे हुए जब उन सब ने सुना कि अर्जुन उन की राजकुमारी को बलपूर्वक हर ले गया तो उनके आखों से लहू टपकने लगा और सब बदला लेने पर तत्पर दीख पड़ने लगे, इतने में बलराम जी आ पहुंचे और बोले कि इसका क्या कारण है कि सब लोग ऐसे उत्तेजित दीख पड़ते हैं, पर कृष्णचन्द्र चुपचाप बैठे हैं फिर उनसे इसका कारण पूछा और कहने लगे कि हे कृष्ण तुम चुप क्यों हो। तुम्हारे हेतु तो हम सबने अर्जुन का ऐसा सम्मान किया और अग्रत स्वागत की, अब प्रगट हुआ कि वह इस सम्मान और स्वागत के योग्य न था, उसने हमारा बड़ा अपमान किया, हमारी बहिन के संग उसने जो बलात्कार किया है वह सह्य नहीं, यह कैसे हो सक्ता है कि हम इस अपमान को चुपचाप सहन करलें। हम इसका बदला लेंगे और जबतक पृथिवी को कौरवों से शून्य न करेंगे दम न लेंगे।"

जब चारों ओर से यही आवाज गूंज उठी और यादव मरने मारने पर बद्धपरिकर होगए तो कृष्ण ने अपना मौन तोड़ा और बोले कि "हे भाइयो आपका यह विचार ठीक नहीं कि अर्जुन ने हमारा अपमान किया, मेरी समझ में उसने हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।। वह जानता था कि हमारे वंश में बदला लेके लड़की देना निषिद्ध है, स्वयंवर में सफलता की उसे पूरी आशा न थी उसके पद और वीरता से यह संभव नहीं था वह आप से कन्यादान मांगता। अतःएव उसने क्षत्रियों की चाल चली। जैसे सुभद्रा परम रूपवती और गुण सम्पन्ना है, वैसे ही अर्जुन भी प्रत्येक प्रकार से उसके योग्य है। भारत का वंशज शन्तनु का पोता और कुन्तिभोज का

पुस्तक संख्या २१०९
करतारपुर

नाती वह किसी प्रकार उसके अयोग्य नहीं कहा जा सकता। मुझको आज सारी पृथिवी पर उसके समान वीर दिखाई नहीं देता। किसका हौसला है जो लड़ाई में अर्जुन का मुकाबला कर सके। उससे बाजी मारके जाना कठिन है, उसकी वीरता अपनी आप आदर्श है।

इसलिये मेरी सम्मति है, कि इसमें उत्तेजना से काम न लिया जाय वरन उसे बुलाके उसका विवाह सुभद्रा से कर दिया जाय। क्योंकि यदि हम उससे लड़े और पराजित हुए तो इसमें हंसी होगी मेल कर लेने में कोई हंसी नहीं"।

सारांश यह कि इसप्रकार कृष्णने अपने भाइयों का क्रोध ठंडा किया और उनकी बात से सब सहमत हुए और अर्जुन को बुलाके उनके संग सुभद्रा का विवाह कर दिया गया।

अर्जुन सुभद्रा के साथ विवाह करके कुछ दिनों तक यहां रहा और बारह वर्ष पूरे होने पर अपनी धर्मपत्नी को ले के इन्द्रप्रस्थ चला गया।

जब अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुंचने की खबर आई तो कृष्ण अपने भाई बन्द सहित बड़ी धूम धाम से सुभद्रा का दहेज ले के चले इस दहेज में युधिष्ठिर आदि के लिये पृथक् २ उत्तम उत्तम भेंट थी। इन्द्रप्रस्थ वालों ने जिस तरह कृष्ण और उसके साथियों का स्वागत किया, वह इससे भली प्रकार से प्रकट होता है।

"राजकुमार नकुल और सहदेव ने शहर से बाहर जाकर मेहमानों का स्वागत किया और फिर उन्हें बड़ी धूम धाम से बाजों और पताकों के साथ शहर में ले आये। शहर की गलियां इस उत्सव के लिये साफ की गई। और उनपर छिड़काव किया गया सब बाजार गली और कूँचे रङ्ग बिरंगे फूल से

और हरियाली से सजे हुए थे इन फूलों पर चन्दन का छिड़काव हो रहा था। जिससे चारों ओर सुगन्धि फैल रही थी शहर के हर एक कोने आदि में सुगन्धि जलाई गई थी जिस में कहीं दुर्गन्धि न रहे। शहर के बाहर विद्वान् ब्राह्मण स्वागत् के लिये गए। सबने रीति के अनुसार कृष्ण की पूजा की। स्वयं महाराज युधिष्ठिर आदर पूर्वक आगे बढ़े और गले लगा के अन्तःपुर में गए।

चौदहवां अध्याय।

खांडवप्रस्थ के वन में अर्जुन और श्रीकृष्ण की कार्रवाइयां।

महाभारत के देखने से मालूम होता है, कि पांडवों की राजधानी (इन्द्रप्रस्थ) से कुछ दूरी पर एक सुन्दर वन था। जिसको खांडवप्रस्थ कहते थे। इसमें बनेले पशुओं के अतिरिक्त अनेक असंख्य जानियां वास करती थीं। जिनको उस समय तक किसी ने न जीता था। यह वन बहुत बड़ा था, इस वनकी रहने वाली जातियां बड़ी वीर और लड़ाकी थीं पांडवों को यह वन दे देने में धृतराष्ट्र की यही नीति थी कि इस पर स्वत्व जमाने में या तो स्वयं पांडवगण अपने प्राण नष्ट करेंगे या उनको मारकर एक ऐसे प्रदेश को राज्य में मिला देंगे, जिसे उनके पहिले कोई भी अपने आधीन नहीं कर सका है। परंच वास्तव में धृतराष्ट्र

की यह अनीति और अन्याय था, कि अपने पुत्रों को तो अच्छी २ बस्ती और उपजाऊ भूमि दे और पांडवों को पथरीला और उजाड़ वन मिले। धर्मवीर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र का इतना प्रभाव मानते थे, उसने इस बातपर तनिक भी आशङ्का न की और प्रसन्न चित्तसे इस प्रान्त को अंगीकार कर लिया। पांचों भाइयों में इतना प्रेम था, कि किसी ने भी युधिष्ठिर के स्वीकार करने पर नाक भौं नहीं चढ़ाया। और बात भी सत्य है, कि जब युधिष्ठिर स्वीकार कर चुका तो उसके छोटे भाई जो उसके आज्ञाकारी थे, कैसे शंका करते? जब वह भाग विभाजित हुवा तो कृष्ण जी (जो द्रुपद के यहां से पांडवों के साथ आये थे) यहां उपस्थित थे। इस हेतु से ही पांडवों को शान्त कर दिया, कि लड़ाई न उठने पावे।

स्मरण रखना चाहिए, कि पांडव उनके फुफेरे भाई थे। पिता की गद्दी पर उनका पूरा स्वत्व था पर धृतराष्ट्र के अन्याय से वह मारे मारे फिरते थे। अन्त में जब उन्हें पृथक् दिया भी गया, तो ऐसा, कि जिसे अपने स्वत्व में लाने को अपनी ही जान बचाना मुश्किल था। द्रौपदी के स्वयंवर में उनकी अवस्था देखकर कृष्ण ने ठान लिया था, कि उनको उनका हक़ दिलवा दिया जाय हस्तिनापुर में आकर उनकी भलाई के हेतु उन्हें यही हितकर दीख पड़ा कि बहुत ज़ोर न दे। और जो कुछ धृतराष्ट्रने विचारा है, उसे स्वीकार करलें। इन्हीं कारणों से जब पांडवों ने खांडवप्रस्थ का लेना स्वीकार कर लिया तो कृष्ण ने उनका साथ दिया। और उस वन के काटने और बसाने में उनकी सहायता की यहां तक कि वह द्वारिका नहीं गए जबतक इन्द्रप्रस्थ अच्छी तरह न बस चुका और पांडवों का वहां पूरा अधिकार न जम लिया।

पाठक गण ! आप समझ गये होंगे, कि सुभद्रा के विवाह के विषय में कृष्ण जी ने क्यों अर्जुन का पक्ष लिया था। उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि अर्जुन के साथ ऐसा सम्बन्ध लगाया जाय, जिसमें बंध कर सारे यादववंशी पांडवों की सहायता करने पर विवश हो जायें और इसलिये उन्हों ने ऐसी युक्ति लगाई जिसमें अर्जुन और सुभद्रा का विवाह होही गया।

कृष्ण के वंश से यों सम्बन्ध होजाने से पांडवों को बड़ा सहारा मिला और सारे आर्य्यावर्त में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। वरन् शत्रु उनके भय खाने लगे। दुर्योधन आदि को भी भासगया, कि कृष्ण और उनके यादव वीर पांडवों की पीठ पर हैं इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध से उनका एक यह भी अभिप्राय था, कि वह अपने शत्रु जरासन्ध से बदला लेने में अर्जुन आदि से सहायता लिया चाहते थे। और उनकी इच्छा थी, कि पांडव उनका उपकार मानके जरासन्धके नाश में स्वयमेव उनकी सहायता करें। कृष्ण की युक्ति फलदायक हुई और ऐसाही हुआ इनमें परस्पर प्रेम ऐसा बढ़ा, कि कृष्ण प्रायः सब लड़ाइयों में पांडवों का साथ देने लगे। ऐसा जान पड़ता है कि जब सुभद्रा का दहेज ले के कृष्ण द्वारपुरी गये, तो अर्जुन ने उन्हें वहां ठहरा लिया। और फिर दोनों में यह ठनी कि खांडवप्रस्थ की जंगली जातियों को सर करके युधिष्ठिर का राज्य बढ़ावें और जंगल को काट कर अथवा जलाकर सारे जंगल उपजाऊ बनावें। और आदि पर्व के २२५ वें अध्याय से लेकर पर्व की समाप्ति तक अलंकारों में इन्हीं युद्धों का वर्णन है। इन अध्यायों के पढ़ने से मालूम होता है कि इस वन में पिशाच, राक्षस, दैत्य, नाग, असुर, गन्धर्व, यक्ष और दानव आदि अनेक असभ्य जातियां बसी हुई थीं जिनके संग अर्जुन

और कृष्ण को बड़ी बड़ी लड़ाइयां लड़नी पड़ीं। इन पर विजयी होने से सारे आर्य्यावर्त में पांडवों का सिक्का बैठ गया, क्योंकि उस समय तक किसी राजे महाराजे को यह हौसला न हुआ था, कि इनसे लड़ाई लड़के इनको वशीभूत बनावें। एक ओर तो इन जातियों ने पांडवों के सैनिक बलका डंका पीट दिया। दूसरी ओर महाराज युधिष्ठिर के न्याय और नीति की धूम मच गई। वेदविद्या के ज्ञाता युधिष्ठिर ने इस योग्यता से प्रबन्ध मर्यादा को स्थापित कर दिया, कि सारे देश में उनका यश फैल गया। सारे देश की प्रजा यही चाहने लगी कि वह भी युधिष्ठिर की प्रजा बनकर उसके धार्मिक व्यवहार से लाभ उठावें।

इसका परिणाम यह हुआ कि एक एक करके अनेक प्रान्त इसके राज्य में मिलते चले गये बहुतेरों को उसके भाइयों ने जीत के मिला लिया और बहुत से सन्धि और मेल से वश में आगए। सारांश यह कि थोड़े ही काल में महाराज युधिष्ठिर का राज्य दूर दूर तक फैल गया और सारे देश में कोई ऐसा राजा महाराजा न रहा जो सैनिकबल, सर्वप्रियता और सुप्रबन्ध में युधिष्ठिर की बराबरी कर सके। अथवा जिस देश और जिस की प्रजा ऐसे सुख में हो, जैसी कि युधिष्ठिर के थी। खांडवप्रस्थके किसी युद्ध में अर्जुन ने मय नामी एक पुरुष को जीवदान दिया था। इस युद्ध की समाप्ति पर जब अर्जुन और कृष्ण इन्द्रप्रस्थ में लौट आए तो मय उन के पास आकर बोला, कि इस जीवदान के प्रतिकार में मुझे कुछ सेवा मिलनी चाहिये। अर्जुन बोला कि मैंने तुम्हारी जान बचाई है इसलिये मैं तुमसे उसके बदले मे कुछ नहीं ले सकता। तुम स्वतन्त्र हो जहां चाहो जाओ और प्रसन्न रहो। मय इसके

उत्तर में बहुत आग्रह करने लगा और बोला कि "हे पांडुपुत्र यद्यपि आपको यही उचित था जो आप ने कहा पर आपकी कुछ सेवा करने की मुझे उत्कृष्ट कामना लग रही है। मैं चाहता हूं कि आपकी कोई सेवा करके अपनी प्रवीणता दिखाऊं, क्योंकि मैं अपने को इस समय का (१) 'विश्वकर्मा' मानता हूं।

अर्जुन ने उत्तर दिया "हे मय! मेरा सिद्धान्त है कि मैंने तेरी जान बचाई इसलिये तुझ से बदले में कुछ न लूं पर यदि तेरी इच्छा दूसरी है तो तू कृष्ण जी की कुछ सेवा कर इससे मैं प्रतिकार पा जाऊंगा।

यह सुन कर मय कृष्ण से आग्रह करने लगा अन्त में कृष्ण ने कहा कि हे मय! यदि तू मेरे लिये कुछ करना चाहता है तो राजा युधिष्ठिर के लिये एक ऐसा राजसभा (महल) बना, जो संसार में अपना आप ही आदर्श हो और जैसा कि दूसरा कोई और न बना सके। (२)

---

(१) सृष्टि के रचनेके कारण परमेश्वर विश्वकर्मा कहा जाता है, पर इसके शब्दों का अर्थ आज कल का इंजिनियर होता है।

(२) इस प्रासाद का वर्णन करते हुए महाभारत में लिखा है कि इसका हाता ५ हज़ार हाथ का था। इसमें सुनहरी झरने लगे थे और सारा महल मोतियोंकी चमक से ऐसा जगमगाया करता था कि उसके सामने सूर्य्य का तेज मानो मन्द दीख पड़ता था। इसके पश्चात् एक जलाशय का वर्णन करते हैं, कि जिसका जल ऐसा स्वच्छ था कि नीचे की भूमि दिखाई देती थी। इधर उधर संगमरमर की सीढ़ियां थी। जिनमें हीरे और दूसरे बहुमूल्य पत्थर जड़े हुए थे चारों ओर बड़े २ वृक्ष थे। इनसे सटा हुआ एक बनावटी जंगल बनाया गया था इस महल की प्रतिष्ठा के यज्ञ के दिन ५०० ऋषि और मुनि उपस्थित थे और देश देश के राजे महाराजे आये थे। राजाओं की इस नामावली में हम मन्द्राज, कलिंग, बंगाल, कन्नौज, अन्ध्रक, और मगध आदि देशों के राजाओं का नाम पाते हैं।

मय ने विनय पूर्वक इस आज्ञा को पूरी करने का प्रण किया और कुछ काल में एक ऐसा विशाल और सुन्दर राज-भवन निर्माण किया, कि जिसे देख कर सारे राजे महाराजे आश्चर्य्य में आगए और मय के बुद्धिकौशल पर वाह वाह करने लगे।

पंद्रहवां अध्याय।

राजसूय यज्ञ।

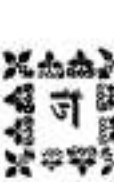

ब युधिष्ठिर का शासन और पाण्डवों का राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर जा पहुंचा। और पांचों भाइयों ने अपने बाहुबल से सारे राजे महाराजों को अपने आधीन बना लिया, तो चारों दिशा में पांडवों की तूती बोलने लगी। किसी को भी उनकी बराबरी का दावा न रहा। राजकोष धन सम्पदा से परिपूर्ण भर गया। सेना की भी वही दशा थी कि देश के शूर वीर सब आ २ के इनकी सेना में भरती होगये थे। फिर राजसभा और राज प्रासाद ऐसे तैयार होगए थे कि उनके जैसा न किसी ने देखा था और न सुना था, ऐसी दशा में युधिष्ठिर और उसके भाइयों की यह (१) इच्छा हुई कि राजसूय यज्ञ करके महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की जाय। जब महाराज ने यह इच्छा प्रगट की

---

(१) महाभारत में इसकी कथा यों है कि एक दिन नारद ऋषि युधिष्ठिर के दरबार में आये और उन्हें महाराज हरिश्चन्द्र की कथा सुनाकर कहा कि हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ किया था जिस कारण उन्हें महाराज इन्द्र के दरबार में आसन मिला और यह सुनकर युधिष्ठिर को भी यह यज्ञ करने की इच्छा हुई।

तो सारे धनिक, मंत्री, दर्बारी, पंडित, विद्वानों ने इसका अनुमोदन किया। और कहा कि आप प्रत्येक प्रकार से इस यज्ञ के करने की सामर्थ्य रखते हैं। पर फिर भी युधिष्ठिर को सन्तोष न हुआ और उसने इसका अन्तिम निर्णय कृष्ण की व्यवस्था पर रक्खा। एवं कृष्ण जी को बुलाने के लिये आदमी भेजा गया और जब वह आये तो युधिष्ठिर उनकी ओर देख कहने लगा, कि हे कृष्ण! मेरे चित्त में (१) राजसूय यज्ञ करने की इच्छा उत्पन्न हुई है, पर मेरी इच्छा मात्र से वह यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। आप जानते हैं, कि यह यज्ञ कैसे किया जाता है केवल वही पुरुष इसे कर सकता है जिसकी शक्ति और बल असीम हो जिसका राज्य सारी पृथ्वी पर हो और जो राजों का राजा हो। मुझे सब लोग इस यज्ञ के करने की सम्मति देते हैं, पर मैंने सारी बातोंका निर्णय आप पर रक्खा है। कोई तो केवल संकोच से मुझे इस बात की सम्मति देते हैं और उसकी कठिनाइयों को नहीं विचारते कोई अपने लाभ के विचार से सम्मति देते हैं और कोई

(१) राजसूय यज्ञ एक प्रकार की रीति थी जिसे करके महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की जाती थी। इस यज्ञ का करने वाला राजा यज्ञ के एक वर्ष पूर्व एक घोड़ा खुला छोड़ देता था यह घोड़ा अपनी इच्छा से जहां चाहता था घूमता था किसी का सामर्थ्य न था कि उसे बांध रखता वा रोक कर पकड़ लेता यों एक वर्षतक बिना रोक टोक घूमते रहने से ही सिद्ध हो जाता था कि सारे देश में कोई राजा घोड़े के स्वामी की बराबरी वा बड़ाई का दावा नहीं रखता। फिर एक बड़ा भारी यज्ञ किया जाता था, जिसमें देश के सारे राजे महाराजे सम्मिलित होते थे और यज्ञ का सारा काम अपने हाथों से करते थे इस यज्ञ का करने वाला इस प्रकार महाराजाधिराज माना जाता था।

मुझे प्रसन्न करने के हेतु समझाते हैं. पर आप इन बातों से निष्प्रयोजन हैं आपने काम और क्रोध भी जीता हुआ है एवं आपकी राय सर्वोपरि होगी अतः आप मुझे ऐसी सम्मति दें जिसमें संसार का और मेरा भला हो।

श्रीकृष्ण जी ने इस प्रकार निम्नलिखित उत्तर दिया "हे राजन्! आप सब कुछ जानते हैं और प्रत्येक प्रकार से इस यज्ञ के करने के योग्य हैं, परन्तु तो भी जो कुछ मेरी समझ में आता है, निवेदन करता हूं।

इसके पश्चात् अपने समय के क्षत्रियों की दुर्गति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि क्षत्रियों में राजसूय यज्ञ करने की परिपाटी इस प्रकार चली आई है कि केवल वही पुरुष राजसूय यज्ञ कर सकता है जो सारे राजों का महाराज हो और चक्रवर्ती राज रखता हो। जब तक मगध देश का राजा जरासन्ध स्वेच्छाचारी और स्वतंत्र बना है। बहुतेरे राजे महाराजे उसके आधीन हैं और उसके कारागार में बन्द पड़े हैं तब तक आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। जरासन्ध ऐसा प्रबल और प्रतापी है, कि सारे देश के राजा उसके सामने सिर झुकाते हैं यहां तक कि हम को भी उसी के भय से अपना देश त्यागना पड़ा. सारे देश के वीर योद्धा उसकी सेना में एकत्र हैं फिर कैसे संभव है कि उसके जीते जी आप इस यज्ञ को कर सकें। यह किसी प्रकार से संभव नहीं कि वह अपनी उपस्थिति में आपको राजसूय यज्ञ करने दे, अतएव यदि आपकी इच्छा हो कि आप अवश्य यज्ञ करें तो पहिले उसको पराजय करके उन राजों को छुटकारा दीजिये जो उसके बन्दीगृह में पड़े हैं। इससे आपको कई पुण्य होंगे। एक तो उस पापी का विनाश करके अनेक असहाय

बन्दियों के जीवनदान का पुण्य होगा, दूसरे आपको उलटा यश प्राप्त होगा और आप निर्भय होकर यज्ञ कर सकेंगे।

इस कथन के सुनते ही युधिष्ठिर की सारी वासनाओं पर पानी पड़ गया और फिर कहने लगा कि "हे कृष्ण! यदि तू जरासन्ध से डरकर भाग गया तो मेरी क्या सामर्थ्य है जो मैं उसका सामना कर सकूं, वह केवल बलवान् ही नहीं है, वरन् अन्यायी और अत्याचारी है। इसके अतिरिक्त इसमें कई प्रकार की अशान्ति फैलने की संभावना है, जिसे मैं पसन्द नहीं करता।" राजा के इन कायर वचनों को सुनकर भीमको जोश आया और कहने लगा कि "महाराज इसमें सन्देह नहीं कि जो पुरुषार्थ हीन और निर्बल है और जिसके पास सामग्री नहीं, यदि वह अपने से सबल शत्रु से लड़ाई ठानेगा तो मुंह की खायगा। पर जो राजा सावधान है और नीति से चलता है यदि वह निर्बल भी है तथापि अपने शत्रु पर कभी २ विजयी हो जाता है। आप के राज्य में कृष्ण के समान दूसरा नीति का जानने वाला नहीं। बल में कोई मेरी बराबरी नहीं कर सकता और अर्जुन तो दुर्जय है जैसे तीन प्रकार की अग्नि के मिलने से यज्ञ होता है वैसे ही इन तीनों के मिलजाने से निश्चय जरासन्ध का नाश होगा।"

भीम के इस कथन को सुनकर कृष्ण बोले कि "अल्प बुद्धि वा विचारहीन मनुष्य बिना परिणाम को विचारे अपनी वासनाओं के पूरा करने के धुन में लग जाते हैं, पर फिर भी कोई शत्रु इस स्वेच्छाचार वा अल्पबुद्धि के कारण उस पर दया नहीं करता। इस लिए कोई काम बिना विचारे नहीं करना चाहिए इससे पहिले कृतयुग में पांच महाराजों

ने अपने अपने गुणों से चक्रवर्ती राजा की उपाधि पाई। किसी ने कर छोड़ देने से, किसी ने दया और न्याय से प्रजाको वशमें करने से, किसी ने अपने तपोबल से और किसी ने अपने बाहुबल से। परन्तु तुम एक गुण से नहीं वरन् इन सब गुणों से चक्रवर्ती राजा कहलाने के अधिकारी हो। बड़भागी और प्रतापी है तू अपनी प्रजा की हर तरह से रक्षा करता है। क्षमाशील है और बुद्धिमान् है, पर दूसरा जरासन्ध भी इस उपाधि का दावेदार है। उसके बल की थाह इसी से लग जाती है, कि उसने क्षत्रियों के १०० घरानों को पराजय किया है और कोई उसका सामना नहीं कर सका। वह ऐसा अभिमानी है, कि जो राजे हीरे मोती पहिनते हैं वह अपने हीरे मोती उसे भेंट करते हैं तो भी वह प्रसन्न नहीं होता, क्योंकि वह बचपन से ही दुःशील है सबका बड़ा बनकरभी वह अपने आधीन राजोंपर अत्याचार करता है और सबसे कर लेता है। किसी की सामर्थ नहीं, जो उस के सामने आवे। उसके बन्दीगृह में पड़े हुए अनेक राजे अपने जीवन के दिनकाट रहे हैं पर फिरभी हे महाराज! यह याद रखना चाहिए कि रणक्षेत्र में मरा हुआ क्षत्री सीधा स्वर्ग को जाता है। इसलिये क्यों हम सब मिल कर जरासन्ध से लड़ाई न करें। ८६ राजघरानों को वह मिट्टी में मिला चुका है। १०० घराने में अब केवल १४ बचते हैं। जब वह १४ उसके आधीन हो जायगे तो वह यज्ञ में हाथ लगा देगा जो पुहर उसको इस काम से रोकेगा मानो उसका तेज उसमें आ मिलेगा। इसलिये जो जरासन्ध को नीचा दिखावेगा वही राजों का महाराजा और राजसूय यज्ञ करने का अधिकारी है।

महाराज कृष्ण के कथन को सुनकर युधिष्ठिर जी कहने लगे कि हे! कृष्ण यह कैसे हो सकता है कि मैं चक्रवर्ती राज की पदवी के लालच में आकर तुमको जरासन्ध से लड़ने के लिये भेजूं। अर्जुन और भीम मेरे दोनों नेत्रों के समान हैं। और आप हे कृष्ण मेरे हृदय रूप हो यदि मुझ से मेरे नेत्र और मेरा हृदय पृथक् कर लिया जावे, तो मैं किस प्रकार जीवित रह सकता हूं। जरासन्ध की सेना को तो यमराज भी लड़ाई में हरा नहीं सकते। तुम वा तुम्हारी सेना तो क्या चीज़ है। मुझे तो इस काम में भला नहीं दीख पड़ता। ऐसा नहो, कि परिणाम और का और ही हो होजाय, इस लिये मेरी सम्मति है कि इस काम में हाथ न डाला जावे। हे कृष्ण! मेरी समझमें इससे अलग रहना ही बुद्धिमानी है। क्योंकि इसका पूरा होना अत्यन्त कठिन है।

यह सुनकर अर्जुन बोला कि हे राजन्! क्षत्रिय का धर्म है कि वह अपने बाहुबल से शत्रुओं का हनन करे और सदा अपना यश और अपना प्रसार बढ़ाता रहे। क्षत्रिय के गुणों में शूरता सब से बढ़ कर है। वीरों के कुल में जन्म लेकर जो कायर हुआ वह घृणा के योग्य है। विद्वानों के समीप मनुष्य के लिये कुलीन वंशज होना यद्यपि सब से बढ़कर है परन्तु यदि कोई वीर ऐसे वंश में जन्म ले, जिसे वीरों के जन्म देने का पहिले सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था तो समझना चाहिये कि वह उससे भी बढ़कर है जिसने वीरों के वंश में जन्म लिया है। वीर सदा अपने शत्रु पर जय पाता है। परन्तु जो पुरुष वीरता के भरोसे असावधानी से काम करता है वह सदा सुफल नहीं होता इसी से वीर या बलवान् पुरुष कभी कभी बलहीन के हाथ से मारे जाते हैं, जैसे

बलहीन पुरुष नीचता का शिकार बन जाता है, इसी तरह कभी बलवान् अपनी मूर्खता से मारा जाता है इसीलिये जो राजा विजयी होने की इच्छा रक्खे, उसे इन दोनों बातों से बचना चाहिये। इसलिये हे राजन्! यदि हम अपना यश करने के लिये जरासन्धका वध करें और उसके बन्दियों (कैदियों) को छुटकारा दें, तो इससे अच्छा दूसरा काम और कौन हो सकता है। पर भय से यदि हम इस काम से भागें तो इस से हमारी मूर्खता और कायरता सिद्ध होगी और लोग हमें कायर कहेंगे। इसलिये हे राजन्! आप हमें क्यों जगत् में हंसवाते हैं। फिर कृष्ण जी बोले, कि अर्जुन ने ठीक वही कहा है जो एक भारत सन्तान और कुन्तीपुत्र को कहना चाहिये था। यह जीवन स्वप्नवत् है इसका भरोसा नहीं कि किस समय मृत्यु आन घेरे। हमने यह भी नहीं सुना है कि लड़ाई से अलग रहने से जीवात्मा को अमरत्व प्राप्त होजायगा। अतएव प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है, कि शास्त्रों के अनुसार अपने शत्रु पर चढ़ाई करे। क्योंकि इस से शांति मिलती है। जो पुरुष बुद्धिमानी से काम करता है उनको (यदि उसके पिछले कर्म खोटे नहीं हैं) निश्चय सफलता होती है यदि दोनों के कर्म अच्छे हैं और दोनों विचार कर चलते हैं। तब भी एक की जीत होगी और दूसरे की हार, परन्तु जो बिना विचारे चलेगा वह अवश्य हारेगा। और यदि दोनों मूर्ख हैं तब भी आवश्यक है कि एक सफल हो, क्योंकि दोनों जीत नहीं सकते। इसलिये हम क्यों बुद्धिमानी से शत्रु पर चढ़ाई न करें। जल का वेग बड़े बड़े वृक्षों को जड़ से उखाड़ कर फेंक देता है। जरासन्ध के वीर और प्रतापी होने में कुछ सन्देह नहीं, पर क्या डर है। यदि हम

भी अपने सम्बन्धियों के हेतु उस से युद्ध ठानें । यातो हम युद्ध में उसे मारेंगे या स्वयं लड़ाई में मर सीधे स्वर्ग का रास्ता लेंगे ।

जब युधिष्ठिर ने देखा कि भीम अर्जुन और कृष्ण सब इस लड़ाई के लिये बद्धपरिकर हैं तो कृष्ण से उसने जरासन्ध का इतिहास पूछा । कृष्ण ने सारा वृतान्त सुना कर अन्त में कहा कि जरासन्ध के बड़े बड़े योधा जिन पर उसे बड़ा भरोसा था वे सब मर गये हैं और इस लिये अब समय आन पहुंचा है कि इसका नाश किया जावे, किन्तु लड़ाई में उस पर विजयी होना संभव नहीं । हमारा तो विचार है कि उससे मल्ल युद्ध करके उसका वध किया जावे । आप मेरी नीति और भीम के बल पर विश्वास रक्खें । अर्जुन हम दोनों की रक्षा करेगा हमारा तो विश्वास है कि हम तीनों मिलकर अवश्य उसको मार डालेंगे ।

जब हम तीनों उसके पास जायंगे तो आवश्यक है कि वह हम में से एक से लड़े । वरन् उसके अभिमान का विचार कर कहना पड़ता है कि वह अवश्य भीम से ही लड़ने को खड़ा होगा । बस फिर क्या है जिसतरह मृत्यु दंभी पुरुष का विनाश करदेता है उसी तरह भीमसेन जरासन्ध का वध कर छोड़ेगा । यदि आप मेरे भीतर की बात पूछते हैं वा आप को मुझ में कुछ भी श्रद्धा है तो आप अब तनिक भी देर नकीजिये और अभी अर्जुन और भीम को मेरे साथ कर दीजिये । युधिष्ठिर कब इन योग्य अपीलों को सुनकर इनकार करता । कृष्ण जी की अन्तिम अपील ने युधिष्ठिर को पिघला दिया और उन्हों ने नम्रता पूर्वक कृष्ण जी का हाथ चूमा और गद्गद-हो कहनेलगे कि किसकी सामर्थ्य है जो

कृष्ण और अर्जुन का सामना कर सके। और फिर जब भीम उनके साथ है प्रत्येक चढ़ाई की सफलता सेनापति की बुद्धिमत्ता पर निर्भर है। जिस सेना का आधिपत्य कृष्ण के हाथ में हो उसकी सफलता में क्या संदेह है? इस लिये हे अर्जुन! तुम्हें उचित है कि तुम कृष्ण में श्रद्धा रखकर उसको अपना लीडर बनाओ और भीम को भी चाहिये कि अर्जुन के तेज को अपना अग्रगामी बनावे।

जहां नीति, तेज और शूरता ये तीन गुण एकत्र हो जाते हैं वहाँ सफलता हाथ जोड़े खड़ी रहती है।

सोलहवां अध्याय ॥

कृष्ण अर्जुन और भीम का जरासंध की राजधानी में स्नातकों के वेष में जाना और उससे अपना हेतु प्रगट करना।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन और भीम कृष्ण के साथ अपनी राजधानी से बाहिर निकले। हम पूर्व भी लिख चुके हैं कि कृष्ण का अभिप्राय यह था, कि जरासन्ध को मल्लयुद्ध करने पर प्रसन्न किया जाय। इसके लिये उन्हें सब से पहिले आवश्यक हुआ, कि वे तीनों जरासिन्ध के दर्बार में जावें परन्तु यदि वे अपने

यथार्थ वेष में गये तो उन्हें राजधानी के अंदर जाने की आज्ञा न मिलेगी। इसलिये तीनों ने क्षत्रिय का रूप छोड़ स्नातक का वेष धारण किया और गिरिराज की नगरी की ओर चले। जब शहर के निकट पहुंचे तो सोचने लगे कि शत्रु के घर में सदर मार्ग से जाना और फिर उस पर वार करना धर्म मर्यादा के विपरीत है। इसलिये यह निश्चय किया, कि, किसी चोर द्वार से अन्दर घुसना चाहिये, गिरिराज की नगरी के एक ओर एक ऊंची पहाड़ी खड़ी थी जो रक्षा के हेतु भित्ति का काम देती थी। यह तीनों उस पहाड़ी पर चढ़े और उस पर होकर शहर में जा घुसे। स्नातक ब्राह्मण के वेष में फूलों की माला गले में पहन और देह में सुगन्धित तेल मलमलकर राजद्वार पर जा पहुंचे। और महाराज जरासन्ध से भेंट करने की इच्छा प्रगट की। महाराज ने जब सुना कि तीन स्नातक ब्राह्मण मेरे द्वार पर आये हैं तो शीघ्र अपने महलों से नीचे उतरा और सम्मान पूर्वक सामने आ खड़ा हुआ। पर इन्हें देख कर वह चकित होगया यद्यपि इनका वेष स्नातक ब्राह्मणों का था पर इनके एक एक अंग से क्षत्री पन झलक रहा था। परन्तु वह भी चतुर था उसने अपना भाव प्रगट होने नहीं दिया। और पूजा करने के लिये झट आगे बढ़ा उसके आगे बढ़ते ही दूसरी ओर से उत्तर मिला कि हम आपकी पूजा को स्वीकार नहीं कर सकते अब तो राजा का सन्देह और भी पक्का होगया और उसने उनसे पूछा कि वे कौन हैं, और क्यों इस वेष में उसके सामने आकर उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते।

कृष्ण बोला हे राजन्! प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह स्नातकों के धर्म का अनुगामी बने। हम यद्यपि इस समय

फूलों का हार पहिने हैं परन्तु हम इस समय स्नातक धर्म में है। और चूंकि हम तेरे शत्रु हैं और शत्रुता के मन से तेरे सामने आये हैं। इसलिये न तो हम सदर फाटक से तेरे नगर में आये और न तेरी पूजा स्वीकार की। वरन एक शत्रु के समान पहाड़ी से नगर में उतरे हैं। जरासन्ध यह उत्तर सुन कर बोला कि हे पुरुष! जहां तक मुझे याद आता है मैंने कभी तेरी कुछ हानि नहीं की है फिर तू मेरा शत्रु क्यों बना है? ऐसा न हो कि तू किसी भ्रम में पड़ा हो। मैं तो सदा धर्म के अनुकूल काम करता हूं।

कृष्ण ने उत्तर दिया कि हे नृप! तुमने क्षत्रिय वंश पर बड़े बड़े अत्याचार किये हैं बहुतेरे राजाओं को तूने बिना प्रयोजन बन्द कर रक्खा है। क्षत्रिय पुत्रों से तू शूद्रों का काम लेता है। राजपुत्रों पर तू नाना प्रकार के अन्याय करके अपने को निष्पाप समझता है। हम लोग धार्मिक हैं धर्म हमारा जीवन है और धर्म की रक्षा करना हमारा परम धर्म और कर्तव्य है। हमें परमेश्वर ने यह सामर्थ्य दी है कि हम धर्म की रक्षा कर सकें। एवं यह सामर्थ्य रख कर तुझे तेरे बुरे कामों का दंड न देना मानो अपने आप को पाप का भागी बनाना है। अन्यायी का सिर कुचलना और पीड़ित की सहायता करना प्रत्येक क्षत्रिय का परम धर्म है। और हम इस अभिप्राय से यहां आये हैं कि हे नृप! तुझे याद रहे कि हम ब्राह्मण नहीं हैं। हम क्षत्रिय हैं मेरा नाम कृष्ण है, ये दोनों मेरे साथी पांडुपुत्र हैं। इन में से एक का नाम अर्जुन है और दूसरे उन के भाई भीमसेन हैं। हम तुझ से मल्ल युद्ध करने आये हैं। या तो तू उन सर्व क्षत्रियों को स्वतंत्र करदे जिनको तू ने दास बना रक्खा है अथवा हम से युद्ध

करें। हम क्षत्रियकुलभूषण महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से तुझ से अपनी जातिका बदला लेनेके लिये आये हैं। मरने से तो हमें भय नहीं क्योंकि हमें विश्वास है कि धर्मयुद्ध से मरने में क्षत्रिय योधा स्वर्ग को जाता है। यदि तू अपने आप को पृथिवी पर महाबली समझता है तो यह तेरी भूल है। क्योंकि संसार में अभिमानी पुरुष निश्चय नाश को प्राप्त होता है। इस संसार में एक से एक बढ़कर प्रतिभाशाली पड़े हैं। इसलिये हे राजन्! अपनी बुराइयों को छोड़ परमेश्वर का डर मान और इन बन्दी राजाओं को छोड़ दे अथवा हम से युद्ध कर।

कृष्ण की इस लम्बी और प्रभावशाली वक्तृता को सुनकर जरासन्ध हंसा और बोला, हे कृष्ण (तू जानता है कि मैं बिना युद्ध में पराजित किये किसी को भी बन्दी नहीं बनाता फिर मैं ऐसा भीरु भी नहीं कि किसी की धमकियों से उन्हें स्वतंत्र करदूं। मैं युद्ध के लिये तैयार हूं या तो सेना सहित मुझ से युद्ध करो या तुम में से एक या दो या तीन मिल के मुझ अकेले से लड़ो।

कृष्ण बोला तो आप ही बताइये कि हम तीनों में से आप किससे युद्ध करेंगे।

यह सुन कर जरासन्ध ने कृष्ण और अर्जुन की ओर देखा तो यह उसे दुर्बल जंचे। क्योंकि उनका शरीर दुबला पतला था। इसलिये उसने उन दोनों से युद्ध करना अपनी मर्यादा से बाहिर समझ कर भीम से युद्ध करना पसन्द किया।

जब भीम और जरासन्ध की जोडी ठहर गई तो राजा जरासन्ध ने बहुत से ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिये बैठाया और आप राजमुकुट उतार केश बांध कर लड़ने के लिये

मैदान में उतर आया। उधर से भीम भी मुकाबिले के लिये आगया। और हाथा पाई होने लगी। चौदह दिन तक मल्ल युद्ध हुआ और दोनों ने ही अपने दांव पेंच का अन्त करडाला पर कोई भी पराजित नहुआ। निदान चौदहवें दिन जरासन्ध का दम टूट गया जरासन्ध को थका हुआ देख कर कृष्ण ने भीम को ललकार कर कहा कि थके हुये शत्रु पर हाथ बढाना उचित नहीं। इस पर भीम ने कहा कि यह नही मानता कि मैं थक गया हूं, और अभी लड़ने को मेरे सामने खडा है। अतएव मैं किस तरह हट सकता हूं। इस लिये लडाई फिर होने लगी और भीम ने जरासन्ध को उठाकर इस जोर से भूमि पर दे मारा कि उसका काम वहीं तमाम होगया।

जरासन्ध के मरते ही कृष्ण ने भीम अर्जुन को रथ पर सवार कराया और आप सारथि बनकर दुर्ग में प्रवेश किया और सब से पहिले उन राजाओं को बन्दीगृह से छुटकारा दिया जो वर्षों से उसमें पड़े सड़ रहे थे, फिर उन सब को अपने साथ लाकर नगर से बाहर डेरा डाल दिया।

इन सब राजाओं ने हीरे आदि रत्नों की भेंट चढ़ाई और प्रसन्नता पूर्वक अपने लिये कुछ सेवा के प्रार्थी हुए।

इस पर कृष्ण महाराजने उत्तर दिया कि महाराजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। आपको चाहिये कि उन को इस यज्ञ में सहायता देकर अपनी भक्ति को सिद्ध करें इस बात को सुन कर सारे राजाओं ने एक मत हो कर स्वीकार किया। जरासन्ध का पुत्र सहदेव भी भेंट लेकर उपस्थित हुआ और महाराज कृष्णचन्द्र ने उससे प्रसन्न हो सबके सामने उसको राजतिलक दिया और बाप की गद्दी पर बिठा दिया। इन कामों से निश्चिन्त हो आप वहां से चल खड़े हुए।

यह प्राचीन भारतवर्ष के युद्ध के नियम का नमूना है:—

(१) महाराज कृष्ण का स्नातक के वेष में फूल पहिन कर जरास ध के दर्बार में जाना।

(२) सदर फाटक से नगर में न प्रवेश करना।

(३) जरासन्ध की पूजा न लेना और निर्भय होकर अपने विचार उनपर प्रगट करना।

(४) जरासन्ध का भी उनकी इसकार्यवाही पर क्रुद्ध न होना और चैलेंज को स्वीकार कर लेना।

(५) जरासन्ध के मारे जाने पर उसके पक्ष वालों को अपनी हार मानना और कृष्ण आदि पर चढ़ाई न करनी।

(६) कृष्ण का जरासन्ध के पुत्र को गद्दी पर बिठाना इत्यादि इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं जो आर्य्यजाति की उच्च सभ्यता को भलीभांति प्रमाणित करती हैं।

सत्तरहवां अध्याय।

राजसूय यज्ञ का आरम्भ और लड़ाई की जड़।

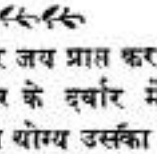

जा जरासन्ध पर जय प्राप्त करके कृष्ण आदि महाराज युधिष्ठिर के दर्बार में लौट आये। युधिष्ठिर ने यथा योग्य उसका सम्मान किया और गद्गद हो कृष्ण को गले से लगाया। अब यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं सभामंडप बड़ी धूम धाम से सजाया गया। राजों महाराजों के पास दूत भेजे गये। खान पान का

पूरा प्रबन्ध किया गया। दूर २ से वेद पाठी विद्वान् ब्राह्मण निमंत्रित हुए। हवन की सामग्री में बहुमूल्य सुगन्धि वाले पदार्थ मंगाये गये। दान देने के लिये सोना, चाँदी, रत्न अच्छे २ वस्त्र भूषण जमा किये गये। अतिथियों के निवास के लिये सुन्दर महल सजाये गये और कोसों तक डेरे और तंबू ताने गये।

(१) धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, द्रोण, दुर्योधन, कर्ण तथा दूसरे भ्रातृगण एकत्रित हुए।

सुतरां जब तैयारियां पूरी होगईं तो भाई बन्धुओं में से यज्ञ के कार्य्यकर्ता नियत किये गये। और श्रीकृष्ण ने यह काम स्वीकार किया कि जो ब्राह्मण यज्ञ कराने के लिये यज्ञशाला में जाय उसके चरण धो दें और यज्ञशाला पर पहरा दें। इस प्रकार जब सब तय्यारियां समाप्त हुईं और यज्ञ का प्रारम्भिक कृत्य होने लगा तो अब यजकर्ता की ओर से सारे *

---

(१) जिन राजों महाराजों का नाम महाभारत में, जलसेमें शामिल होने की फहरिस्त में दिया है, उस से ज्ञात होता है कि इस यज्ञ में सम्पूर्ण भारतवर्ष के राजा सम्मिलित थे। दक्षिण के द्रविड और सिंघाला के राजाओं के नाम भी उस फहरिस्त में लिखे हैं उत्तर दिशा में राजा कशमीर का, पूर्व-दिशा में बंग (बंगाल) और लङ्का के राजा का नाम पश्चिम दिशा में मालवा, सिन्ध इत्यादि का।

* प्राचीन आर्य्यावर्त में यह चलन था कि प्रत्येक धार्मिक कार्य्य के आरम्भ में कार्यकर्ता ऐसे पुरुषोंको जो आदर सत्कार करने के अधिकारी होते थे "अर्घ" दिया करते थे "अर्घ" बुरादा संदल, फूल, फल, फलारी इत्यादि से तैयार किया जाता था, हमने सरलता के कारण "अर्घ" की जगह "भेंट" शब्द का प्रयोग किया है।

अतिथियों को भेंट देने का समय आया। और भीष्म ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि हे युधिष्ठिर! अतिथियों को भेंट देने का समय आन पहुंचा है। अब तुम्हें उचित है कि प्रत्येक को यथा योग्य भेंट प्रदान करो। छः प्रकार के पुरुष तुमसे सम्मान पाने के अधिकारी हैं (१) गुरु, (२) हवन करने वाले पंडित, (३) सम्बन्धी, (४) स्नातक ब्राह्मण, (५) मित्र, (६) राजे महाराजे सबसे पहिले उस पुरुष के सामने भेंटरक्खो जिसे तुम इस सारी सभा में श्रेष्ठ समझते हो। मुख से कहदेना वा लेखनी से लिखना तो सहज है, पर ऐसी प्रतिष्ठित सभा में जहां विद्वान् और वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय राजे, महाराजे बैठे थे, वहां यह निर्णय करना बड़ा कठिन था कि कौन सब में श्रेष्ठ और सब से अधिक गौरव का पात्र है।

एक ओर धृतराष्ट्र और भीष्म ऐसे सज्जन और ज्येष्ठ पुरुष, दूसरी ओर द्रोण जैसा आचार्य तीसरी ओर शूरवीर और धनाढ्य राजे महाराजे थे, युधिष्ठिर चकित था कि ऐसी भारी सभा में किसे सब का शिरोमणि मानूँ। निदान उसने महाराज भीष्म से विनती की कि आप ही मुझे बतादेंये कि इस महती सभा में कौन महान् पुरुष मुझ से पहले सम्मान पाने का अधिकारी है।

भीष्म ने उत्तर दिया कि हे युधिष्ठिर! इस सभा में कृष्ण सूर्य्य के समान चमक रहा है, एवं वही सब से बढ़ कर गौरवपात्र है उठिये! और सब से पहिले उसी को भेंट दीजिये।

युधिष्ठिर ने कहा 'तथास्तु'

भीष्म के यह कहते ही जहां एक ओर आनन्द ध्वनि गूंज उठी, वहां दूसरी ओर मानो वज्र टूट पड़ा। उन की सब आशाओं पर पानी फिर गया, और सन्नाटा छागया। तत्काल सब को भासगया, कि बस कुछ बखेड़ा खड़ा हुआ। अतिथियों की मंडली में चेदी का राजा शिशुपाल बैठा हुआ था यह राजा महाराज कृष्णचन्द्र का मौसेरा भाई था। पर सदा से यह जरासन्ध के पक्ष में कृष्ण से लड़ता आया था। वह भीष्म के वचन सुनकर क्रोधान्ध हो गया और भीष्म, युधिष्ठिर और कृष्ण को बुरा भला कहने लगा, उसके कथन का सार यह था कि युधिष्ठिर और भीष्म ने पहिले कृष्ण की प्रतिष्ठा करने से सारी सभा का अपमान किया है। कृष्ण कदापि इस मान के योग्य न था। न तो वह मुकुटधारी राजा है और न वयस् में बड़ा है न वह आचार्य है और न सब से बलवान् योद्धा है। फिर क्यों उसे इस प्रकार सब से ऊंचा आसन प्रदान किया गया फिर शिशुपाल ने उपस्थित राजाओं के नाम लिये और भीष्म को चैलेंज दिया कि आप बताइये, कि इन सब की उपस्थिति में क्यों कृष्ण की यों प्रतिष्ठा की गई। उसने कहा कि यदि वयस् का विचार हो तो उस के पिता वसुदेव, धृतराष्ट्र द्रुपद, भीष्म और कृपाचार्य्य आदि ज्येष्ठ पुरुष उपस्थित हैं। यदि विद्या में देखा जाय तो द्रोण, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा तथा दूसरे महान् विद्वान् गण उपस्थित हैं। राजों में भी बड़े बड़े वीर योधा राजे दीख रहे हैं। फिर भीष्म ने क्यों इस मान के लिये कृष्ण का नाम लिया जो न आचार्य्य है, न राजा है, न वयस् में बड़ा और न महाबली है।

जिसने छल से राजा जरासन्ध का वध किया, बड़े दुख की बात है कि भीष्म ने पक्षपात से यह अधर्म का काम किया

है और सब से अधिक दुख इस बात का है, कि युधिष्ठिर ने धर्म का अवतार हो कर इस निर्णय को मान लिया। और धिक्कार है, कृष्णपर जिसने इस अधम व्यवस्था को स्वीकार किया।

इसके पश्चात् लिखा है कि वह अपने साथियों सहित सभा से उठ के चल दिये।

युधिष्ठिर उसके पीछे हो लिया और मनाने लगा, उसने कहा कि शिशुपाल! देख जितने विद्वान और योधागण बैठे हैं सब इस बात को मानते हैं कि कृष्ण ही इस सम्मान के उपयुक्त था। फिर तू क्यों ऐसे कठोर वचन बोलता है।

भीष्म ने भी उत्तर में कहा कि शिशुपाल धर्म मार्ग से अज्ञान है। क्षत्रियों की यही मर्यादा है कि जो शत्रु पर जय पाकर उसे छोड़दे वह उसका गुरु होजाता है। कृष्ण न केवल महाबली क्षत्रिय है जिसने हजारों क्षत्रियों को स्वतन्त्रता प्रदान की है वरन वह वेदों का ज्ञाता और विद्वान है और इस लिये दोनों गुणों के संयुक्त होने से हम सबमें से अधिक गौरवान्वित होने के योग्य है।

फिर सहदेव (युधिष्ठिर का छोटा भाई) कहने लगा कि यदि इस सभा में कोई पुरुष द्वेष के वश कृष्ण के तेज और मान का सहन नहीं कर सकता तो उस के सिर पर मेरा पैर है यदि वह वीर है तो मैदान में आवे, नहीं तो सबको उचित है कि भीष्म के निर्णय को स्वीकार करें। निदान ऐसा ही हुआ पर जब पांडवों ने कृष्ण को भेंट चढ़ाई तो शिशुपाल फिर भीष्म और कृष्ण को बेतुकी सुनाने लगा, जिसका अंत यह हुआ कि दोनों दल में विवाद आरम्भ हुआ। एक ओर पांडव बल वाले कृष्ण की स्तुति करते थे और दूसरी ओर शिशुपाल

उन के अवगुण का वर्णन करता था। सारांश यह कि इस प्रकार कुछ समय तक विवाद चलता रहा। बिचारा युधिष्ठिर बड़ा दुखित हो कर दोनों पक्ष वालों को सम्बोधन कर रहा था। पर उसकी कोई सुनता न था, निदान उसने भीष्म से कहा कि पितामह! इस झगड़े को अब आपही शान्त कीजिये जिसका भीष्मने उत्तर दिया कि जब शिशुपाल और उसकेपक्ष वाले समझाने से नहीं मानते तो फिर इस के अतिरिक्त दूसरी क्या बात है, कि यदि उनमें से कोई अपने आप को कृष्ण से बलो समझे तो वह उनसे युद्ध के लिये बढ कर देख ले। फिर आप ही निर्णय हो जायगा, कि कृष्ण इस मान के योग्य था वा नहीं? जब शिशुपाल ने जी खोल कर कृष्ण और भीष्म आदि को गालियां दे लीं तो नादान बोल बैठा कि अच्छा यदि कृष्ण वीर है तो मेरे साथ युद्ध कर ले। कृष्ण की जय हुई और शिशुपाल मारा गया। शिशुपाल के सारे पक्षपाती अपना सा मुंह लेकर रह गये। महाराज युधिष्ठिर ने पहिले शिशुपाल का संस्कार किया। फिर उस के पुत्र को राजतिलक देकर यज्ञ रचाया। यज्ञ की समाप्ति पर जब सब अतिथि बिदा हो चुके तो कृष्ण भी युधिष्ठिर और द्रौपदी की आज्ञा से द्वारकापुरी को लौट आये।

अठारहवां अध्याय।

कृष्ण का पांडवों से मिलने जाना।

प्रत्येक हिन्दू इस बात को भली प्रकार जानता है, कि राजसूय यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन और उसके पक्षवालों ने धूर्तता से महाराज युधिष्ठिर को जुआ खेलने पर तत्पर करके उनसे उनका सारा राजपाट जीत लिया। यहां तक कि जुए की ललक मेंआकर उसने अपनी पत्नी और अपने को दाव पर लगा दिया यह दाव भी हार गया। इसके पश्चात् शकुनि का द्रौपदी को घसीट कर सभा में लाना, द्रौपदी का विलाप करना, और सभा में कोलाहल मचना इत्यादि इत्यादि घटनायें ऐसी हैं, जिनका कृष्ण के जीवन से वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं यहां इतना कह देना ठीक होगा कि अन्त में महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से पांडवगण द्रौपदी सहित १२ वर्ष के लिये देश से निकाले गये और अपना शहर छोड़ वन में विचरने लगे। जब इनके भाई बन्धु तथा इष्टमित्रोंको इस विपत्तिका हालमिला तो वे एकएक करके इनसे मिलने और उनके साथ सहानुभूति प्रगट करने को आने लगे। महाराज कृष्ण ने जब यह वृतान्त सुना तो बड़े दुखित हुए और बहुत से साथियों को लेकर इनसे मिलने को चले।

युधिष्ठिर और अर्जुन इत्यादि की बुरी दशा देख कर बड़े क्रुद्ध हुये, पर जब द्रौपदी के सामने गये तो उसने मारे विलापके पृथिवी आकाश मिला दिया। रो रो के अपने पति और दूसरे

सम्बन्धियों को बुरा भला कहने लगी। अपने अपमान की कथा सुना कर भीम और अर्जुन की वीरता पर आक्षेप किया और अन्त में यहां तक कह छोड़ा कि मेरे लिये तो मेरे सारे सम्बन्धी और मित्र मर गये, क्योंकि जब शत्रुओं ने मेरा भरी सभा में अपमान किया तो किसी ने भी मेरी सहायता न की।

द्रौपदी के इस विलाप को सुन कर कृष्ण जी ने उस से प्रतिज्ञा की कि हे प्यारी! मैं तुझ से प्रतिज्ञा करता हूं कि तेरे शत्रुओं से इस अनीति का बदला लूंगा तुझे तेरा राजपाट पुनः दिला कर राज सिंहासन पर बिठाऊंगा। हे द्रौपदी! तू मत रो, आकाश टूट पड़े, धर्ती फट जावे पर मेरा प्रण झूठा न होगा।

इस प्रकार सम्बोधन करके जब कृष्णचन्द्र महाराज युधिष्ठिर के पास आये तो उनको बहुत कुछ उपदेश किया और जूआ खेलने की हानि बताते रहे।

उन्नीसवां अध्याय।

महाराज विराट के महलों में पाण्डु पुत्रों के सहायकों की कौंसिल।

धृतराष्ट्र ने जब युधिष्ठर को जूआ हारने के बदले १२ वर्ष का देश निकाला दिया तो उसके साथ यह बन्धन लगा दिया था कि १३वें वर्ष पांडु पुत्र वेष बदल के ऐसी सेवावृत्ति से पेट भरें कि दुर्योधन और उसके साथियों को उनका पता न लगे। १२ वर्ष का

देश निकाला बीत जाने पर पांचों पांडवों ने द्रौपदी और अपने पुत्रों सहित महाराज विराट के यहां नौकरी करली। और ऐसी युक्तिसे अपने को छिपाते रहे कि१२ महीने तक विराटको पता न लगा कि उसके किंकरों में ५ क्षत्रिय कुल भूषण वचन बद्ध होकर उसकी सेवा टहल कर रहे हैं और दुर्योधन को बहुत खोज करने पर भी कुछ पता न चला। देश निकाले के दिनों में इनके भाई बन्धु इनकी भेट को आते और इनकी सहायता की फिकर करते थे। कृष्ण और उनके भाई बलराम भी इनके पास कई बार आये और बहुत दिनों तक उनके साथ रहे। एक बार बलराम जी ने यह प्रस्ताव किया कि युधिष्ठिर इत्यादि निज प्रतिज्ञा के अनुसार बनवास करें। पर उनके सम्बन्धी और मित्रगण दुर्योधन पर चढ़ाई करके उससे उनका देश लौटा लें। और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को प्रबन्ध के लिये सौंपदें। कृष्ण ने उत्तर में निवेदन किया कि जो कुछ आप कहते हैं वह हो सकता है पर पांडवों को यह कब ग्राह्य होगा कि दूसरे के परिश्रम का फल आप भोगें और इस प्रकार अपने क्षत्रिय धर्म पर बट्टा लगावें।

कृष्ण के इस कथन पर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि मुझे राज की इतनी चाहना नहीं जितना मुझे धर्म का विचार है। यदि मुझे स्वर्ग का राज मिले तौ भी सचाई से मैं नहीं हट सकता, इस चार दिनके जीवन के लिये मैं कभी अपना प्रण भंग नहीं कर सकता।

युधिष्ठिर और उसके भाइयों ने बड़े २ कष्ट उठाये और विपत्ति आपदाओं का सहन किया। अपनी प्यारी धर्मपत्नी का अपमान अपनी आंखों से देखा। नीच से नीच सेवा करना

पसन्द किया, पर अपने वचन का पूरे तौर से निर्वाह किया। और १३ वर्ष तक राजपाट की ओर ध्यान तक न किया।

प्रिय पाठक! लीजिये तेरहवां वर्ष समाप्त होता है, और महाभारत की नींव अभी से पड़ने लगी है। आइये इस महान् युद्ध की कथा सुनिये। इस लड़ाई का प्रथम दृश्य आज महाराज विराट के महलों में होरहा है। भारतवर्ष के विख्यात राजे महाराजे और विद्वान् ब्राह्मण एकत्र हैं और सोच विचार कर रहे हैं कि युधिष्ठिर का राज उसे दिला देने के लिये अब क्या कार्यवाही करनी चाहिये इस कौन्सिल को वार कौन्सिल कहें, पोलिटकल कौन्सिल कहें या धर्मसभा कहें। आपकी जो इच्छा हो आप इसका नाम धरें, क्योंकि इसमें सभी पक्ष के कुछ २ भाव पाये जाते हैं। हर एक पक्ष को पूरे तौर से समझने और उससे आनन्द उठाने के लिये अपने को तैयार कीजिये क्योंकि इसके सभासदों की वक्तृतायें गूढ़ और सारगर्भित हैं। उस समय के राजाओं में से जितने युधिष्ठिर के पक्ष में थे, वे सब इस में विद्यमान हैं। एक ओर कृष्ण भी अपने पिता और भ्राता सहित बैठे दीख पड़ते हैं, सब से पहिले कृष्णजी बोले कि :—

युधिष्ठिर की आपत्कथा आप सब महाशयों पर विदित है। दुर्योधन ने युधिष्ठिर और उस के भाइयों का नाश करने के लिये जो २ युक्तियां समय समय पर लगाई हैं, वह भी आप सब भली भांति जानते हैं। युधिष्ठिर ने जैसे जैसे उसका सामना किया है तथा लड़ाई और सन्धि में उनके धर्माचरण भी आपको ज्ञात हैं। सारे आर्य्यावर्त में किसी की शक्ति नहीं जो अर्जुन और भीम का सामना करके लड़ाई में उन पर जय पा सके। पर फिर भी युधिष्ठिर अधर्म अन्याय वा अनीति से

किसी का राजपाट नहीं लिया चाहते। अन्याय से यदि उसे स्वर्ग का राज्य मिले, तो वह उसे अङ्गीकार नहीं कर सकता, और न्याय से यदि उसे एक गांव मिले तो वह उसी पर सन्तोष कर लेगा। युधिष्ठिर और उसके भाइयों ने धृतराष्ट्र से जो जो प्रतिज्ञायें कीं उनका एक एक अक्षर पूरा कर दिखाया इसलिये अब धृतराष्ट्र को उचित है कि उनका राजपाट उन्हें लौटा दे पर हम नहीं कह सकते कि दुर्योधन का आभ्यन्तर क्या है, इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि एक माननीय सदाचारी तथा धर्मात्मा दूत उसके पास भेजा जाये, जो दुर्योधन का अभ्यन्तर जान के उसे इस बातों पर तत्पर करे कि वह युधिष्ठिर का आधा राजपाट बांट कर उसे दे दे और उससे मेल करले।

कृष्ण के जेठ भाई बलराम ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। और इस बात के लिये दुःख प्रकाश किया कि युधिष्ठिर ने जूऐ के दाव में अपना सारा राजपाट गंवा दिया। उसने भी मेल कर लेने पर ज़ोर दिया।

इन दोनो वक्तृताओंको सुनकर एक राजकुमार सात्यकि नाम का उठा और बोला कि संसार में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं, अर्थात् वीर और कायर जिस वृक्ष में फल लगते हैं उसकी कोई २ शाखायें मुरझाई होती हैं और उनमें कभी फल नहीं लगता। मुझे इन दोनों कायरों के कथन पर दुःख नहीं, मुझे उनपर खेद होता है, जो मौन साधे उनकी वक्तृता को सुन रहे हैं। क्या कोई विचारवान् पुरुष मान सकता है, कि जुआ खेलने में युधिष्ठिर का अपराध था, क्षत्रिय का धर्म है कि यदि उससे कोई वरदान मांगे तो वह उससे मुंह न मोड़े। दुर्योधन ने चालाकी से ऐसे पुरुषों को युधिष्ठिर से बाजी खेल-

मे के लिये आगे किया जो इस विद्या में निपुण थे । युधिष्ठिर धर्मानुसार खेलता रहा और हार गया । इसमें उसका कदापि कोई अपराध नहीं कहा जा सकता । उसने अपने वचन को अन्त तक पूरे तौर से निभाया । क्या ऐसी दशामें अब उसे उचित है कि वह दुर्योधन से भिक्षा मांगे, और निर्बल या अभ्यागत के समान सन्धि का प्रार्थी हो ।

फिर हम जानते हैं कि दुर्योधन कैसा दुराचारी और झूँठा है । क्या आपने नहीं सुना कि यद्यपि युधिष्ठिर ने निज प्रतिज्ञानुसार १३ वर्ष का वनवास पूराकर दिया, पर दुर्योधन अब यह कहता है; कि १३ वें वर्ष में हमने उनको पहचान लिया भीष्म और द्रोण उसे बहुत समझाते हैं पर वह नहीं मानता, अतएव मेरी सम्मति में तो उसे लड़ाई की सूचना दे देनी चाहिये । यदि वह युधिष्ठिर के पैरों पड़े, तो ठीक है । नहीं तो उसे उसके साथियों सहित यमलोक को पहुंचा दिया जाये । किसमें सामर्थ है कि अर्जुन और भीम जैसे योधाओं से युद्ध करे । इसलिये हे सज्जनो ! उठो और जब तक दुर्योधन को दण्ड न देलो, दम न लो ।

फिर महाराज द्रुपद कहने लगे कि हे वीर ! मैं ने तेरी वक्तृता सुनी । मैं तुझसे सहमत हूं । मेरी भी सम्मति है कि दुर्योधन यों सन्धि पर राज़ी न होगा । धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के वश में है और वह उनका साथ देगा । भीष्म और द्रोण चित्त के ऐसे निर्बल हैं कि वे उसका साथ नहीं छोड़ेंगे । यद्यपि बलराम की सम्मति युक्तियुक्त है । पर मैं नहीं मान सकता, कि दुर्योधन से चापलुसी की बातें करने से कुछ लाभ होगा । गधे के साथ नरमी करने से कार्य सिद्ध हो सकता है पर भेड़िया नरमी के वर्ताव का पात्र नहीं । अतएव

मेरी सम्मति है कि हम शीघ्र लड़ाई की तैयारियां आरम्भ करदें, और अपने इष्ट मित्र तथा सम्बन्धियोंको पत्र लिखदें कि वे अपनी अपनी सेना सहित तैयार रहें। और इस बीच में एक दूत दुर्योधन के पास भेजें, मेरे पुरोहित मौजूद हैं, इन्हें दूत बना कर भेज दिया जाय कि यह दुर्योधन से जाकर कहें।

महाराज द्रुपद की सम्मति को सबने पसन्द किया, सभा विसर्जन हुई। दूत रवाना किये गए और कृष्ण और बलदेव द्वारिकापुरी को लौट आये।

बसिवां अध्याय।

दुर्योधन और अर्जुन सहायता के लिये कृष्ण के पास द्वारिका जातेहैं।

महाराज विराट के महल में जो सभा हुई उसकी रिपोर्ट दुर्योधन को भी पहुंचगई। जिस पर दुर्योधन ने यह विचारा कि किसी प्रकार कृष्ण को पांडवों की सहायता से रोकना चाहिए, अतएव वह द्वारिकापुरी की ओर चला उसने यह सोच लिया, कि यदि मेरी प्रार्थना स्वीकृत होगई तो यह समझना चाहिए, कि मैंने युधिष्ठिर के दो बलवान, सहायकों को कम कर दिया और यदि मेरी प्रार्थना स्वीकार न की गई तो मुझे कृष्ण पर सदाके लिये यह शिकायत बनी रहेगी कि यद्यपि मैं पहिले सहायता का प्रार्थी हुआ था, पर उन्होंने मेरी सहायता न की और मेरे विरुद्ध लड़े पर संयोग से जिस दिन दुर्योधन द्वारिका पहुंचा

उसी दिन अर्जुन भी वहां पहुंच गया। जिस समय दुर्योधन कृष्ण जी के महल में पहुंचा उस समय कृष्णचन्द्र सो रहे थे। दुर्योधन उनके सिरहाने एक कुर्सी पर बैठ गया। इतने में अर्जुन भी वहां आन पहुंचा और उनके पायतें हो बैठा। जब कृष्ण जी जागे तो उनकी नज़र पहिले उठते ही अर्जुन पर पड़ी फिर दूसरी ओर जो देखा तो दुर्योधन को भी सिरहाने बैठा पाया। दोनों ओरसे जब कुशल क्षेम पूछी जाचुकी तो महाराज दुर्योधन बोले कि हे कृष्ण, मैं तुमसे पांडवों के विरुद्ध युद्ध में सहायता मांगने के हेतु आया हूं, और मैं पहिले आया हूं इस लिये पहिले मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए। हम दोनों का आपसे समान सम्बन्ध है और हम दोनों ही तुम्हारे मित्र हैं ऐसी दशा में मेरी प्रार्थना पहिले हुई है और वह स्वीकृत होनी चाहिये।

इस पर कृष्ण जी बोले कि हे दुर्योधन! तू ने जो कहा वह सत्य है। यद्यपि तू पहिले आया है। पर मेरी दृष्टि पहिले अर्जुन पर पड़ी, इसके अतिरिक्त अर्जुन तेरे से छोटा है। इस लिये मुझे दोनों की सहायता करनी स्वीकृत है। एक ओर मेरी सारी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला बिना किसी शस्त्र के हूं। मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है कि इस लड़ाई में शस्त्र नहीं चलाऊंगा। इसलिये मैं पहिले अर्जुन को मौका देता हूं कि वह चुन ले कि क्या वह मेरी सारी सेना को लेना पसन्द करता है या मुझे। यदि उसने मुझ अकेले की सहायता चाही तो मेरी सारी सेना तेरी सहायता को प्रस्तुत है और यदि उसने मेरी सेना पसन्द की तो मैं अकेला तेरी सेवा करने को उपस्थित हूं। दुर्योधन ने इस बात को पसन्द किया इस लिये जब अर्जुन से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया, कि मुझे

महाराज कृष्णचन्द की निज सहायता चाहिए । मुझे उनकी सेना नहीं चाहिए । अर्जुन के ऐसा कहने पर दुर्योधन भीतर ही भीतर बहुत प्रसन्नहुआ और उसने कृष्णचन्द्र की सारी सेना सहायता के हेतु लेजाना स्वीकार कर लिया । बलराम के साथभी दुर्योधनने यही चाल चली पर उन्होंने यह कहा कि मैं किसी पक्षकी सहायता करना नहीं चाहता जब दुर्योधन विदा हो चुका तो कृष्ण जी ने अर्जुन से पूछा कि हे राजपुत्र ! तूने मेरी दैहिक सहायता को मेरीसारी सेना पर क्यों श्रेष्ठ समझा ? अर्जुन ने कहा आपकी सारी सेनासे युद्ध करने के लिये तो मैं अकेला काफी हूं । संसार में एक बुद्धिमान् पुरुष लाख मूर्खों से बढ़कर शक्ति रखता है । आपने इस युद्ध में शस्त्र के हाथ में न लेनेकी प्रतिज्ञाकी है अतएव मेरी इच्छा है कि आप मेरे रथ के सारथि बनें । मेर पास यदि आप जैसे सारथि हों तो किसमें सामर्थ्य है कि वह मेरा सामना कर सके और फिर मुझसे बचकर चला जाय ।

कृष्ण जी ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया ।

——:o:——

इक्कीसवां अध्याय ।

संजय का दूतत्व ।

महाराज द्रुपद ने जो दूत पांडवों कीओर से धृतराष्ट्र के पास सन्धि के लिये भेजा था उसे कुछ सफलता नहीं हुई । और दोनों ओर से युद्ध की

तैय्यारियां इस प्रबलता से होती रहीं कि सब को विश्वास हो गया कि आर्यावर्त की सारी वीरता और श्रेष्ठताका इसी लड़ाई में अन्त हो जायगा। दोनों ओर के शूरवीर मत्तहाथी के समान झूमते फिरतेथे। शंख, घड़ियाल घंटे आदि की ध्वनि से आकाश पाताल गूंज रहा था। घोड़ों की हिनहिनाहट से कान पड़ी बात सुनाई नहीं देती थी। धन दौलत के लालच से भाई भाई के खून का प्यासा हो रहा था। चचा भतीजों के प्राण का ग्राहक था। भीष्म वचनबद्ध हो के उन भतीजों के विरुद्ध लड़ने पर उतारू हुआ था, जिनके लिये उसके चित्त में गाढ़ा प्रेम था और जिन्हें वह उचित मार्ग पर समझता था। द्रोण विचारता था कि इस लड़ाई में उसके सारे शिष्य आपस में लड़ मरने पर उतारू हुए हैं यद्यपि वह दुर्योधन की सेना में था पर अन्तःकरण से युधिष्ठिर का सहायक था। वह जानता था, कि दुर्योधन का पक्ष अन्याय और अधर्म पर है और युधिष्ठिर सचाई पर है।

पर इन सबमें धृतराष्ट्र बड़ा भयभीत होरहा था उसका अन्तःकरण कहता था युधिष्ठिर सच्चा है, पर राज पाट का लोभ वा बेटों के भय से लड़ाई को रोक देने की शक्ति नहीं रखता था उसे दिन रात चैन न थी, उसे पहले ही भास गया था कि इस लड़ाई में न तो बेटे बचेंगे और न भतीजे सारा कुल नष्ट हो जायगा और राजपाट, जिसके लिये लड़ रहे हैं वह दूसरों की भोग्यभूमि होगा!

निदान बड़े सोच विचार के पश्चात् उसने निश्चय किया कि लड़ाई से पहिले युधिष्ठिर की धर्मप्रवृत्ति को अपील करे एक विद्वान् ब्राह्मण संजय नामक को दूत बनाकर युधिष्ठिर के

दर्बार में भेजा, कि वह युधिष्ठिर को इस भयानक युद्ध से रोकने का उपदेश करे।

एवम् महाराज धृतराष्ट्र का भेजा हुआ दूत युधिष्ठिर के कैम्प में आया।

युधिष्ठिर ने संजय का बड़ा आदर सत्कार किया जब युधिष्ठिर ने उससे आने का हेतु पूछा तो संजय बड़ी नम्रता से युधिष्ठिर को लड़ाई की बुराइयां सुनाने लगा और कहा कि केवल राजपाट के लिये लड़ना और अपने सम्बन्धियों का वध करना महापाप है। तुम्हें उचित है कि इस विचार का त्याग करदो और यदि जान भी जाय पर अपने भाइयों और सम्बन्धियों पर आक्रमण न करो एक तो इन दोनों पक्ष वालों को एक दूसरे पर विजय पाना बड़ा कठिन है फिर यदि तू जीत भी गया तो इससे क्या सुख मिल सकता है इसलिये ऐसे युद्ध से अपनी आत्मा को कलंकित न कर और सन्धि करले।

इसके उत्तर में युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा वह हमारे पुस्तक से सम्बंध नहीं रखता यहां इतना कहदेना ठीक होगा कि युधिष्ठिर ने संजय को अच्छी तरह से समझा दिया कि यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हम पर बड़ी अनीतियां की हैं और मेरे भाई उनसे बदला लिया चाहते हैं किन्तु मैं संधि करने पर राजी हूं यदि मुझे मेरी राजधानी इंद्रप्रस्थ दे दी जाय।

संजय जो अपने स्वामी की ओर से उसके हानिलाभ पर तर्क वितर्क करने को आया था, इस लिये उसने युक्ति से अधिक काम लिया और युधिष्ठिर को संसार के नाशवान् होने पर लेकचर देना आरम्भ कर दिया। आजकल के वाजे-२

भाँति मतान्तरों की तरह युधिष्ठिर को उपदेश देने लगा कि हे राजन्! संसार में काम सारी बुराइयों की जड़ है जो निष्काम हैं वही परमात्मा को प्राप्त हो सकते हैं। काम ही हमको सांसारिक बन्धन में फंसाता है और बार बार जन्म मरण की शृङ्खला से निकलने नहीं देता ज्ञानवान् सांसारिक पदार्थों की पर्वाह नहीं करता, और कर्मों के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है। तू ज्ञानवान होकर फिर क्यों ऐसे कर्म करता है जो निन्दनीय हैं। संसार के यावत सुख दुःख क्षणिक हैं जो पुरुष संसार के सुखों की इच्छा करता है, वह उन सुखों के हेतु धर्म भी हार देता है। मेरी सम्मति में राजपाट के लिये लड़ाई करने से भिक्षा मांग कर पेट भरना अच्छा है। क्योंकि युद्ध में मनुष्य तरह तरह के पाप करता है, इसलिये हे युधिष्ठिर! तू इस काम से अपनी आत्मा को भ्रष्ट न कर, तू वेदों का ज्ञाता है और तूने पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन किया है और यज्ञ किये हैं। तुझे उचित नहीं कि इस निंदनीय कार्य्य से अपने विमल यश पर बट्टा लगावे। हे राजन्! इस पाप से तेरी सारी तपस्या और आत्मा की पवित्रता नष्ट हो जायगी लड़ाई धर्मिक भाव से विरुद्ध है। तू क्रोध में आकर लड़ाई पर तत्पर हो गया है, परन्तु स्मरण रख, कि क्रोध सब पापों की जड़ है प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि वह क्रोध से बचे, और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रक्खे, हेराजन्! अपने क्रोधको शान्तकर और अपनी आत्मा को उस महा हत्या से बचा। अपने पितामह, भाई, भतीजे, तथा इष्ट मित्रों के वध से तुझे क्या मिलेगा। तेरी इस कार रवाई से लाखों घर निर्वंश हो जायंगे। घर घर में रोना पीटना मच जायगा। लाखों स्त्रियां तेरा नाम लेकर रोयेंगी और तुझे कोसेंगी, इस विध्वंश के बाद यदि तुझे राज

पाट मिल भी गया तो क्या वह सुखदायक होगा। क्या इस राजपाट से तू मृत्यु वा बुढ़ापे के पंजे से बच जायगा, फिर क्यों पाप से अपने हाथ रंगता है। वह तेरे शत्रु हैं जो तुझे युद्ध करने की राय देते हैं। यदि तेरे मंत्र दाता इस सम्मति को नहीं पलटते तो तू इस सिद्धान्त को छोड़ कर और राज पाट छोड़ वन का रास्ता ले यदि यह नहीं हो सकता तो और कुछ कर, पर लड़ाई के पास न जा।

इस विस्तृत वक्तृता के उत्तर में युधिष्ठिर ने संजय से कहा कि हे संजय! मुझे इस उपदेश देने से पहिले तुझे चाहिये था कि तू धर्म और अधर्म के लक्षण वर्णन करता, जिसे सुन कर हम यह निश्चय कर सकते। उसके अनुसार यह लड़ाई धर्म है वा अधर्म। तू जानताहै कि धर्म और अधर्म का निर्णय करना कैसा कठिन है। प्रायः धर्म अधर्म प्रतीत होता है और अधर्म धर्म इसी प्रकार आपत्ति समय में भलाई और बुराई अर्थ भेद पड़ जाता है। इस लिये प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है कि अपने वर्ण आश्रम के धर्म का पालन करे। तू यह भी जानताहै कि हर एक काल की धर्म भिन्न होताहै। मैं तो दोनों लोकों के राज्य के लिये भी धर्म त्यागने पर राजी नहीं हूं। मैं समझता हूं कि मैं जो कुछ करने लगा हूं वह धर्म के अनुकूल है। फिर भी कृष्ण हम सब में पवित्र विद्वान और धर्म शास्त्र में निपुण हैं। कृष्ण से व्यवस्था ले लो कि इस समय क्या धर्म है। जो कुछ वह व्यवस्था देंगे वह मुझे स्वीकृत होगा।

इस पर कृष्णजी ने संजय की ओर फिर कर यों कहना आरम्भ किया।

हे संजय! तू जानता है कि मैं इन दोनों पक्ष वालों का शुभचिन्तक हूं। मैं नहीं चाहता कि कौरव और पांडव नष्ट हों

मैं इनकी भलाई चाहता हूं। मैं पूर्व से ही दोनों को सन्धि कर लेने का उपदेश देता आया हूं। जहां तक मैं देखता हूं युधिष्ठिर अन्तःकरण से सन्धि चाहता है। उसने अभी ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की, जिससे इसके विरुद्ध भाव प्रगट हो, परन्तु जब धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों के नेत्रों पर लोभ ने यों पट्टी बांध रक्खी है तो मैं नहीं समझता कि यह युद्ध कैसे रुकेगा।

धर्म और अधर्म का लक्षण तू भली भांति जानता है फिर आश्चर्य है कि तू युधिष्ठिर जैसे पूर्ण क्षत्रिय को ताना देता है युधिष्ठिर अपने धर्म पर स्थिर है, और उसे शास्त्रानुसार अपने कुल की भलाई का चिन्तन रहता है।

ज्ञान और कर्म विषयक जो तुमने उपदेश किया है, वह ऐसा विषय है कि उसके बारे में ब्राह्मणों की कभी एक सम्मति नहीं रही है। बाजों की राय है कि परलोक की सिद्धी कर्मों से ही होती है। बाजे कहते हैं कि मुक्ति केवल ज्ञान से मिलती है, और कर्मों का नाश करना ही जरूरी है। ब्राह्मण जानते हैं कि यद्यपि हमको खाने के पदार्थों का ज्ञान हो पर भूख का नाश नहीं होता जब तक भोजन नहीं करेंगे। ज्ञान कांड की यह शाखा जो कर्म कांड में सहायता देती है, यह अधिक फल दायक है, क्योंकि कर्म का फल प्रत्यक्ष है। प्यासा पानी पीता है और पानी पीने के कर्म से उसकी प्यास बुझ जाती है, इस से स्पष्ट है, कि केवल ज्ञान से कर्म को अधिक श्रेष्ठता है। सृष्टि में कर्म ही प्रधान दीख पड़ता है। वायु सूर्य्य, चन्द्रमा अग्नि और पृथिवी सब कर्म करते हुए अपना २ धर्म पालन कर रहे हैं। सारे आप्त पुरुषों विद्वान ब्राह्मण और क्षत्रियों की यही व्यवस्था है। फिर हे संजय! यह सब कुछ जान कर भी क्यों धृतराष्ट्र के पुत्रों का पक्ष लेके वकालत करने आया है।

तू जानता है कि युधिष्ठिर वेद का ज्ञाता है उसने राजसूय यज्ञ किया है, घोड़े और हाथी की सवारी करना और शस्त्र चलाना उसका काम है, अब तू ही बता कि ऐसी दशा में कौनसा उपाय है जिससे युधिष्ठिर धर्म से पतित नहो। परन्तु तुझे यह बात स्मरण रखना चाहिए कि युधिष्ठिर राजपुत्र है। अब बता कि शास्त्र राजा के लिए क्या आज्ञा देते हैं। लड़ना वा न लड़ना उसका क्या धर्म है ?

शास्त्र में जो क्षत्रियों के धर्म लिखे हैं उनका विचार करके तुझे अपनी सम्मति देना चाहिये। क्या क्षत्रिय का यह धर्म नहीं कि वह विद्या का प्रचार करे, धर्म की रक्षा करे, अपनी प्रजा का पालन करे, ऐसे नियम बनावे और इस तरह प्रबन्ध करे, जिसमें सब वर्णाश्रम अपने २ धर्म पर स्थिर रहें। क्या न्याय करना और अनीति वा अत्याचार का दण्ड देना उसका धर्म नहीं है ? यदि कोई पुरुष छलसे वा अधर्म से दूसरों का धन छीने वा हरे तो बताओ कि उसके साथ राजा क्या वर्ताव करे ? यदि ऐसी दशा में भी लड़ाई करना पाप है तो फिर ये शास्त्रादि किस हेतु बनाए गए हैं। शास्त्र कहता है कि अधर्मी पापी और दस्युओं को शस्त्र से दण्ड देना क्षत्रिय का धर्म है और इसी से क्षत्रिय को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसलिये ऐसी अवस्था में लड़ाई करना कैसे पाप होसकताहै ? आपको देखना चाहिये कि धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों ने क्या किया। उन्होंने अधर्म से पांडवों का धन छीन लिया याद रखो कि छिप के चोरी करना वा सामने चोरी करना दोनों ही समान पाप हैं, फिर बताओ कि दुर्योधन और चोर में क्या भेद रहा इसके अतिरिक्त दुर्योधन तथा उसके दुष्ट साथी द्रौपदी को नग्न घसीट के दरबार में ले गये और उसका अपमान किया।

बड़े दुख की बात है कि उस समय दुर्योधन को किसी ने नहीं समझाया और न पूछा कि तुम क्या करते हो। संजय आप उस समय कहांथे, आपने उस समय कर्णको क्यों न मना किया कि अर्जुन को ताना न दे, उस समय तो सारी सभा कायरों की तरह चुप रही और अब प्रत्येक पुरुष युधिष्ठिर को उपदेश देने आता है कि वह लड़ाई न करे।

फिर भी मेरी यही इच्छा है, कि बिना लड़ाई के न्याय होजाय। मैं आप तैयार हूं कि कौरवों के पास जाऊं और उन्हे समझाऊं। यदि वह मेरे समझाने से पांडवों का हक दे दें तो मैं अपने आप कृतार्थ समझूंगा।

बाईसवां अध्याय।

कृष्णचन्द्र दूत बनकर जाते हैं।

ब संजय विदा होकर चला गया तो महाराज कृष्ण ने धृतराष्ट्र के पास जाने का विचार प्रगट किया। श्रीकृष्ण जब चलने पर तैयार हुये तो युधिष्ठि को बड़ी चिन्ता हुई उसे यह विचार हुआ कि दुष्ट दुर्योधन कहीं कृष्ण को हानि न पहुंचाये। इसी लिये उस ने कृष्ण को बहुत समझाया, कि वह वहां न जावें वरन यहां तक कहा कि बिना आपके मुझे चक्रवर्ती राज्य और स्वर्ग भी स्वीकार नहीं, परन्तु कृष्ण ने एक न मानी और युधिष्ठिर को समबोधन करके कहा कि मेरा जाना आवश्यक है क्योंकि यदि मेरी इस काम में सफलता न हुई और दुर्योधन ने सन्धि को न माना तो पीछे से कोई हमें दूषित नहीं कर सकता, कि

हमने सन्धि न की। जब युधिष्ठिर ने देखा कि कृष्ण अपने संकल्पमें दृढ़ है, तो उसने उनको जाने की आज्ञा दी और अपनी ओर से पूरा अधिकार दिया कि जो शर्त आप स्वीकार कर आयेंगे वह मुझे स्वीकार होगी। कृष्ण ने प्रस्थान करने के पहले फिर राजधर्म पर युधिष्ठिर को उपदेश दिया जिसमें युधिष्ठिर सन्धि की आशा पर अपनी तैयारियों से असावधान न हो जाय और दुर्योधन को सहज में लड़ाई जीतने का अवसर मिले उस उपदेश में कृष्ण ने युधिष्ठिर को बताया कि आजीवन ब्रह्मचारी रहना क्षत्रिय का धर्म नहीं। क्षत्रिय के लिये भिक्षा मांगना महापाप है। युद्ध में प्राण देने से क्षत्रिय सीधा स्वर्ग को जाता है। क्षत्रिय के लिये कायर होना पाप है मुझे तो विश्वास है कि दुर्योधन कभी सन्धि पर राजी न होगा। मैं दुर्योधन को अच्छी तरह से जानता हूं, देख! उसने तेरे और तेरे भाइयों के साथ क्या २ बर्ताव किया है। मैं प्रत्येक प्रकार से दुर्योधन और उसके सहायकों को समझाने का यत्न करूंगा, परन्तु आत्मा कहता है कि वह एक न मानेगा। लड़ाई अवश्य करनी पड़ेगी इस लिये हे राजन् तुझे चाहिये कि अच्छी तरह से लड़ाई की तैयारियां करता रह और अपने धर्म से वे मुख न हो।

कृष्ण के इस कथन को सुनकर भीम और अर्जुन के चित्त में यह भय उत्पन्न हुआ कि कहीं कृष्ण अपने कठोर वचन से काम न बिगाड़ दें और तब सन्धि असंभव हो जाय इसलिये दोनों ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर कृष्ण से विनय किया कि जहां तक संभव हो आप दुर्योधन के साथ नम्रता से बर्ताव करें क्यों कि हम कदापि लड़ाई करना नहीं चाहते। यदि दुर्योधन कुछ थोड़े ग्राम भी हम को देवे

तो हम उसी पर संतोष करके दिन काटेंगे। इस पर कृष्ण ने उत्तर दिया कि ऐसा जान पड़ता है कि तुम उससे डर गये हो। तुम्हारी इस कायरता पर मुझे बड़ा दुख होता है। भीम को कृष्ण का यह ताना तीर के समान चुभा परन्तु संभल कर विनय पूर्वक अपना यथार्थ आशय यों समझाने लगा कि मैं किसी तरह भी दुर्योधन या उसके योद्धाओं से भय नहीं खाता। मुझे यदि विचार है तो केवल इतना ही है कि इस आपस की लड़ाई में सारे भारत की सन्तान नष्ट न हो जावें। इस पर कृष्ण ने भीम को सम्बोधन किया और कहने लगा कि मैं तुमको ताना नहीं देता। मैं तुमको याद दिलाता था, कि युद्ध से डरना क्षत्रिय का धर्म नहीं। मैं नहीं चाहता कि कि कायरता के कारण तुम अपने धर्म से बे-मुख हो बैठो। तुम धीरज धरो। मनुष्य से जितने यत्न होसकते हैं उतना यत्न मैं सन्धि कराने के लिये करूंगा। परन्तु तुम समझ रखो कि मनुष्य की सारी युक्तियां सदा कृतकार्य नहीं होतीं, बाजे अवसरों पर ऐसा होता है कि मनुष्य भले के लिये काम करता है परन्तु उसका फल बुरा निकल पड़ता है।

इस लिये जहां मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी मनोकामना की सिद्धि के हेतु कुल युक्तियां जो उससे हो सकती हैं करें वहां उसका यह भी धर्म है कि केवल अपनी युक्तियों के ही भरोसे पर न रहे वरन जो कुछ करता है उसे भगवान् के आधीन समझ कर करे जिसमें परमात्मा उसकी युक्तियों में वृधि दे। कृषिकार अपने क्षेत्र में हल चलाता है बीज बोता है, पानी से सींचता है परन्तु जल बरसाना उसके कर्म से बाहर है यह धर्म परमेश्वर के आधीन है इस लिये जो काम हम करें वह परमेश्वर के आधीन होकर करें और पर-

आत्मा पर विश्वास रखें कि यदि उसकी इच्छा होगी तो वह हमारी मनोकामना को पूर्ण करेगा।

जब कृष्ण जी युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन से विदा हो लिए तो फिर नकुल और सहदेव से मिलने को आये। एक ने तो यह कहा कि जैसी आप की इच्छा हो वैसा कीजियेगा, परन्तु युवक सहदेव ने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरी आन्तरिक इच्छा तो यह है कि हमारे हाथ से दुर्योधन का नाश हो। आप ऐसी कार्रवाई करें जिस से लड़ाई अटल हो। सहदेव का यह कहना था कि सभा में चारों ओर से लड़ाई की ध्वनि गूँज उठी। सेतकी ने कहा कि हम को चैन जब ही आवगा जब हम दुर्योधन का सिर अपने हाथसे कुचलेंगे। इतनेमें द्रोपदी भी आगे बढ़ी और अपने केश हाथ में लेकर कहने लगी हे कृष्ण! तुम इधर भी नज़र करना। मुझ को दुर्योधन ने केश पकड़ के सभा के बीच बे इज्जत कियाथा। उस समय अर्जुन और भीम की वीरता कुछ काम न आई, न किसी ने यह विचार किया कि यह महाराज द्रुपद की पुत्री है। महाराज पाँडु की बहु, पांडवों की महारानी धृष्टद्युम्न की बहिन और कृष्ण की मित्र है, क्या आप नहीं जानते कि खूनी का खून क्षमा करना महापाप है। जो पुरुष दण्डनीय है उसका दण्ड क्षमा करना स्वयम् एक अपराध है। यदि पापियों की इस संसार में वृद्धि हुई और उनको राजे महाराजे दण्ड देने से मुख मोड़ने लगे, तो इसका परिणाम बड़ा भयानक होगा। हे कृष्ण क्या दुर्योधन पर दया करना उचित है। मैं आप से विनय पूर्वक कहती हूं कि यदि आप का मेरी मर्यादा का तनिक भी ख्याल है तो आप धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ नम्र न हूजियेगा। उसे दण्ड देना ही धर्म है। भीम और अर्जुन ने यदि आज कायरता पर कमर बांध ली है और चुप हो बैठे है तो मेरा भाई और पिता उनसे

बदला लेने को तैयार है इतना कहकर वह रोने लगी मानो उसके नेत्रों से मोतियों की धारा बह निकली। द्रौपदी को यह दशा देख कर सारी सेना में जोश आगया। चारों ओर से तलवारें नंगी करली गईं। निदान कृष्ण ने द्रौपदी को संबोधन कर कहा कि "हे महाराणी! तू धीरज धर यदि दुर्योधन ने मेरी बात न मानी तो वह पछतायगा। उसकी रानियां विलाप करेंगी! तेरे पति विजय पावेंगे और तुझे फिर राज सिंहासन पर बिठायेंगे" इतना कह कर कृष्ण फिर विदा हुए। वह जानते थे कि दुर्योधन दुष्ट है. इसलिये निज रक्षा केलिये उन्होंने २ हज़ार सिपाही अपने साथ लिये और हस्तिनापुर की ओर चले।

धृतराष्ट्र को जब समाचार मिला कि कृष्ण जी आ रहे हैं तो उन्होंने उनके आराम का पूरा प्रबन्ध कर दिया और अपने शहर में स्वागत की बड़ी तैयारियां कराने लगे परन्तु कृष्ण जी ने धृतराष्ट्र के प्रबन्ध से कुछ फायदा नहीं उठाया और हस्तिनापुर पहुंचगये। वहां कौरवों की ओर से उनका अच्छा स्वागत कियागया जब महल में आए तब सब छोटे बड़ों ने उनका पूरा सत्कार किया।

तेइसवां अध्याय।

युद्ध से पहल कृष्ण जी सन्धि कराने के हेतु हस्तिनापुर जाते हैं

कृष्ण जी धृतराष्ट्र भीष्म और द्रोणादि से भेंट कर के विदुर जी के स्थान पर ठहरे। युधिष्ठिर की माता कुन्ती भी विदुर के साथ रहती थी।

जब कृष्ण जी उस के घर में पहुंचे तो उसने बड़े प्रेम से कृष्ण को गले लगाया और आदर सत्कार से उसे पास बिठा कर रोने लगी। किस की लेखनी में शक्ति है कि माता के प्रेम का वर्णन लिख सके, किस में यह बल है कि अपने पुत्रों के लिए माता के दुख को लेख द्वारा झलका सके, कृष्ण और कुन्ती के मिलाप का पूर्ण वर्णन अपने पाठकों के सामने उपस्थित करना हमारी लेखनी से बाहर है। याद रखना चाहिये कि कुन्ती कृष्ण जी की फूफी थी। १४ वर्ष से कुन्ती ने अपने प्यारे पुत्रों का मुख नहीं देखा था। १४ वर्ष हुए कि जब युधिष्ठिर की कमजोरी से अपने राज पाट से अलग कर के देश से अलग निकाल दिये गये थे। १४ वर्ष हुए कि जब उसने अपनी बिलकती हुई माता को महलों में छोड़ा था १४ वर्ष से बेचारी माता अपने प्यारे बच्चों की बाट जोह रही थी और अपना मन मारे बैठी हुई थी। कृष्ण के मिलने से माता की सारी आशायें लहलहा उठीं और साथ ही कृष्ण के आगमन ने मानों उसके घाव को ताजा बना दिया और उसकी (कृष्ण) मूर्ती में उसने अपने सारे प्यारे पुत्रों की मानों छाया देखली कुन्ती ने कृष्ण पर प्रश्नों की बौछार आरम्भ करदी। एक एक करके प्रश्न पूछती जाती थी और साथ ही साथ आंखों से आंसुओं की धारा जारी थी और मुख से विलाप कर रही थी कभी अपने रंडापे पर रोती थी। कभी अपने पुत्रों की बाल्यावस्था को रो रो कर याद करने लगती थी। युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा, भीम की वीरता और अर्जुन की धनुर्विद्या में कुशलता, सब इस समय उसके नेत्रों के सन्मुख घूम रहे थे। वह हैरान थी कि इस १४ वर्ष की क्या क्या बातें पूछे सारांश यह कि अपने दुख की रामकहानी सुना रही थी। और दूसरे

को बोलने का अवकाश नहीं देती थी कृष्ण भी चित्रवत् खड़ा सुन रहा था। निदान कुन्ती ने अपना विलाप कुछ कम किया और फिर अपने पुत्रों का कुशल मंगल पूछने लगी कृष्ण के मुख से उनका हाल सुन कर उस के कलेजे में फिर चोट सी लगी और फिर रोने और विलाप करने लगी। निदान जब भीतर का उबाल अच्छी तरह से निकल चुका तो कृष्ण से कहने लगी कि "हे कृष्ण! मेरी ओर से तो मेरे सब पुत्र मर गये और उनकी ओर से मैं मर चुकी, जाकर युधिष्ठिर को यह सन्देश दीजिये कि तेरा यश दिन बदिनबढ़े, तू सदा भलाई ही करता रहे, जिस में तेरी धार्मिक मर्यादा की वृद्धि होती जाय। हे जनार्दन तू! उससे जाकर कहियो, कि धिक्कार है! उन लोगों पर जो दूसरों के सहारे जीते हैं अथवा दूसरों से डरते हैं ऐसे जीने से मरना ही अच्छा है।

जा! अर्जुन और भीम से कह कि जिस दिन के लिये क्षत्रिय स्त्रियां पुत्र जनती हैं, वह दिन आन पहुंचा यदि इस समय तुम से कुछ न बन सका तो सारा जग तुम को तुच्छ समझेगा। जिस दिन तुम ने कोई निन्दनीय कार्य्य किया उसी दिन मुझ से तुम्हारा नाता टूट जायेगा। हे कृष्ण! जा माद्री के पुत्रों से भी कहिए कि यथार्थ सुख वह है, जो निज बाहु बल से उपार्जन किया जाये। क्यों कि क्षत्रिय पुत्र के लिये कोई वस्तु सुखदायक नहीं हो सकती जो उसने अपने बाहुबल से प्राप्त नहीं की है। अर्जुन से मेरा अन्तिम सन्देश यह कहना कि उसे वही करना धर्म है जो द्रौपदी कहे द्रौपदी का नाम लेते ही कुन्ती के नेत्रों से फिर आंसू निकल पड़े। और उसके सारे अपमान का दृश्य उसके सामने घूमने लगा। इसके बाद कृष्ण माद्री को सम्बोधन करने लगे। बिचारे अभागे बेटों का

नमस्कार माता के पवित्र चरणों पर रक्खा। उनके प्रेम पूरित सन्देश को माता के कर्ण गोचर किया। पुत्रों के धर्म भाव उन की वीरता, उनकी सत्यता, उनकी दृढ़ता की अनेक कहानियाँ सुनाईं। धर्म, ज्ञान और फिलासफी के उपदेशों से उनके संतप्त हृदय को ठंडा किया। सारांश यह कि कृष्ण ने अपनी वक्तृत्व चतुरता से उसके दुख को दूर करदिया, और उसके भीतर की बुझी हुई आशायें पुनः लहलहा उठीं। वीर राजपूतनी का सारा क्रोध कृष्ण की चापलूसी के आगे मोम की तरह पिघल गया। वह अन्त में कहने लगी कि हे कृष्ण! अच्छा जो तुझे भला मालूम दे सो कर। मुझे तेरी बुद्धिमता और चतुरता पर पूरा विश्वास है। तू वही करेगा जो मुझे और मेरे पुत्रोंका हितकर होगा।

सारांश यह कि कुन्ती को सम्बोधन करके और फिर उसकी आज्ञा लेकर कृष्णचन्द्र दुर्योधन के महल में गये। दुर्योधन और उसके सभासदों ने इनका बड़ा आदर सत्कार किया। फिर कृष्ण से भोजनकी प्रार्थना की जब कृष्ण ने अस्वीकार किया, तो दुर्योधन ने पूछा कि महाराज! आप मेरा अन्न क्योंकर नहीं ग्रहण करते. मैंने अनेकप्रकार से आप की सेवा करना चाहा और अच्छे अच्छे भोजन तैयार कराये परन्तु आप स्वीकार नहीं करते। आप मेरे प्यारे सम्बन्धी हैं और दोनों पक्ष वालों के मित्र हैं, इसलिये आपको दोनोंपक्ष समान हैं। कृष्ण ने उत्तर में कहा कि हे दुर्योधन दूतों के लिये यही आज्ञा है, कि जब तक उनका दूतत्व सफलनहो तब तकदूतों को पूजा स्वीकार न करें, इस लिये जब तक मैं अपने कार्य में सफल नहींहोऊंगा तब तक आप के महल में अन्न जल ग्रहण नहीं कर सकता, हां, सफलता होने पर मैं हर तरह से राजी

हूं। इस पर दुर्योधन बोला कि महाराज! आपको उचित नहीं कि हमारे साथ ऐसा बर्ताव करें। हम आपका पूजन इसलिये करतेहैं,कि आप हमारे सम्बंधी हैं। आपकाकाम बने वा न बने हमारा अन्न स्वीकार कीजिये, जिस में हमारे चित्त में जो सेवा का भाव है वह बना रहे। आप से हमें कोई विरोध नहीं फिर आप क्यों हमारी सेवा स्वीकार नहीं करते। कृष्ण ने जवाब दिया कि मेरा यह सिद्धान्त नहीं कि किसी को प्रसन्न रखने के अभिप्राय से वा क्रोध से अथवा किसी लाभ के हेतु मैं धर्म मार्ग छोड़ दूं। मनुष्य किसी घर का भोजन तब ही खा सकता है कि जब उस के हृदय में खिलानेवाले का प्रेमहो अथ वा उस पर आपत्तिकाल हो। अब सत्य तो यों है किमेरे हृदय में न तो तेरे लिये तनिक भी प्रेम है और न मुझ पर आपत्ति-काल है।

चौबीसवां अध्याय।

विदुर और कृष्ण की बात चीत।

इतिहासलेखक लिखता है कि रात का भोजन करनेके पश्चात् जब विदुर और कृष्ण इकट्ठे हुए तो विदुर ने कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण! तू व्यर्थ यहां आया। मुझे पूरा विश्वास है कि तेरे उपदेश से कुछ काम नहीं निकलेगा। दुर्योधन ने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर-ली है। जो क्षत्रिय तेरे शत्रु हैं, वह सब उसके सहायक हो रहे हैं उसे अपने सेनाबल पर इतना भरोसा है कि वह

अभी से अपने को विजयी समझने लगा है। धन और राज-पाट की इच्छा ने दुर्योधन की आँखों पर पट्टी बाँध रक्खी है। उसके सभासद भी उसी के समान कामी और क्रोधी इकट्ठे होगये हैं। मुझे दुःख है कि तूने वृथा इन दुष्टों के पास आने का कष्ट उठाया। पांडवों का सहायक समझ कर यह सब तेरे लहू के प्यासे होरहे हैं। मुझे भय है कि वे तुझे कुछ हानि न पहुंचायें इसलिये मेरी सम्मति है कि तू इस काम को त्याग दे और इनकी सभा में न जा, क्योंकि मुझे तेरे-कार्य की सफलता की तनिक भी आशा नहीं। जिस सभा में अच्छी या बुरी बात का अन्तर न विचारा जाए वहाँ बात चीत न करनी चाहिये। जिस प्रकार चाण्डालों के सामने ब्राह्मणों के वचन का सत्कार नहीं होता उसी तरह दुर्योधन की सभा में तेरे कथन या आशय का सन्मान नहीं होगा। एवं ऐसे व्यर्थ काम से दूर रहना ही अच्छा है।

इसके उत्तरमें कृष्ण जी बोले कि हे विदुर जी! मैं आपके इस उपदेश के लिये आपका बहुत ही अनुगृहीत हूं। धर्मात्मा और भद्रपुरुष ऐसी सलाह दिया करते हैं। परन्तु मुझे खेद है कि मैं दृढ़संकल्प करके आया हूं कि कम से कम एक बार अवश्य इस बात का यत्न करूं कि ये लोग वृथा सृष्टिके प्राण नष्ट न करवें।

इस समय मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं, कि देश को और विशेषतः क्षत्रियवंश को इस बरबादी से बचाने के लिये एक बार कोशिश करूं। यदि इसमें मैं सफलीभूत हुआ तो मैं समझूंगा कि मैंने महान् धर्म का काम किया। नहीं तो कम से कम मुझे इतना हार्दिकसन्तोष तो अवश्य रहेगा कि मैंने अपनी ओरसे यत्न करने में कुछ कमी नहीं की। प्रत्येक सच्चे

मित्र का धर्म है कि अपने मित्र को बुरे कामसे बचावे। कौरव और पांडव मेरे सम्बन्धी हैं, दोनों के साथ मुझे प्रेम है। इस समय मैं देखता हूं कि दोनों दल एक दूसरे को काटने के लिये तत्पर हैं। इसलिये मेरा धर्म है कि इस उत्पात को मिटाने का यत्न करूं। चाहे कोई माने या न माने। सारांश यह है कि बहुत देर तक विदुर और कृष्ण में इसतरहकी बातचीत होती रही और श्रीकृष्ण अपने सङ्कल्प में दृढ़ रहे।

धृतराष्ट्र की सभा में कृष्ण का दूतत्व।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने अपने नित्यकर्म से छुट्टी भी नहीं पाई थी कि दुर्योधन उन्हें अपने दर्बार में लेचलनेको आन पहुंचा। श्रीकृष्ण सन्ध्या और अग्निहोत्रादि से छुट्टी पा कर उसके साथ हो लिये, और दर्बार में पहुंचे। जहां धृतराष्ट्र, भीष्म और द्रोणादि ने खड़े हो कर इनका स्वागत किया कुछ इधर उधर की बात चीत होने के उपरान्त कृष्णचन्द्र धृतराष्ट्र से यों कहने लगे कि—

"हे राजन्! आपका कुल सारे आर्यावर्त में शिरोमणि है, शास्त्र मर्यादा में इस कुल ने बड़ी प्रतिष्ठा पाई है, आप का वंश ऐसा पवित्र है कि सदा दूसरों के दुःख में अपना दुःख समझता आया है और कभी धर्मका त्याग नहीं किया। दीनों पर दया और सदाचरण में भी तुम्हारा कुल जगत्‌विख्यात है। ऐसे कुल से कभी किसी निंदनीय कार्य की आशा नहीं की जा सकती, इस लिये यही उचित है कि पांडवों से और तुम से मेल होजाये। मैं मेल कराने को आया हूं यदि इधर से आप मेल करने पर राजी होगये और उधर मैंने कोशिश की तो मेल होजाना कुछ असम्भव नहीं। दोनों का भला इसी में है कि आपस में मिलके निपट लें। आपस में मेल हो,

जावे से किसी की सामर्थ न होगी कि तेरे कुल वालों पर नज़र डाल सके। पृथिवी का राज तुम्हारे आधीन होजायगा। यदि यह लड़ाई छिड़ गई तो इन सारे जीवों की हत्या का भार तुम्हारे सिर पर रहेगा यदि पांडव मारे गये तबभी तुझे दुःख होगा यदि तेरे पुत्र मरे तो तेरा जीवन वृथा हो जायगा। हे राजन्! देख, देश के सारे राजे महाराजे लड़ाई पर कमर बांधे तैयार हैं। इस लड़ाई में सब का बरबादी है। इस में न छोटा बचेगा और न बड़ा; इसलिये हम पर दया कर और लड़ाई को बन्द कर, नहीं तो लहू की नदी यह निकलेगी और सारे भारतवासी इसमें प्रायः नए हो जायेंगे।

हे नृप! अपनी प्रजा को इस आपत्ति से बचा। पांडव भी तेरे ही अंश हैं। जब उनका पिता परलोक सिधारा तो वे बालक थे। तू ने उनका पालन पोषण किया और निज संतान के समान शिक्षा दी, अतएव उन्हें निज सन्तान समझ कर उन पर दया कर और इस लड़ाई को बन्द कर।

बेचारा युधिष्ठिर तो धर्म के हेतु प्राण देने को भी तय्यार है। इस समय तक वह तेरी आज्ञा पालन करता आया है। तेरे पुत्रों ने उनसे बारम्बार बुरा बर्ताव किया, परन्तु उन्होंने कभी तेरा वा तेरे पुत्रों का बुरा नहीं विचारा। देख, तेरे पुत्रों ने द्रौपदी का कैसा अपमान किया। उसके केश पकड़कर उसे सभा में घसीट लाये परन्तु तब भी पांडवों ने सहन किया और बखेड़ा नहीं बढ़ाया, इसलिये कल्याण इसी में है कि युधिष्ठिर को इसका हक़ देकर इस बखेड़े को शान्त कर। मैं दोनों का शुभचिन्तक हूं, इसलिये धर्म के नाम पर, दोनों के कल्याण के नाम पर आपसे अपील करता हूं कि आप

सन्धि करलें, नहीं तो इसका अन्त बड़ा भयानक होगा, और उसके उत्तरदाता आप होंगे।

राजा धृतराष्ट्र ने इसका उत्तर यों दिया कि हे केशव! तू ने जो कुछ कहा सो सत्य है। स्वर्गलोक जाने का यही मार्ग है। धर्ममर्यादा यही है, जो तू ने बतलाई परन्तु क्या तू जानता नहीं है कि मेरे पुत्र मेरे वश में नहीं। दुर्योधन मेरी आज्ञानुसार काम नहीं करता। न वह अपनी माता गान्धारी का कहना मानता है। उस पर किसी के सदुपदेश का प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिये हे कृष्ण! तू ही कृपा करके उसे समझा जिससे वह इस पाप कर्म से बचे।

तब कृष्णने दुर्योधन की ओर फिरकर योंकहना आरंभ किया।

हे दुर्योधन! ऐसे उच्च वंश में तू ने जन्म पाया है। तुझे उचित है कि कोई ऐसा काम न करे जिससे तुझ पर वा तेरे पूर्वजों पर कलंक लगे। विद्या पाकर तुझे उचित नहीं कि तू अनपढ़ लोगों के समान कार्य करे। इस समय तेरी इच्छा जिस ओर है वह अधर्म और पाप का मार्ग है। जो काम तूने करना विचारा है, वह धर्मात्मा और भद्र पुरुष नहीं किया करते। देख तेरे इस कार्य्य से कितने जीव नष्ट होंगे। तुझे वही करना उचित है, जिसमें तेरी तेरे सम्बन्धियों और मित्रों की भलाई हो पांडुपुत्र बड़े धर्मात्मा और सदाचारी विद्वान् और वीर हैं। तुम्हारे पिता पितामह, गुरु और दूसरे ज्येष्ठ पुरुषों की इच्छा है कि पांडुपुत्रों से सन्धि करली जाये। इस लिये हे मित्र! तेरा कल्याण इसीमें है कि तू उनसे मेल करले, ऐसे उच्च वंश में जन्म लेकर तुझे उचित है कि तू क्रोध से काम न करे। जो पुरुष अपने मित्रों के सदुपदेश को नहीं मानता उसका भला कभी नहीं होता और अन्त में उसे पछा-

ताप करना पड़ता है। तुझे भी उचित है कि तू अपने पूज्य पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करे, नहीं तो याद रख कि तुझे अन्त में दुःख पहुंचेगा। पांडवों से मित्रता रखने में तेरा प्रत्येक प्रकार कल्याण है देख ! तूने उन्हें कितनी बार सताया पर उन्होंने तुझ पर कभी हाथ नहीं उठाया, और कभी तुझ से बदला लेनेकी इच्छा नहींकी नहीं तो तू जानताहै कि वीरता और धनुर्विद्या में अकेला अर्जुन अपना समान नहीं रखता तेरी सेना में कोई उसका सामना करनेवाला नहीं है राजकुमार ! तू अब अपने भाईबन्धु और इष्ट मित्रों पर दया कर तुझे अपनी प्रजापर भी दया करनी चाहिए नहीं तो सब इस युद्ध में नष्ट होजायंगे और लोग यही कहेंगे कि दुर्योधन ने आप अपने कुलका नाश कर दिया। पांडुपुत्र इस पर राजी हैं कि धृतराष्ट्र महाराजाधिराज मानाजाय और तुम्हें युवराज की पदवी दी जाय पर तुझे उनका आधा राज पाट उन्हें दे देना चाहिए इस अवसर को तू दुर्लभ समझ और पांडुपुत्रों से मेल करके सुख और सुयश को प्राप्त हो।"

भीष्म, द्रोण और विदुर ने भी अनेक प्रकार से दुर्योधन को सन्धि कर लेने की सलाह दी पर दुर्योधन ने एक की न सुनी और बोला कि हे महाराज ! मैंने आप के वचन सुने आप को उचित न था कि आप बिना विचारे मुझसे यों बात चीत करते मैं नहीं समझता कि आप सब क्यों मुझे इस विषय में दोषी ठहराते हैं और पांडवों की सब बातों की प्रशंसा करते हैं, वास्तव में आप के सम्मुख विदुरजी पिताजी गुरुजी और दादाजी सब के सामने मैं ही दोषी हूं पर मुझे अपने में कुछ दोष नहीं दिखाई देता मैंने कोई अपराध नहीं किया युधिष्ठिर ने अपनी इच्छा से चौसर खेला और दाव

में अपना सारा राज पाट हारगए, फिर भी मैंने शकुनी से कह कर उनका सारा राजपाट लौटा दिया पर उन्होंने फिर दाव रक्खा और अंत में देश त्याग का प्रण किया मैंने किसी प्रकार उनके साथ कुछ छल नहीं किया उन्होंने हमारे खान्दानी शत्रुओं की सहायता की और उनकी सहायता से हमारे देश पर धावा करने और हमको लूटने पर तैयार हुए।

भय से तो मैं इन्द्र के सामने भी सर झुकाने को तयार नहीं मैं क्षत्री हूं मेरे पास भय नहीं फटक सकता यदि मैं लड़ाई में मारा गया तो सीधा स्वर्ग को जाऊंगा क्षत्री का महान् काम यही है कि युद्ध क्षेत्र में लड़ता हुआ अपने प्राण दे। लड़ाई में शत्रु के सामने शिर नीचा किये बिना यदि हम वीरता से लड़ते जांय तो इससे अच्छा और क्या हो सकताहै मेरे बाल्यावस्था में मेरे पिता ने अन्याय से उन्हें आधा भाग दिया था मैं किसी तरह उसे स्वीकार नहीं कर सकता, जब तक मेरा स्वांस चल रहा है तब तक मैं सुई की नोक जितनी भूमि भी उन्हें नहीं प्रदान कर सकता।

दुर्योधन की ये बातें सुनकर कृष्णचन्द्र ने विराट रूप धारण किया और मारे क्रोध के आंखें लाल २ करके कहने लगे कि "हे दुर्योधन! क्या सचमुच तू बाणों की शय्या पर सोना चाहता है। अच्छा तेरी इच्छा पूर्ण हो और शीघ्र पूर्ण हो हे मूर्ख! क्या तू समझता है, कि मैंने पाण्डवों के साथ कोई अन्याय नहीं किया है क्या ये सारे राजे महाराजे जो यहां वर्त्तमान हैं यह कह सकते हैं, कि तेरा यह कथन सत्य है, तूने पांडवों को हानि पहुंचाने और उनको मारने के लिये क्या कुछ नहीं किया" इस पर उन्होंने दुर्योधन की एक एक करके सारी अनीतियां सुनाईं और फिर कहने लगे

कि हे पापी ! तू नहीं चाहता कि पांडवों को उनका पैतृक भाग दे यद्यपि वह विनय पूर्वक केवल अपना भाग मांग रहेहैं यह याद रख कि तुझे भाग देना पड़ेगा और तू फिर पश्चात्ताप करेगा तुझे मैंने समझाया, तुझे धृतराष्ट्र ने समझाया, भीष्म ने समझाया, विदुर ने समझाया, द्रोण ने समझाया, पर तुझ पर किसी के समझाने का प्रभाव न हुआ। सत्य है, जब बुरे दिन आते हैं तो बुद्धि विपरीत होजाती है और मनुष्य अभिमान से पूर्ण अपने इष्ट मित्रों के उपदेश को तुच्छ समझने लगता है।"

कृष्ण का यह कथन सुन के सारे दर्बार में सन्नाटा छा गया निदान दुःशासन बोला कि "हे दुर्योधन यदि तू आप सन्धि न करेगा तो राजाजी तेरे हाथ पैर बांध कर तुझको मुझको और कर्ण को पांडवों के हवाले कर देंगे फिर तू क्या कर सकता है।"

यह सुनकर दुर्योधन पहिले तो बड़े असमंजस में पड़ा फिर सर्प की तरह फुंकारता हुआ उठकर दर्बार से चलदिया उसके साथ ही उसके भाई बन्धु और इष्टमित्र भी चलते हुए निदान कृष्ण ने धृतराष्ट्र से यों कहना आरम्भ किया कि हे राजन् ! अब तुझे भी उचित है कि तू अपने इस दुराचारी पुत्र को बन्दी करले। बुद्धिमानी तो इसी में है, कि कुल की भलाई के लिये एक पुरुष की परवाह न की जाय। वरन यदि कुल के अहित से देश वा जाति का हित हो तो कुल की परवाह न करनी चाहिये और आत्मा के उपकार के लिये संसार की परवाह नहीं की जाती। इसलिये हे राजन्! दुर्योधन को बन्दी करके पांडवों से सन्धि करले।

धृतराष्ट्र में इतनी सामर्थ्य कहां थी जो कृष्ण के इस कथन पर अमल करता। उसने अपनी रानी गान्धारी को बुला के उससे कहा कि तू दुर्योधन को समझा।

गान्धारी ने पहिले तो राजा को बहुत कुछ धिक्कारा फिर कहने लगी कि इस सारे उपद्रव के उत्तर दाता आप ही हैं। आपही ने दुर्योधन को इतना सिर चढ़ा रक्खा था कि अब वह एक की भी नहीं सुनता। अन्त में दुर्योधन को बुलवाया और उसे इस प्रकार समझानेलगी कि हे पुत्र! तुझे अपनेपिता पितामह गुरु और बड़ोंकी आज्ञापालन करना चाहिए यही तेरा परम धर्म है। मेरी भी यही उत्कट इच्छा है कि आपस में सन्धि हो जाय। एवं यदि तू हम सबकी इच्छा पूर्ण करेगा तो हम सब तुझ से बड़े प्रसन्न होंगे, अकेला कोई पुरुष भी राज्य नहीं करसकता, और विशेषतः वह पुरुष कि जिसकी इन्द्रियां उसके वश में न हों कभी अधिक काल तक अनुशासन नहीं कर सकता। अनुशासन वही पुरुष कर सकता है जो अपने इन्द्रियों को अपने वशीभूत रख के बुद्धिमानी से बर्त्ताव करे। कामी वा क्रोधी राज्य के उपयुक्त नहीं होता इसलिये पहले अपनी इन्द्रियों पर अधिकार पाना चाहिये। फिर संसार का राज्य मिल सकता है। मनुष्य पर अनुशासन करना बड़ा कठिन है। संभव है कि कभी कोई दुष्टात्मा शक्तिमान् होजाय, और उसे राज्य मिलजाय पर उससे उसका निर्वाह नहीहो सकता। जो प्रतापी राजा बनना चाहताहो उस का प्रथम धर्म है कि अपनी इन्द्रियों को अपने आधीन करे क्योंकि इससे बुद्धि की वृद्धि होतीहै जितनी इंधन से आगकी स्वाधीन इन्द्रियाँ स्वाधीन घोड़ों के तुल्य हैं जो अपने सवार को कभी न कभी गिरा छोड़ता है और घायल करता

है जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को अपने आधीन किये बिना अपने मित्रों में श्रेष्ठता पाने का यत्न करता है। उसका यत्न वृथा जाताहै। और अपने मित्रों में सम्मान पायबिना जो अपने शत्रु पर विजय पाने की इच्छा रखता है उसकी इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती अतएव पहला यत्न यह होना चाहिये कि मनुष्य अपने इन्द्रियों पर प्रभुत्व पावे, क्योंकि ऐसे ही पुरुषको सदा सुख प्राप्त होता है। काम और क्रोध को बुद्धिमानो से वश में करना चाहिये। जिस पुरुष ने यावत् सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर दिया है पर काम और क्रोध उसके शरीर में बना है वह कभी स्वर्ग को नहीं जा सकता। वही क्षत्री चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त हो सकता है। जिस ने काम, क्रोध, लोभ और अभिमान को जीत लिया है।

इसी प्रकार उपदेश करते हुए गांधारी ने दुर्योधन को सब ऊंचा नीचा दिखाया। कभी उसको अर्जुन और कृष्णकी वीरता का भय देती थी और कभी भीष्म धृतराष्ट्र और द्रोणादि के अप्रसन्न होजाने का भय दिखाती थी सारांशयह कि प्रत्येक प्रकार से उसे समझाया पर उसने कुछ न मानी। और अन्त में उठ खड़ा हुआ और दरबार से चलता हुआ।

पच्चीसवां अध्याय।

कृष्ण के दूतत्व का अन्त

दरबार से बाहर जाकर दुर्योधन ने अपने भाई बंधुओंसे राय मिलाई और कृष्ण को कैदकरने की ठानी पर यह बात पूरी न भी होने पाई थी

कि इसकी सूचना कृष्ण के अरदली सात्यकि को मिलगई और उस ने एक ओर तो अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा भेजदी और दूसरी ओर जाके कृष्ण को यह खबर सुना दी और फिर उसकी आज्ञा से धृतराष्ट्र को जा सूचित किया। सारा दरबार यह बात सुन के दंग रहगया क्योंकि प्राचीन काल में दूत को क़ैद करना महापाप समझा जाता था इसी लिये किसी को इसका विचार भी न था कि दुर्योधन ऐसी नीचता पर कमर बांध लेगा धृतराष्ट्र लज्जा और क्रोध से कांपने लगा और दुर्योधन को बुला के बहुत धिक्कारा कृष्ण दरबार से विदा होके कुन्ती के पास आया और उसको सारा वृतान्त कह सुनाया और फिर पूछने लगा कि अब क्या करना चाहिए। कुन्ती ने कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रों को संदेशा कहला भेजा।

पहिले युधिष्ठिर को हे पुत्र! तेरा यश दिन छिन घटरहा है। क्योंकि तू अहंकार में फंसा हुआ उस पुरुष के समान जो यथार्थ अर्थ समझे बिना वेदों के शब्दों को रट लेता है और इसलिये विद्वान् नहीं कहलाता धर्म के एक पक्ष को देखरहा है। तू बिल्कुल भूल गया कि परमात्माने उस वर्ण के लिये किस धर्म का उपदेश किया है जिसमें तैने जन्म लिया है, क्षत्री इस लिये उत्पन्न होता है कि वह केवल अप ने बाहुबल पर भरोसा रखता हुआ प्रजा की रक्षा करे। सुरक्षित प्रजा के पुण्य कर्मों २ फलका छटा भाग राजा के लेखे में गिना जाता है राजा को अपना धर्म पालन करने से देवता पद मिलता है और पाप से वह नर्कगामी होता है। राजा का धर्मानुसार चारों वर्णों में न्याय करना तथा प्रत्येक अपराधी को दण्ड देना महान् कर्तव्य है। इससे उसको मोक्ष मिलती है।

जिसकाल में राजा, प्रजा से नियम का अच्छी तरह पालन कराता है। उस समय को कृतयुग कहा है। ऐसे राजा को महान् सुख की प्राप्ति होती है। याद रखना चाहिये कि समय राजा के आधीन होता है। राजा समय के आधीन नहीं होता जिस राजा के समय में त्रेता युग हुआ उसको भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। पर वह स्वर्ग को बहुत अच्छी तरह नहीं भोग सकता। और इसी तरह द्वापर युग का राजा इस से भी कम, और कलियुग लाने वाला राजा तो पाप में डूबा हुआ दुख भोगता है। और बहुत काल के लिये नर्क को जाता है। सत्य तो यों है कि राजा के पापों का उसका प्रजा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, और ऐसा ही प्रजा के पापों का फल राजा को भी भोगना पड़ता है।

इसलिये हे राजपुत्र! तुझको उचित है कि तू अपनी मर्यादानुसार व्यवहार कर जो आचरण तूने ग्रहण किया है वह राजर्षियों के योग्य नहीं है अनुचित दया की गिनती निर्बलता में होती है तेरे पिता या मैंने कभी तेरे लिये ऐसी बुद्धि की रक्षा नहीं की, मैं तो सदा तेरे लिये यश दान और पुरुषार्थ की परमेश्वर से प्रार्थना करती रही हूं।

मैं सदा परमात्मा से यही वन्दना करती आई हूं कि वह तेरे आत्मा को महान् बनावे और तुझे वीरता और पुरुषार्थ प्रदान करे।

देखो जब प्रसन्न होते हैं तो आयुष, धन और संतान की वृद्धि करते हैं माता पिता को सदा यही इच्छा होती है कि उनकी सन्तान विद्वान् हो, दानी हो, और प्रजा पालक हो इसलिये तेरा कर्तव्य है कि जिस वर्ण में तेरा जन्म हुआ है उसके धर्म का पालन करे, हे युधिष्ठिर दान लेना ब्राह्मण का

काम है तेरा काम नहीं, तू क्षत्री है तेरा धर्म यह है कि तू अपने बाहुबलसे विपत्ति कालमें दूसरों की सहायता करे, इसलिये अब विलम्ब क्यों करता है क्यों अपने बाहुबल से अपना राजपाट नहीं लौटा लेता, कैसे दुख की बात है कि तुझे जन्म देके भी मैं दूसरों का दिया हुआ अन्न खाऊं युधिष्ठिर! तू क्यों अपने पूर्वजों के यश और कीर्ति में बट्टा लगाता है। उठ! वीरों की तरह युद्ध कर और धर्म मर्यादा को छोड़ कर भाइयों सहित पाप का भागी न बन इसी तरह के सन्देश कुन्ती ने भीम और अर्जुन के लिये भी दिये और कृष्ण को प्यार देकर विदा किया।

छब्बीसवां अध्याय।

कृष्णचन्द्र कर्ण को लड़ाई में न जाने के लिये समझाते हैं।

जब कृष्ण अपने कार्य्य में सफलीभूत न हुये तो उन्होंने चलते चलते एक और युक्ति लगाई अर्थात् जिसमें कर्ण और दुर्योधन में विरोध हो जाय और कर्ण उसका पक्ष छोड़ के पांडवों का साथदे।

कर्ण के विषय में कहा जाता है कि वह पांडवों का सौतेला भाई है पर वह विवाह से पहले उत्पन्न हुआ था इसलिये कुन्तीने भी उसे अपना पुत्र स्वीकार नहीं किया था पाठकों को याद होगा कि पांडवों की बाल्यावस्था में जब उन की और धृतराष्ट्र के पुत्रों की परीक्षा ली गई थी तो कर्ण को अर्जुन के प्रतिपक्षी बनने की आज्ञा नहीं दी गई थी क्योंकि

वह कम असल था उसी दिन से उसने प्रण किया था कि किसी तरह अर्जुन को परास्त करके इस अपमान का बदला लूंगा इसी अभिप्राय से उसने दुर्योधन से मित्रता पैदा की और उसको अपना सहायक बना लिया दुर्योधन की सेना में कर्ण और भीष्म अर्जुन के बराबर के योधा गिने जाते थे दुर्योधन को विश्वास था कि इन दोनों के सामने अकेले अर्जुन की कुछ न चलेगी इस से उसको इतना अभिमान था कि वह इस सन्धि को अस्वीकार करता था कृष्णचन्द्र यद्यपि अन्तःकरण से चाहते थे, कि लड़ाई न हो पर पांडवों को उनका स्वत्व न मिले और सन्धि होजाय इस बात को पसन्द नहीं करते थे वरन वह इसे पाप समझतेथे इस लिये हस्तिनापुर से विदा होने के पहिले उसने यह युक्ति लगाई कि कर्ण को उसके जन्म का यथार्थ परिचय देकर दुर्योधन की सहायता करने से रोको कृष्ण ने कर्ण को बहुत कुछ समझाया और पांडवों की ओर से यहां तक कहा कि आप उमर में सब भाइयों से बड़े होनेके कारण गद्दीके अधिकारी हैं पर इस परभी कर्ण ने दुर्योधन का साथ छोड़ना स्वीकार नहीं किया और अन्त में यह उत्तर दिया कि मैं दुर्योधन से उसका साथ देने को दृढ़ संकल्प कर चुका हूं अब यदि चक्रवर्ती राज्य भी मिले तो उसका साथ नहीं छोड़ सकता मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है कि या तो अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में नीचा दिखा कर यश और कीर्त्ति का लाभ पैदा करूं और संसार में महावीर कहलाऊं अथवा उसके हाथ से मारा जा कर स्वर्ग को पधारूं। कृष्णचन्द्र की चतुरता का यह अन्तिम बारभी खाली गया अब इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय बाकी न रहा कि अपनी २ सेना सजाई जाय और लड़ाई की तैया-

रियां की जांय जब कृष्ण हस्तिनापुर से लौटे तो युधिष्ठिर ने अपनी सेना के साथ प्रस्थान किया और कुरुक्षेत्र के मैदान में आपहुंचा और लड़ाई की तैयारियाँ होने लगीं।

---

२७ वां अध्याय।

महाभारत की लड़ाई।

भारत सन्तान के इन दोनों वंशों में मेल कराने की कोई युक्ति बाकी न रही साम दाम प्रत्येक नीति काम में लाई गई। पर किसी प्रकार भी अन्त भला न निकला तब अपने बाहु बल से अपना २ न्याय करना स्थिर किया गया। सत्य है जब दिन बुरे आते हैं तो बुद्धि विपरीत होजाती है। भले और बुरे का ज्ञान नहीं रहता, बुद्धि पर मानों परदा पड़ जाता है और ऐसे ही अवसर पर कहा जाता है कि भाग्य बड़ा प्रबल है। कर्मों की गति के सामने मानुषी युक्तियाँ वृथा हो जाती हैं। महाभारत की लड़ाई क्या थी? आर्य्य जाति के बुरे कर्मों का दण्ड था राजा और प्रजा के एकत्रित पाप मनुष्य रूप धारण करके कुरुक्षेत्र में इसलिये इकट्ठे हुए थे कि आर्य्यावर्त की विद्या, कला और कौशल में जो कुछ अच्छा हो उसे मिट्टी में मिला दिया जाय ऐसा जान पड़ता था मानो अब आर्य्य जाति का अन्त काल आन पहुंचा क्योंकि यह बात सहसा विश्वास में नहीं आती थी कि भीष्म और युधिष्ठिर अर्जुन और द्रोण युद्धक्षेत्र में खड़े होकर एक दूसरेसे लड़ने को तय्यार होंगे और गुरु और शिष्य अपने २ पद और नियम का विचार रखकर भी प्राचीन आर्य्यावर्त की श्रेष्ठता की अन्तिम झलक दिखाकर मानो उस

वहाँ सफल करने के लिए इकट्ठे होंगे यह कौन जानता था ? कि महाराज शान्तनु के बाद तीसरी पीढ़ी में उसके वंश वाले यों ही युवावस्था की उमंग अपने बल के परीक्षार्थ सारे आर्य्यावर्त्त को मिट्टी में मिला देंगे और अपने हाथसे अपनी जाति को उन्नति के शिखर से उतार के अवनति के गढ़े पर लगा देंगे हाय ! इस आपस की लड़ाई ने भारत को नष्ट भ्रष्ट कर दिया महाभारत की लड़ाई में जिस ध्वज से दोनों सेनायें सुसज्जित की गईं तथा जिन सैनिकों ने जो वीर भाव दिखलाए, जिस ढव से सेना खड़ी की गई, और उनसे धावा कराया गया, इत्यादि वृत्तान्त पढ़कर एक दीर्घ विश्वास लेना पड़ता है। मानों कि इसके वर्णन में ६५ प्रति कविकृतित्व है पर इसे घटा देकर ५ प्रति शेष बच जाते हैं वह हमें आठ आठ आँसू रुलाने के लिए बहुत हैं। क्या संसार में कोई ऐसी जाति बताई जा सकती है ? जिस के कविने अपने कृतित्व के लिये शास्त्रों के नाम गढ़ लिए हों अथवा अनेक प्रकार के भावों के लिये कल्पित नाम बना लिया हो और लड़ाई का वर्णन सविस्तर लिखा हो, मानो वह केवल कवि ही नहीं वरन सर्व विद्या का पूर्ण पण्डित हो।

मनुष्य का दैहिक बल सेना की गिनती अथवा ऐसी ही और बातों में चाहे कितनी कल्पना शक्ति क्यों न खर्च की जाय पर संसार में न कोई ऐसा "होमर" जन्मा और न वर्जिल जिसने समरविद्या से अनभिज्ञ वा एक बर्बर जाति के लिये इलियड वा ओडिसे लिख डाली हो होमर और वर्जिल की कविता से यूनानियों और रोमियों की वीरता और मिलिटरी सायंस का भली भांति परिचय मिलता है। वैसे

ही आर्य्य जाति को युद्धविद्या में जो निपुणता प्राप्त थी वह महाभारत से अच्छी तरह प्रगट होती है। कथिकृतित्वके लिये जो रिआयत रखना हो वह रख लो, तब भी जो कुछ शेष बच जाता है वह नेत्रों के सामने एक विचित्र समा खड़ा कर देता है यह सच है कि उन वीर आर्यों के उत्तराधिकारी अब उस भाषा का भी पूरा ज्ञान नहीं रखते जिसमें ये घटनायें वर्णित हैं। इनके लिये इस युद्ध का वर्णन ऐसा है जैसे अंगरेज़ी भाषा से एक अनभिज्ञ पुरुष के लिये मिलटन का पेरेडाइज़ लास्ट।

सारांश यह कि दोनों ओर लड़ाई की ठन गई। दोनों ओर से सेना सुसज्जित करके सामने को गई, सेनाओं का स्थान रथों पर बाँट कर अफसर नियत कर दिये गए। एक ओर से सेना का आधिपत्य भीष्मपितामह को दिया गया और दूसरी ओर से धृष्टद्युम्न को, शंख घड़ियाल आदि बाजों की ध्वनि से आकाश पाताल एक होगया। घोड़ों की टाप से मानों पृथिवी कम्पायमान होगई। अफसरों की प्रभावशाली वक्तृता से सैनिकों का मानो रक्त उबल रहा था इस मैदानमें जो कुछ था वह प्रोत्साहित होरहा था भाई भाई से दादा पोते से गुरु शिष्य से लड़ने के लिये तैयार थे।

सारे स्नेह को परित्याग करके आन की आन में भाई भाई के लोहू का प्यासा दीख पड़ने लगा। अहो! क्या समा था आर्यावर्त जैसे महान् देश की सारी लड़ाकी जातियां अपने अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर लड़ने को तैयार थीं।

सत्य है किसी देशकी समृद्धिको देखनाहो तो वहांकी सेना को देख लो। क्योंकि अपने शत्रु के सामने आने के लिये प्रत्येक जाति अपनी पूरी शक्ति को प्रगट करने का यत्न करती है।

महाभारत की लड़ाई के आरम्भ के पहिले कुरु क्षेत्र का मैदान मानो एक प्रदर्शिनी के समान था जिसमें भारतवर्ष का पूरा विभव दिखाई देता था स्टेज विचित्र था। परदे विचित्र थे। बाजे गाने विचित्र थे और साथ ही एक्टर भी अपने २ गुण में पंडित थे। जो फिर इसके बाद आर्य्यावर्त के स्टेज पर नहीं आये इस स्टेज में अर्जुन ने कृष्ण को आज्ञा दी कि मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में लेजाकर खड़ा करो जिसमें दोनों दल पर मैं अच्छी तरह नज़र डाल लेलूं। कृष्णने तत्काल आज्ञा का पालन किया और अर्जुन कृष्ण दोनों सेनाओं के बीच जा खड़े हुये ज्यों ही अर्जुन की दृष्टि कुरुसेना पर पड़ी और भीष्म और द्रोण को देखा तो उसका दिल हिल गया। इस समय वैराग्य के भाव उसके दिलमें उठने लगे यहाँ तक कि अर्जुन विवश होकर कह उठा कि सांसारिक सुख वा राजपाट के लिये मुझे भीष्म और द्रोण जैसे सत्पुरुष और धृतराष्ट्र के पुत्रोंका वध करना स्वीकार नहीं, मैं तो नहीं लड़ता। कृष्ण ने जब यह सुना तो अचम्भित रह गया।

उसने सबसे पहिले अर्जुन को क्षत्रियत्व की अपील की और तिरस्कार से काम निकालना चाहा उसने दोनों सेनाओं की ओर सङ्केत करके पूछा, कि हे अर्जुन आर्यों में तो ऐसी कायरता नहीं होती, जैसी इस समय तू दिखा रहा है। देख दोनों दल वाले लड़ने को कमर बाँधे खड़े हैं। तू इस समय यदि इस मिथ्या वैराग्य में फंस कर मैदान छोड़कर भागखड़ा होगा तो लोग क्या कहेंगे तेरे शत्रु तेरी वीरता में सन्देह करके तेरी निन्दा करते फिरेंगे। क्षत्री का धर्म्म लड़ना है। यदि क्षत्री लड़ाई में मारा जायगा तो वह सीधा स्वर्ग को जायगा यदि तू सफल हुआ तो इस पृथ्वी का राज्य और सुख तेरे

पैर के सा थ रहेंगे। पर अर्जुन के चित्त पर ऐसी आघात लगी थी कि उस समझाने का कुछ भी असर न हुआ। निदान कृष्ण ने आत्मा के विषयका उपदेश करके अर्जुन में से मैं कीट निकाल दी इसलिये उन्हों ने अर्जुन को समझाया कि आत्मा न तो जन्म लेता है और न मरता है न कोई इसे जन्म दे सकता है और न मार सकता है। फिर तेरा विचार कैसा मिथ्या है कि मैं भीष्म और द्रोण को मार कर सांसारिक सुख भोगने की इच्छा नहीं रखता।

'न तुझ में यह शक्ति है, कि तू इन को मार सके और न इन में यह शक्ति है कि वह तुझे मारसकें। आत्मा पर न तो लोहे को मार है और न अग्नि को, मरने और मारने वाला तो यह शरीर है जो आत्मा का वस्त्र है, यह शरीर नाशवान् है और कर्म करने के हेतु मनुष्य को दिया गया है परमात्माने जो धर्म जीवात्मा के लिये नियत किया है उसके पूरा करने के लिये उसके योग्यतानुसार उसे यह शरीर प्रदान किया जाता है जीवात्मा का यह काम नहीं कि इस शरीर के रक्षार्थ अपना धर्म कर्म छोड़दे और मेरे तेरे के भ्रम में पड़के यथार्थ धर्म का परित्याग करे। जीवात्मा का यही धर्म है, कि शरीर से वही काम ले जिसके लिये यह दिया गया है यह शरीर धर्म के अनुकूल कर्म करने के लिये दिया गया है न कि अपनी इच्छानुसार काम करनेके लिये। जो लोग अपनी इच्छाको प्रधान मान कर कामकरते हैं वह कर्म के फेर में फंसे रहकर यथार्थ धर्मसे दूर रह दुख सुख के बन्धन में फंसे रहते हैं परन्तु जो जीवात्मा अपनी इच्छा का परित्याग करके शरीर को निष्काम कर्म में लगाते हैं वह सचाई को पाकर शारीरिक प्रयोजन वा उसके बन्धनों से स्वतंत्र होजाते हैं और मोक्ष को प्राप्त होते

हैं अतएव तुझे उचित है कि क्षात्र धर्म का पालन करता हुआ मेरे और तेरे, अथवा इसके और उसके कुविचार को छोड़दे और अपने धर्म पर स्थिर रहे क्योंकि ऐसा न करने से तू घोर पाप का भागी बनेगा और नर्क में पड़ेगा।

नोटः—पाठक! यह कथन उस उपदेश का सार है जो कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को दिया था और जिसके प्रभाव में आकर अर्जुन फिर लड़ने को बद्ध परिकर होगया था साधारणतः यह विचारा जाता है कि सारी गीता का उपदेश कृष्ण ने अर्जुन को युद्धक्षेत्र में किया था, हमको इसके मानने में संदेह होता है पर यदि यह सत्य है तब भी गीता का सार यही है जो हमने ऊपर कह दिया है जब तक लड़ाई होती रही तब तक कृष्ण जी बराबर अर्जुन के साथ रहे और यद्यपि इन्हों ने आप शस्त्र नहीं चलाया पर इस में सन्देह नहीं कि कृष्णकीउपस्थिति से पांडवों को बड़ी सहायता मिलती रही सारी लड़ाई में वह पाँडवों के मन्त्रदाता बने रहे और स्थान २ पर इनकी सेना को प्रोत्साहित करते रहे इस युद्ध को सविस्तार वर्णन करना इस पुस्तक के आशय के बाहर है, अतएव हम केवल उन घटनाओं का उल्लेख करेंगे जिनसे कृष्णचन्द्र का सम्बन्ध है वा जिससे कृष्ण के कैरेक्टर पर कुछ ज्योति पड़ती है।

अठ्ठाईसवां अध्याय।

भीष्म का पराजय होना।

जिस दिन प्रातःकाल लड़ाई का आरम्भ हुआ उस के पहिले दिन सायंकाल को युधिष्ठिर ने कवच और शस्त्रादि उतार कुरुसेना की ओर प्रस्थान किया उसके भाई तथा उसकी सेना आश्चर्य में थी कि महाराज यह क्या कर रहा है, शस्त्र रहित शत्रु की ओर क्यों जा रहा है शत्रु दल भी चकित था कि युधिष्ठिर यह क्या कर रहा है। उसके भाई उसके पीछे दौड़े और उससे उसके इस विचित्र कार्य्य का कारण पूछने लगे इसके साथ कृष्ण जी भी थे, जब युधिष्ठिर ने अर्जुन की बातों का कुछ उत्तर न दिया तो कृष्ण उनके अर्जुनादि भाइयों को समझाने लगे कि लड़ाई से पहिले युधिष्ठिर अपने कुल के ज्येष्ठ और आचार्य्य के पास लड़ाई करने की आज्ञा लेने चला है, क्योंकि शास्त्र ऐसाही लिखतेहैं. युधिष्ठिर भी अपने भाइयों को साथ लिये भीष्म जी के डेरे में पहुंचे और उनके चरणों पर सिर धर दिया और फिर लड़ाई की आज्ञा मांगी, भीष्मजी युधिष्ठिर की इस नीति पर बड़े प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि "पुत्र! मैं प्रसन्न चित्त से तुम्हें लड़ाई करने की आज्ञा देता हूं मेरी समझ में तू सत्य मार्ग पर है परमात्मा तेरी वृद्धि करें" भीष्म की आशीष लेकर युधिष्ठिर अपने आचार्य्य के पास गया, और इसी तरह उन से आज्ञा प्राप्त की फिर कृपाचार्य्य इत्यादि के पास से होता हुआ अपने डेरे को वापस आया।

इसके पश्चात् लड़ाई छिड़ गई दस दिन तक कुरुसेना लड़ती रही, कुरुसेना का सेनापति भीष्म अपने काल का विख्यात योद्धा था, पांडवों की सेना में यदि कोई उसकी बराबरी का था तो वह केवल अर्जुन था दूसरे में ऐसी शक्ति न थी कि भीष्म के बाणों के आगे ठहरता, पांडव अच्छी तरह से जानते थे कि जब तक भीष्म जीवित रहेंगे तब तक जय पाना असंभव है, इस लिये वे अनेक प्रकार से भीष्म पर आक्रमण करते थे, पर हर बेर भाग खड़े होते थे। तीन दिन की लड़ाई में भीष्म ने अनगिनत प्राण नष्ट किये और रक्त की धारा यह चली जिधर जा पड़ता था उधर ही यात की यात में सैकड़ों और हजारों खेत रहते थे, कृष्ण पर इस तीन दिन की लड़ाई में भांप गया कि अर्जुन जी से नहीं लड़ता और भीष्म पर मार करने से झिझकता है।

उसे विश्वास था, कि अर्जुन के अतिरिक्त और किसी में यह पुरुषार्थ नहीं जो भीष्म को नीचा दिखावे और जबतक भीष्म जीवित है तब तक पांडवों का मनोर्थ सफल होना दुर्लभ है, इसलिये तीसरे दिन की लड़ाई में जब इसे पूरा विश्वास हो गया कि अर्जुन जी तोड़ के नहीं लड़ता और भीष्म पर पर धावा करते मुंह मोड़ता है तो यह मारे क्रोध के रथ से उतर पड़ा और शस्त्र हाथमें ले यह कहता हुआ भीष्म की ओर चला कि जिसको आना हो वह चला जाय, जो मरने से डरताहै वह पीछे रहे। यदि कोई भीष्मपर वार नहीं करता तो मैं आप भीष्म को मार गिराऊंगा कृष्ण की यह दशा देख अर्जुन कुछ लज्जित सा हुआ और मन में सोचने लगा कि कृष्ण ने तो लड़ाई में शस्त्र न चलाने का प्रण किया था, यदि क्रोध वश अपना प्रण भंग कर बैठा तो इसका पाप मेरे सिर

होगा, यह सोच वह भी कृष्ण के पीछे हो लिया कुछ दूर जाने पर उसको पकड़ लिया और सशपथ कहने लगा कि आप चिन्ता न करें मैं भीष्म को मारूंगा, इस सारी रचना से कृष्ण का यह अभिप्राय था जो सिद्ध हुआ, अर्जुन से यह बात सुन के कृष्ण ठंडे हो गये और फिर रथ पर आ बैठे अब अर्जुन ने बड़े उत्साह से युद्ध आरम्भ किया यहां तक कि लड़ाई का समा बदल दिया और हजारों आदमियों को मिट्टी में मिला दिया पर फिर भी जब तक भीष्म जीवित था तब तक लड़ाई का बंद होना असंभव था इसलिये पांडवों ने पूरा बल उनके पराजय करने की ओर लगाया।

उधरसे दुर्योधन और उसके भाइयों ने पूर्ण रीतिसे भीष्म की रक्षा की और उनकी सहायता का प्रबंध किया, यहां तक कि सात दिन इसी दावपेच में समाप्त हो गये। नित्य प्रति हज़ारों का वारा न्यारा होता था परन्तु सात दिन तक न भीष्म रणक्षेत्र से हटे न अर्जुन को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचा। सातवें दिन अर्जुन और शिखण्डी ने मिलकर भीष्म को अपने बाणोंसे घिरो दिया, यहांतक कि वृद्ध, बालजितेन्द्रिय बाल ब्रह्मचारी योधों के योधा युद्ध के योग्य न रहा और गिर गया। सुतरां जब भीष्म के गिरने का समाचार सैन्य दल में फैल गया तो द्रोण की आज्ञासे लड़ाई बन्द हो गई और दोनों ओरके योधा मान्य मर्यादाके विचारसे उसके सिरहाने एकत्रित हुए भीष्मने तकियेकी इच्छा प्रगटकी जिसपर दुर्योधन इत्यादि ने भांति २ बहुमूल्य के और नरम २ तकिये मंगाये जिनको भीष्म ने स्वीकार नहीं किया और अर्जुन की ओर ध्यान दे कर कहा कि मेरे समयानुकूल अवस्था के अनुसार मेरे लिये तकिये बना दे। अर्जुन ने ऐसी योग्यता से तीन

धारण भूमि पर चलाये कि इन तीन बाणों से भीष्म के सिर के लिये तकिया बन गया। बाण शय्या के लिये बाणों का ही तकिया उपयुक्त था। भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और अर्जुन को आशीर्वाद दिया।

भीष्म के मृत्युके सम्बन्धमें यह कहावत है कि जिस समय वह गिरे अनगिनत बाण लगेहुये थे और वह इसी तरह बाणों पर पड़े हुये कई दिन तक जीवित रहे मानो उनकी शय्या बाणों की बनी हुई थी और इसीलिये अर्जुन ने बाणों का सिरहाना उनके लिये बनाया जिस से वह अति प्रसन्न हुए।

नोट—भीष्म और अर्जुन के युद्ध के सम्बन्ध में एक और कहावत है जो साधारण दृष्टि में पीछे की मिलावट प्रतीत होती है। कहावत इस प्रकार है कि जब ९ दिन तक लड़ाई होती रही और भीष्म को कुछ हानि न पहुँची तब पांडव अधिक सोच में हुए तब कृष्ण ने युधिष्ठिर को यह सलाह दी कि भीष्म के पास चलो और उसी से पूछो कि तुमको किस तरह से मारा जाय। जब युधिष्ठिर ने भीष्म के समीप जाकर यह प्रश्न किया तो भीष्म ने यह उत्तर दिया कि तुम्हारी सेना में जो युवराज शिखंडी राजा पंचाल का पुत्र है उसका स्वरूप स्त्रियों के सदृश है यदि वह मेरे ऊपर आक्रमण करे तो वह निश्चित मुझे मारने में समर्थ होगा परन्तु मैं उस से स्वयं युद्ध नहीं करूंगा।

भीष्म के पास से लौटने पर पांडवों ने यह निश्चय किया कि दूसरे दिन शिखंडी को ही युद्ध का सेनापति बनाकर धावा किया जावे। जब दूसरा दिन हुआ तो अर्जुन ने शिखंडी को ही अगुआ कर के धावा कर दिया भीष्म भी इस युद्ध में अर्जुन को परस्पर का उत्तर देता रहा और दुर्योधन

की सेना के अन्य शूर वीर लोग भी शिखंडी पर लक्ष्यकर के निशाने मारते रहे।

बहुत से जांच करने वाले व्यक्ति तो इस बात को पीछे की मिलावट ही मानते हैं क्यों कि यह समस्त वृत्तान्त ही चित्त को पूरा विश्वास नहीं दिलाता, प्रथम तो भीष्म जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति से कब यह सम्भव था कि वह अपने वैरी को अपनी मृत्यु का उपाय बतला कर दुर्योधन से विश्वास घात करता, भीष्म तो दुर्योधन के पक्ष में युद्ध की प्रतिज्ञा कर चुका था क्यों कि वह राजा धृतराष्ट्र का सभासद था और विपक्ष में उनके वंशज विरोधी महाराज पंचाल थे। अन्तःकरण से तो वह युधिष्ठिर के ही पक्ष पर था और जानता था कि दुर्योधन और धृतराष्ट्र अनभिज्ञता पर हैं परन्तु अपनी मानसिक इच्छाओं द्वारा वह उन कर्तव्यों को समूल नष्ट नहीं कर सक्ता था जो कि कौरव राज्य के प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित सभासद होने के सम्बन्ध से उस पर थे और इधर युधिष्ठिर को उसने राजा मान लिया था, न तो वह अपने राजा के विपक्ष शस्त्र ही व्यवहार करने में समर्थ था और न उसके पथ युद्ध से विमुख हो सकता था। ऐसे अधर्म से स्वयं पांडवों को अपनी ही मृत्यु का उपाय बतलाता। इसके अतिरिक्त यह प्रगट है कि शिखण्डीके रण में सामने आने पर भी भीष्म उस समय तक लड़ता रहा जब तक कि अर्जुन ने अपने बाणों की बौछाड़ से प्रथम उसके सारथी को मार न डाला। फिर उसके धनुष को गिरा दिया, भीष्म जो तीर निकालते थे उनको भी अर्जुन काट डालता था। अशक्त होने पर भीष्म अपनी तलवार व ढाल लेकर रथसे उतरनेलगा कदाचित् इस विचार से कि अब तलवार की लड़ाई लड़े। परन्तु अर्जुन ने तीरों

की लगातार वर्षासे उसकी ढाल व तलवारभी हाथसे गिरादी यहाँतक कि वृद्ध भीष्म नवयुवक अर्जुन के तीरों से अशक्त हो कर भूमि पर गिर पड़ा इसके गिरते ही महाभारत की लड़ाई का प्रथम सीन (दृश्य) समाप्त होगया। तीरों की शय्या पर पड़े हुए भीष्म ने बहुत कुछ दुर्योधन को मेल करनेका उपदेश किया परन्तु दुर्योधन कब मानता था उसको अपनी सेना के समूह पर इतना भरोसा था कि भीष्म के पराजय होने पर उसको अपनी अन्तिम जय की पूरी आशा थी।

उन्तीसवां अध्याय।

महाभारत के युद्ध का दूसरा दृश्य (सीन) द्रोण का सेनापत्य।

भीष्म विजय के अगलेदिन दुर्योधन ने अपने सेना का सेनापत्य महाराज द्रोण को सौंपा। यद्यपि द्रोण जाति का ब्राह्मण था तथापि युद्धविद्या और शस्त्रविद्या में अपने समय का आचार्य तथा इस विद्या में बड़ा निपुण था। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, दुर्योधन इत्यादि सब इस के शिष्य थे जिन में अर्जुन सब से इस विद्या में योग्य था। कुछ लड़ाई की प्रणाली ऐसी थी जो उसने केवल अर्जुन को ही सिखाई थी, और किसी को नहीं आती थी।

द्रोण के सेनापत्य में युद्ध बड़े वेग से आरम्भ हुआ और अधिक मार काट होती रही एक दिन अर्जुन लड़ाई का

मैदान छोड़ कर एक किनारे पर कौरव सेना के उस भाग से युद्ध कर रहा था जो द्रोण ने दुर्योधन के आधिपत्य में भेजी थी। पीछे से द्रोण ने पांडवों पर ऐसे दाव पेच खेले कि वे घबड़ा गये। उसने पांडवों के एक बड़े समूह को ऐसे व्यूह में घेर लिया कि उनके लिये बचना कठिन हो गया। क्योंकि पांडवों की सेना में अर्जुन के अतिरिक्त और कोई इस व्यूह की लड़ाई को नहीं जानता था। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु जो केवल १६ वर्ष का युवक था किञ्चित् इस व्यूह विद्या को जानता था। सुतरां वह वीरता से रणक्षेत्र में आया और अपने भुजा के करतब दिखलाने लगा। इस १६ वर्ष के युवक ने कौरव सेनापतियों व सरदारों को इतना कष्ट दिया कि उन्होंने इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न सोचा कि सात चुने हुये महारथी (जिसमें द्रोण स्वयं भी सम्मिलित था) एकत्र होकर उस पर आक्रमण करने लगे। अभिमन्यु अभी बालक ही था उसमें इतनी सामर्थ्य कहाँ थी कि इन सात योधाओं के साथ सफलता से सामना करता। बेचारा युद्ध करता हुआ रण में गिर गया और गिरते ही किसी ने उसका सिर काट लिया। अभिमन्यु का वध होना था कि पांडवों के दल में रोना पीटना पड़गया। अभिमन्यु कृष्ण की बहिन सुभद्रा का पुत्र था और सारे पांडवों को उस से अधिक प्रेम था। सारी सेना उसकी सुन्दरता, वीरता, युद्ध कौशलता तथा बाण विद्या पर मोहित थी। सायंकाल जब लड़ाई बंद हुई कृष्ण और अर्जुन भी लड़ते लड़ते कैम्प में आये तो सारी सेनाको रोते पीटते पाया। अर्जुन की आँखों के सामने तो अन्धकार छागया। युधिष्ठिर अलग बेसुध थे। अंत में कृष्ण ने अपनी चतुर नीति से फिर सब को धैर्य दिया और अर्जुन को सम-

भाने लगे कि अभिमन्यु तो युद्ध करता हुआ, वीरों स्वर्गधाम का सिधारा तुम क्षत्री पुत्र की मृत्यु पर रुदन करके क्यों अपना परलोक बिगाड़ते हो। क्षत्रिया के लिये ऐसी मृत्यु सौभाग्य है। सुतरां इसी प्रकार उसने अपनी बहिन सुभद्रा और दूसरे सैनिकों को भी संतोष देकर शांत किया।

अर्जुन को यह बतलाया गया कि सिंध के राजा जयद्रथ ने अभिमन्यु का सिर काटा है अर्जुन ने उसी समय यह प्रतिज्ञा ठाना कि कल सायंकाल से पहले मैं जयद्रथ को मार कर अपने पुत्र का बदला लूँगा, नहीं तो स्वयं जीते जी आग में जल कर भस्म होजाऊंगा, कृष्ण को अर्जुन की इस प्रतिज्ञा से बड़ी चिन्ता हुई उसने सोचा कि अर्जुन की इस प्रतिज्ञा की खबर अभी दुर्योधन को पहुंच जायगी और वह ऐसा प्रबंध करेगा कि जयद्रथ अर्जुन के सामने हो न आवे और दूर हो दूर रहे, उसके लिये यह कठिन भी न होगा कि कल सायंकाल तक किसी न किसी प्रकार जयद्रथ को बचा सके। यदि कल सायं काल तक जयद्रथ न मारा गया तो बस अर्जुन का अंत है सुतरां उसने अपने रथवान् को आज्ञा दी कि "कल मेरा रथ पूर्ण रीति से सुसज्जित रहे।" क्योंकि अर्जुन को जो बचाने के लिये यदि आवश्यकता हुई तो मैं स्वयं ऐसी रीति व्यवहार में लाऊंगा जिस से जयद्रथ मारा जावे और अर्जुन बचा रहे।

दूसरे दिन जब युद्ध आरम्भ हुआ तो दुर्योधन ने अपनी सेना को इस भाँति से जमाया जिससे जयद्रथ परले किनारे पर खड़ा किया गया और कुल सामिग्री उसके बचाव के लिए की गई क्यों कि कौरवों के लिए जयद्रथ का सायंकाल तक जीवित रहना जय प्राप्त करने के समान था। पांडवों की सेना

में से यदि अर्जुन निकल जाता तो फिर दुर्योधन के जीतने में क्या शंका थी अगले दिन कृष्ण ने रथधानी के ऐसे गुण दिखाये कि युद्ध के बीचों बीच व्यूह को चीर कर इस रीति से अर्जुन को जयद्रथ के सामने लाकर खड़ा किया कि जयद्रथ के लिये लड़ने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा। ऐसा क्यों न होता जब कि अर्जुन जैसा महाबली योधा और कृष्ण जैसा सारथी हो, कृष्ण तो सारथी विद्या का हुनर दिखा सकता था परन्तु उस का हुनर किस काम आता यदि अर्जुन उपस्थित वीरों से अपने आप को न बचाता क्योंकि सारे रास्ते भयङ्कर युद्ध होता रहा। कौरव सेना के सब बड़े बड़े योधा बारी २ से लड़ते कभी भिन्नभिन्न और कभी कई एकत्र होकर अर्जुन से युद्ध करते रहे परन्तु वीर अर्जुन सब से युद्ध करता हुआ किसी को मारता, किसी से बचता, किसी को अपनी सेना के दूसरे योधाओं को सौंपता अपनी जान को हथेली पर लिये बाणवर्षा, निशानबाज़ी और युद्ध के कर्तब दिखलाता हुआ जयद्रथ के सामने जा पहुंचा और उसको युद्ध करने पर बाध्य किया और युद्ध में उसका सिर काट कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

इस प्रकार कई दिन लड़ाई होती रही और दोनों दल से प्रसिद्ध २ क्षत्री जान बाज़ी के नाटक दिखाकर के मृत्युके मुँह में जाते रहे। द्रोण कई दिन तक बड़ी वीरता तथा होशियारी से पांडवसेना का नाश करता रहा परन्तु अंत में वह इतना घायल होगया कि शस्त्र उसके हाथ से गिरगये और धृष्टद्युम्न ने उसका सिर काट डाला। द्रोण की मृत्यु से महाभारत के युद्ध का दूसरा दृश्य समाप्त हुआ। दूसरा दृश्य क्या समाप्त हुआ मानो आधा भारत युद्ध का समाप्त हुआ।

नोट—द्रोण की मृत्यु के सम्बन्ध में एक कहावत है जो वास्तव में पीछे की मिलाई हुई मालूम होती है । वह इस प्रकार है कि द्रोण ने युद्ध में इस प्रकार के शस्त्र प्रयोग किये जो दूसरी ओर के लोग न जानते थे और इसलिये वे इन शस्त्रों की मार से बचने की प्रणाली से अनभिज्ञ थे । जिसका परिणाम यह हुआ कि द्रोण ने पांडवसेना को अत्यन्त हानि पहुंचाई । इस हानि को देख कर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को यह सलाह दी कि द्रोण को किसी न किसी प्रकार मारना चाहिये चाहे इस अभिलाषा के लिये कोई झूठी अधर्म की चाल क्यों न चलनी पड़े और यह सम्मति दी कि यदि द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा मारा जाय तो वह लड़ना छोड़ देगा । इसलिये मिथ्या ही उसको यह खबर पहुंचा दी जाय कि अश्वत्थामा मर गया ।

अर्जुन और युधिष्ठिर ने इस सलाह को अस्वीकार किया परन्तु भीम और अन्य दरबारियों को यह चाल बहुत पसन्द आई और उन्हों ने युधिष्ठिर पर दबाव डाला कि स्वयम् आप अपने मुख से कहें क्योंकि आप के अतिरिक्त और किसी के कथन का द्रोण विश्वास न करेंगे ।

युधिष्ठिर ने बहुत कुछ संकोच किया परन्तु भीम इत्यादि ने उस पर बड़ा जोर डाला । सुतरां यह निश्चित करके अश्वत्थामा नाम के हाथी को मारा गया और द्रोण पर यह प्रगट किया गया कि तुम्हारा पुत्र अश्वत्थामा मर गया परन्तु उसने किसी के कहने पर विश्वास नहीं किया और युधिष्ठिर से पूछा । युधिष्ठिर ने कहा कि " हां, अश्वत्थामा मारागया " परन्तु धीरे से यह भी कह दिया–"हाथी" द्रोण ने " हाथी " तो सुना नहीं और अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर

बड़ा दुखित हुआ यद्यपि उसके बाद बराबर लड़ता रहा परन्तु दिल टूट जाने से दुःखित हो कर शस्त्र डाल दिये। उसके शस्त्र डालते ही विपक्षियों ने उसका सिर काट डाला।

अनेक विद्वानों की सम्मति है कि यह कहानी पीछे की मिलावट है। द्रोण ब्राह्मण था धृष्टद्युम्न क्षत्रिय था, क्षत्रिय के लिये ब्राह्मण का मारना उचित नहीं था। इस कारण पांचाल दर्बार के किसी कवि ने अपने राजपुत्र से ब्राह्मणहत्या का पाप दूर करने के लिये इस युद्ध का सारा बोझ श्रीकृष्ण के सिर मढ़ दिया है। श्रीकृष्ण को तो स्वयम् परमेश्वर माना ही जाता है। परमेश्वर सब कुछ कर सकता है और उसके लिये सब कुछ उचित है इस कारण उन के विचार में श्रीकृष्ण पर कुछ दोष नहीं आ सकता। सम्भवतः इस कहावत का एक और अभिप्राय भी है- यानी लड़ाई में धोखा, दगाबाजी, झूठ का व्यवहार उचित ठहराया जाता है तो भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस समय यह कहानी बढ़ाई गई उस समय भी आर्यपुरुषों में सत्यता का इतना मान था और सर्व साधारण का झूठ व धोखे से इतनी घृणा थी कि इस कहानी के बनाने वाले महाशय को यह भी बढ़ाना पड़ा कि जिस समय युधिष्ठिर ने यह असत्य कहा इससे उसका रथ जो सत्यता के कारण पृथिवीसे कुछ ऊँचे पर चलाकरता था वह पृथिवी के संग लग गया। युधिष्ठिर के लिये यह प्रसिद्ध है कि इससे पहले उसने कभी झूठ नहीं बोला था और उसकी सत्यता के प्रताप से ऐसा था कि जिस रथ पर बैठता था वह रथ पृथ्वी से कई हाथ ऊपर हवा में चला करता था परन्तु जब वह झूठ बोला तुरन्त उसका रथ पृथ्वी पर गिर पड़ा और अन्य साधारण मनुष्यों में तथा उसमें

कुछ भेद न रहा। ऊपर लिखे लेख से यह प्रगट है कि द्रोण अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनने पर युद्ध करता रहा। बस हम उन ग्रन्थ कर्ताओं से सहमत हैं जिन की सम्मति में यह कहानी पीछे की मिलावट और घटना के विरुद्ध प्रतीत होती है। द्रोण के देहान्त के बाद का भाग सब का सब गप मालूम होता है। कवि को अपनी बात निभाने के लिये पांडव कैम्प में झगड़ा डलवाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अर्जुन इत्यादि को इस धोखे बाज़ी पर युधिष्ठिर को धिक्कारना, और भीम व धृष्टद्युम्न उसकी सहायता करते हैं इत्यादि इत्यादि:—

तीसवां अध्याय।

महाभारत के युद्ध का तीसरा दृश्य कर्ण और अर्जुन का सामना।

युद्ध तो भीष्म और द्रोण के मरने से ही समाप्त होगया था परन्तु तौभी दुर्योधन को कर्ण की बाणविद्या और उसकी शस्त्रविद्या पर इतना भरोसा था कि अभीतक सफलता की टिमटिमाती रोशनी कभी २ उसके आंखोंके सामने झलक दिखा जाती थी। कर्ण ने यह शपथ खाई हुई थी कि वह अर्जुन को मारेगा वा स्वयम् युद्ध में उस के हाथ से मारा जायगा।

द्रोण के मरने पर दुर्योधन ने कर्ण को अपनी सेना का सेनापति बनाया। कर्ण ने भी युद्ध में इस प्रकार हाथ दि-

खलाये कि देवता भी उसका सिक्का मान गए। कई अवसरों पर तो उसने युधिष्ठिर को युद्ध में नीचा दिखाया और पांडव सेना को बहुत हानि पहुंचाई। श्रीकृष्ण ने यह चाल चली कि प्रथम तो अर्जुन को इसके सामने युद्ध में आने से रोकता रहा। जब कर्ण पांडवसेना के विख्यात योद्धाओं से लड़ता लड़ता थक गया और पांडव कैम्प में और कोई अन्य वीर उस के सामने लड़ने वाला न रहा तो कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण के सामने किया। कर्ण और अर्जुन का युद्ध क्या था मानो भूचाल था। दोनों वीरों ने तीरों की बौछाड़ से युद्धस्थल धुंआधार कर दिया और शस्त्रविद्या के वह हुनर दिखलाये कि पांच हजार वर्ष के बीतने पर भी अभी तक अर्जुन और कर्ण का नाम सर्वसाधारण के सामने है। इस युद्ध में कृष्ण पर भी बाणों और अन्य शस्त्रों की बहुत मार रही परन्तु वह अपने समय का एक ही पुरुष था, खूब होशयारी से अपने आपको बचाता रहा और अर्जुन को लड़ाई के लिये उत्तम से उत्तम स्थान पर लेजाकर खड़ा करता रहा। एक समय कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया। कर्ण स्वयं पहिये को निकालने के लिये रथ से नीचे उतरा और उसने युद्ध धर्म के नाम पर अर्जुन से अपील की कि जब तक मैं फिर रथ पर न बैठ जाऊं, युद्ध रुका रहे।

उस समय कृष्ण ने यद्यपि संकेत से अर्जुन को रोक दिया परन्तु बड़े जोर से कर्ण को इस बात पर धिक्कारा कि अब अपनी जान के लिये तो धर्म्म याद आ गया, उस दिन धर्म्म कहां भूल गया था जब तेरी उपस्थिति में द्रौपदी को राजसभा में बेइज्जत किया गया था, जब तुम सात आदमियों ने इकट्ठे होकर बेचारे अभिमन्यु को मारा था, जब तेरी सम्मति

से दुर्योधन ने पांडवों के महल को आग लगादी थी इत्यादि इत्यादि। कर्ण इस धिक्कार का तो क्या जवाब देता। गाड़ी का पहिया निकाल कर फिर लड़ने लगा और अंत में अर्जुन के हाथ से मारा गया। कर्ण के मरतेही कौरव सेनाने भागना आरम्भ किया और दुर्योधन के कैम्प में दुःख और शोक होने लगा। हा! लालच और क्रोध ने दुर्योधन की आंखों पर ऐसा परदा डाल दिया कि इतनी मार काट पर भी उसका चित्त नरम न हुआ और अबतक उस के दिल से राज्य की अभिलाषा न गई।

इकतीसवां अध्याय।

अन्तिम दृश्य व समाप्ति

सरे दिन मद्रदेश के राजा शल्य सेनापति बनकर युद्ध में आये परन्तु थोड़ी देर में ही खेत रहे राजा के मरते ही सेना तितिर बितर होगई।

दुर्योधन भाग गया और एक बन में जाकर छिप रहा, परन्तु मृत्यु कब अवसर देती थी। पांडव पीछा करते हुए बन में पहुंचे और उन्होंने दुर्योधन के स्थान का पता लगा लिया। युधिष्ठिर ने ज़ोर से पुकार कर दुर्योधन को कहा, कि हे दुर्योधन! स्त्रियों की तरह छिप कर अपने वंश पर क्यों धब्बा लगाता है? बाहर आ, युद्ध कर, यदि तू हम में से एक को भी लड़ाई में मार डाले तो हम सब राज पाट तुझे सौंप करके जंगल को चले जावेंगे।

युधिष्ठिर की इन बातों पर दुर्योधन के चित्त में फिर आशा की चिंगारी चमकी और उस ने कहा कि "मैं राज्य* के वास्ते तो अब लड़ना नहीं चाहता परन्तु बदला लेने की अग्नी मेरे हृदय में भड़क रही है। मैं अपने साथियों की मृत्यु का बदला लेने के लिये तुम से लड़ने को उद्यत हूं। राज तो मैंने तुझ को दिया, जा अब इस वीरान जंगल पर तू राज्य कर ऐसा राज्य दुर्योधन के काम का नहीं" युधिष्ठिर ने फिर कहा कि हे दुर्योधन! दान की तरह तो तुझ से राज्य लेना स्वीकार नहीं है। अब मैदान में आकर युद्ध कर यदि तू हम में से किसी को मारले तो राज तेरा हुआ, और हम सब भाई बन को चले जावेंगे"। दुर्योधन ने कहा, अच्छा! मुझे युद्ध स्वीकार है परन्तु मैं लकड़ी से युद्ध करूंगा लकड़ी से युद्ध करने की जिस में समर्थ हो मेरे सामने आ जावे। हे युधिष्ठिर तेरी और अर्जुन ऐसी छोटी छोटी मुर्दा जानों से क्या लड़ूंगा बेशक भीम मेरी टक्कर का है उस से लड़ता हूं सुतराम् भीम और दुर्योधन मस्त हाथियों की तरह एक दूसरे के साथ टकराने लगे। अन्तमें भीम ने अवसर पाते ही दुर्योधनकी जांघ पर ऐसी लकड़ी मारी कि वह चकनाचूर होकर गिर पड़ा उस के गिरते ही भीमसेन ने उस सिर पर के लात मारी। युधिष्ठिर और कृष्ण ने उसको ऐसा करने से रोका क्योंकि आर्य पुरुषों में परास्त हुए वैरी का अपमान करना बहुत बुरा समझा जाता है दुर्योधन की इस हार से युद्ध महाभारत का अन्त हो गया। पांडव जीत करके अपने डेरों में वापस आये और अपनी जीत की खुशी में नाचरंग करने लगे।

---

* यदि यह विचार लड़ाई से पहले दुर्योधन के चित्त में पैदा होता।

यद्यपि उन प्राणियों की हानि से जो इस युद्ध में हुई थीं यह नाच रंग बहुत फीका था और पुत्रों, भाइयों, संबंधियों और मित्रों की लाशें रणभूमि में पड़ीहुई नाच रंग के उत्सवों को दुःखमय बना रही थीं परन्तु तौ भी यह जीत थी जिस से पांडव प्रसन्न थे कि युद्ध की समाप्ति हुई, शत्रु मारे गये, सत्य की जय हुई, दुर्योधन और उसके भाइयों का बड़ी बड़ाहट व अत्याचार उन के सामने आए और द्रौपदी की बेहुज्जती का बदला भी खूब निकला। सुतरां इस आनन्द में पाचों पांडव उस दिन कैम्प से बाहर रहे और रात को भी कैम्प में नहीं आए। इधर तो विजय के आनन्द में खुले जंगल की वायु का आनन्द ले रहे थे और उधर मृत्यु देवता अपनी घात में लगा हुआ था।

जब पांडव दुर्योधन को रणभूमि में छोड़ कर वापस चले गए तो उसके सेना के तीन बचे हुए जनरल यानी अश्वत्थामा (द्रोणपुत्र) कृपाचार्य और कृतवर्मा उसके पास आए। उसको इस बुरी अवस्था में देख कर रोने लगे। या तो एक समय वह था कि दुर्योधन आर्य्यावर्त के सबसे बड़े राज्य का मालिक था, लाखों फौज का अफ़सर था, दिग्गज और सुन्दर महलों में निवास रखता था, उत्तम से उत्तम और कोमल से कोमल सेजों पर सोता था। सैकड़ों और सहस्रों मनुष्य आज्ञा के पालन के लिये हर समय प्रस्तुत रहते थे, आनन्द भोग में निमग्न था और राज्य और सम्पति के नशेमें ऐसा चूर था, कि बुरे व भले, न्याय अन्याय, धर्म अधर्म में विचार न कर सकता था, या आज वह दिन था कि राजपुत्र दुर्योधन धूलि में पड़ा सिसकता है। इधर उधर चारों ओर लाशों के ढेर थे। जो पुकार पुकार उसकी नालायकी और

उसके घमंड और अन्याय पर धिक्कारते थे। अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि उसने एक बड़े समूह की सेना के साथ बड़े धूमधाम व प्रचंड उत्साह से आन कर थानेश्वर के मैदान में डेरा डाला था और उसको कभी स्वप्न में भी यह ध्यान न आया था कि इन अगणित मनुष्योंके इकट्ठे होने का शायद यही फल हो जो आज उसके नेत्रों के सामने फिर रहा है। भाई, मित्र, सम्बन्धी सब जो थे आज चारों ओर खूनी वस्त्र पहने हुए मिट्टी में पड़े हुए थे और पक्षी उड़ उड़कर आते और उन के शरीर के मांस को नोच २ करले जाते थे, इन सब का प्रिय सर्दार दुर्योधन स्वयं भी शत्रु के हाथ से परास्त होकर जीने से निराश साथियों के साथ प्रेम का दम भरता हुआ उस भूमि में पड़ा था। परमात्मा ने उसको इसलिये अब तक जीता रक्खा था कि वह अपनी मूर्खताका परिणाम अच्छी तरह से देखकर, समझकर और अनुभव करके अपना प्राण छोड़े। हा! दुःख कैसा भयानक और शिक्षाप्रद दृश्य था कौरव वंशका अधिपति इन्द्रप्रस्थ के राजा का पुत्र और उसकी यह अवस्था, ऐसे अवसर पर तो शत्रु भी रो देता है। अश्वत्थामा और कृपाचार्य इत्यादि को तो रोना ही था रोने धोने के पश्चात् अश्वत्थामा ने दुर्योधन पर प्रगट किया कि बदला लेने की आग उसके हृदय में वेग से जल रही है और उसने दुर्योधन से बदला लेने की आज्ञा मांगी सुतरां दुर्योधन ने कृपाचार्य इत्यादि की ओर लक्ष्य करके उस समय अश्वत्थामा को अपनी सेना का सेनाध्यक्ष निश्चित किया और उसको युद्ध जारी रखने की आज्ञा दी।

कौरववंश के अभाग्यताकी समाप्ति नहीं हुई थी। द्रोण के वीरपुत्र के चित्त में बदले की आग जल रही थी उसने यह

ठान लिया था कि चाहे धर्म से या अधर्म से पिता का बदला लेकर मरूंगा।

कौरवसेना के यह तीनों बचे हुए वीर आपस में विचार करने लगे कि किस प्रकार से इस अभिलाषा को पूरा किया जावे। कृपाचार्य्य ने तो धर्म्म की लड़ाई लड़ने की सलाहदी परन्तु अश्वत्थामा ने रात्रिको धोखे से युद्ध करने का विचार प्रगट किया। कितनाही कृपाचार्य्य ने समझाया कि यह कार्य्य महापाप का है ऐसे महापाप के काम से तेरी आत्मा घोर नरक में पड़ेगी जिससे छुटकारा कठिन होगा। जीवन की अन्त अवस्था में इस प्रकार के भीरुपनका कार्य्य वीरता तथा प्रतिष्ठा पर बट्टा लगावेगा। सारी आयु की कीर्ति, यश प्रसिद्धि पर पानी फिर जायगा। ब्राह्मण सन्तान तथा शस्त्र विद्या में निपुण होकर तेरे लिए यह योग्य है कि तू इस प्रकार के पाप से अपने पवित्र जीवन पर धब्बा न लगावे सुतराम् कृपाचार्य ने अपनी योग्यता से अश्वत्थामा को इस अधर्म्म की कार्रवाई से रुकने का उपदेश किया परन्तु अश्वत्थामा पर कुछ भी असर नहीं हुआ। ब्रह्मकोप शान्त नहीं हुआ। कृपाचार्य्य की धार्म्मिक वक्तृता की हर एक बात का अश्वत्थामा के चित्त पर ऐसा ही असर होता था जैसे कि जलती हुई आग में घी की आहुति देने से होता है। क्रोध में अपने आपेसे बाहर हुआ अश्वत्थामा बदले की आग में भस्म होता हुआ चुपके से रात को पांडव कैम्प में घुस गया। सब से पहले तो सीधा पंचाल के राजा धृष्टद्युम्न के डेरे की ओर बढ़ा जिसने उसके बाप को मारा था उसके रक्त में हाथ रंग कर फिर छोटे बड़े पर हाथ साफ करने लगा यहांतक कि जो सामने आया चाहे सिपाही या राज-

पुत्र वृद्ध या युवक वह उस भयङ्कर रात्रि में द्रोणपुत्र के हाथ सीधा मृत्यु के मुंह में गया। अश्वत्थामा ने खूब दिल खोल कर क़तलेआम किया और जब सबके सब पांडव राज पुत्रों को मार चुका तो चुपके से खेमे के बाहर होगया और सीधा उस स्थान पर गया जहां दुर्योधन पड़ा था। दुर्योधन अभीतक सिसकता था कि अश्वत्थामा पहुंच गया। प्रथम तो दुर्योधन की अवस्था देख कर दुःख के सागर में डूब गया और उसके पास बैठकर खून के आंसू बहाये फिर अन्त में रोते रोते दुर्योधन को उस बदले का हाल सुनाया जिसे वह अभी पूरा करके आया था। दुर्योधन ने जब सुना कि पांडवों के पुत्र और पांचाल के सब राजपुत्र मारे गये तो संतोष भरी सांस ली और खूब किया, खूब किया, कहते हुए प्राण छोड़ दिये। महाभारत के युद्ध का अन्तिम दृश्य होचुका। थानेश्वर के मैदान में आर्यों की इस घर की लड़ाई ने आर्यों की सभ्यता उनका मान उनकी बुजुर्गी और उनकी बड़ाई को धूल में मिला दिया। युद्ध के आरम्भ होने से २० दिन के अन्दर अन्दर भूमि के बड़े बड़े योधा, बहादुर और वीर सिपाही, युद्धविद्या में निपुण धीरता और युद्ध की योग्यता को प्रगट करते हुए अपने अपने पंचतत्व के शरीर को तत्वों में मिलाते हुए स्वर्ग में चले गये और संसार को पता भी न लगा कि वे कहाँ गए और क्या हुए।

—— ० ——

बत्तीसवां अध्याय।

युधिष्ठिर की राजगद्दी।

युद्ध के समाप्त होते ही पांडवों ने कृष्ण को हस्तिनापुर विदा किया जिसमें वह वहां जाकर युद्ध की पूरी अवस्था से धृतराष्ट्र को सूचना देदें क्योंकि यह कठिन कार्य्य किसी साधारण पुरुष के करने का न था। कृष्ण हस्तिनापुर पहुंचे। धृतराष्ट्र और उसकी धर्मपत्नी गांधारी दुःख में रोते पीटते थे। कृष्ण ने इधर उधर की बातें मिलाकर उनको ठंडा किया और संतोष दिलाया। सुतराम् गांधारी ने अपने मृत पुत्रों के दर्शन की अभिलाषा प्रगट की और राजा रानियों के सहित रणभूमि के तरफ चले। वहां पहुंच कर जो दृश्य रानियों महारानियों ने देखा वह असह्य था। रानियां देखती थीं और रोती थीं। तमाम प्यारी सूरतें रक्त में लिपटी हुई एक दूसरे के ऊपर पड़ी हुई थीं। बहुतेरों को तो जानवरों ने पहचानने के योग्य ही नहीं रक्खा था परन्तु बहुतेरे अभी पहचाने जा सकते थे। अपने अपने सम्बन्धियों को देखकर स्त्रियां रोती थीं। गांधारी अपने बेटों को देखकर रोती थी और कुंती अपने पोतों को रोती थी सुतराम् सारे वंश में कोई स्त्री ऐसी नहीं थी जिसके लिये इस युद्ध में सिरपीटने और चिल्लाने के लिये सामग्री न थी। गांधारी के निसबत यह प्रसिद्ध था कि वह बड़ी समझवाली बुद्धिमती और धर्मात्मा स्त्री थी। इसके सम्बन्ध में जो कहावतें महाभारत में हैं उनमें इसकी धैर्य्यता बुद्धिमता और गम्भीरता के पूरे प्रमाण मिलते हैं परन्तु कौन माता है जो अपने

समस्त वंश को इस तरह अपने नेत्रों के सामने खून में लपटा हुआ देख कर अपने धैर्य्य को स्थिर रख सके। इसलिये आश्चर्य इसमें क्या हो सकता है कि कुरुक्षेत्र की भूमि में अपने पुत्रों के मृतक शरीरों को देखकर उसने कृष्ण को शाप दिया हो और उसको इस बरबादी और खूरेज़ी का ज़िम्मेदार ठहराया हो। अन्त में कृष्ण के द्वारा चाचा और भतीजों में मिलाप हो गया। भतीजों ने बड़ी नम्रता से चाचा और चाची के चरणों पर सिर रख दिये युधिष्ठिर पर तो इतना दुख छाया हुआ था कि उसने राज करने से इन्कार कर दिया। कितना ही उसके भाई समझाते थे परन्तु वह नहीं मानता था। यहांतक कि स्वयं धृतराष्ट्र और गान्धारी ने भी युधिष्ठिर को बहुत कुछ समझाया परन्तु उसने अपने मन्तव्य पर दृढ़ता प्रगट की और यही कहते थे कि तमाम भाई बंधुओं और बड़ों के रक्त में हाथ रंग कर अब क्या राज करने में मुझे सुख हो सकता है। मेरे लिये अब यही शेष है कि तप करके अपने पापों का प्रायश्चित करूं और बाक़ी का जीवन परमात्मा की याद में अर्पण करके अपनी आत्मा को दुख व क्लेश से बचाऊँ अन्त में जब सब कह चुके और कुछ असर न हुआ तो फिर कृष्ण ने कुछ व्यंग सुनाये। कभी नर्मी और कभी गर्मी से काम लेते हुए उसने अंत में क्षात्र धर्म के नाम पर युधिष्ठिर से अपील की और उस को वश में कर लिया। कृष्ण का सारा जीवन यह बताता है कि यह उसका सब से ज़बरदस्त और उपयुक्त हथियार था जो कभी चूकता न था। अपने समय की फ़िलासफ़ी और वर्ण धर्म के विषय में वह ऐसे निपुण थे कि उनकी व्यवस्था कभी ख़ाली न जाती थी। वैराग्य की फ़िलासफ़ी को वह ऐसा

दिखलाते थे कि उनके सामने झूँठे त्याग के विचार भागते ही दिखाई देते थे। वैदिक धर्म के पृथक २ भावों को वह ऐसा मिलाते थे कि एक अखण्ड प्रमाणित दृश्य तैयार कर देते थे प्राचीनशास्त्रों, ऋषियों व मुनियों की मर्यादा में ऐसे निपुण थे कि जहां उन्होंने प्रमाण देने आरम्भ किये वहां सिवाय मानने के और कोई चारा बाक़ी न रहता था। सुतराम् इस अवसर पर भी कृष्ण का उपदेश काम कर गया और युधिष्ठिर ने राजपाट छोड़कर त्यागी बनने के विचार को चित्त से दूर कर दिया। अन्त में रोते धोते हुए सम्बन्धियों ने भाई भतीजों निकटवर्ती प्यारों के मृतक संस्कार किये और फिर हस्तिनापुर को रवाना हुए। हस्तिनापुर में पहुंच कर युधिष्ठिरको गद्दी पर बैठायागया युधिष्ठिर गद्दी पर तो बैठ गया परन्तु उदास रहने लगा। फिर कृष्ण ने उसको अश्वमेध यज्ञ करने के लिये तइयार किया और अश्वमेध यज्ञ की तय्यारियों में पांडवों को लगा कर स्वयं मातृभूमि द्वारिका को चले गये।

नोट—युधिष्ठिर के राज सिंहासन पर बैठने के बाद और कृष्ण के द्वारिका जाने से पहिले महाभारत में एक और घटना का उल्लेख है जिसकी सत्यता में सन्देह है। यह कथा है कि जब युधिष्ठिर राजगद्दी पर बैठे तो भीष्म पितामह भी जीवित थे। यह मालूम नहीं कि वे कुरुक्षेत्र से दिल्ली आगये थे या कि वहां ही किसी स्थान पर पड़े हुए थे परन्तु कथा इस प्रकार है कि युधिष्ठिर की राजगद्दी के पश्चात् कृष्ण युधिष्ठिर और सारे पांडवों को महाराज भीष्म के पास लेगये और इनकी प्रार्थना पर महाराज भीष्म ने युधिष्ठिर को वह उपदेश किया जो महाभारत के शान्ति और

अनुशासन पर्व में लिखा है । यह उपदेश इतना लम्बा और ऊँचीदा है और ऐसे ऐसे कठिन विषय इसमें भरे हुए हैं कि इस बात के मानने में सङ्कोच होता है कि मरने के समय इस प्रकार के उपदेश महात्मा भीष्म ने दिये हों तो भी किसी ऐसे महान् पुरुष से मृत्यु के समय उपदेश लेना ऐसी साधारण बात है कि इस घटना का सच्चा होना असम्भव नहीं यदि ऐसा हुआ भी हो तो भी महाराज भीष्म के असल उपदेश पर बाद में इतनी टिप्पणियां चढ़ीं और इतनी मिलावट हुई कि अब यह निर्णय करना असम्भव है कि इसमें से कितना उपदेश महाराज भीष्म का है और कितना पीछे के मिलाने वालों के विचार का अंश है।

तैंतीसवां अध्याय।

महाराज श्रीकृष्ण के जीवन का अन्तिम भाग।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् एक बार महाराज कृष्ण फिर हस्तिनापुर में आए अर्थात् अश्वमेध के अवसर पर जिसकी तैयारियां महाभारत की लड़ाई के समाप्त होते ही आरम्भ हो गई थीं। इस अवसर पर इनका आना एक ऐसी घटना के साथ सम्बन्ध रखता है जिसकी आश्चर्यजनक कथा में से सत्य का निकालना कठिन है। कथा इस प्रकार है कि जिस दिन महाराज कृष्ण हस्तिनापुर में आये उस दिन रानी उत्तरा के एक लड़का उत्पन्न हुआ जो मरा हुआ था, उत्तरा महाराज विराट की लड़की और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की ब्याहता स्त्री थी अभिमन्यु की मृत्यु के समय वह गर्भवती थी और चूंकि युद्ध के समाप्त होने पर द्रौपदी की सारी संतान को अश्वत्थामा ने बदले की

आग में जलकर नाश कर दिया था इस कारण आगे आने वाले वंश का भरोसा उत्तरा के बच्चे पर था। जिस समय उत्तरा के पुत्र उत्पन्न हुआ और वह मरा हुआ दिखाई दिया तो तमाम महल में रोना पीटना पड़ गया सब आशायें मिट्टी में मिल गई और चारों ओर से रोने पीटने की आवाज सुनाई देने लगी संयोग से महाराज कृष्ण भी उसी समय नगर में आये और रोने पीटने का कोलाहल सुनकर सीधे महलको गये अभिमन्यु कृष्ण की बहिन सुभद्रा का पुत्र था अर्थात् उत्तरा कृष्ण के अपने भांजे की रानी थी। जब स्त्रियों को पता लगा कि कृष्ण जी आगये तो उन्होंने उनको घेर लिया और बच्चे को उनके सामने डाल कर रोने लगीं कृष्ण ने बच्चे को देखते ही कहा कि मैं इसको जिला दूंगा। सुतरां बच्चे की ओर देखकर कहने लगे कि 'ए बालक मैंने अपने जीवन में कभी झूंठ नहीं बोला, न मैं कभी युद्ध से भागा बस यदि मेरे इन व्यवसायों में कुछ शक्ति है तो तू जी उठ' इत्यादि २। बच्चा हिलने लगा और धीरे २ बिलकुल अच्छा होगया। इस बालक का नाम परीक्षित् था जो बाद में पांडवों के राज का मालिक हुआ। अश्वमेध यज्ञ कुशल से समाप्त हुआ और कृष्ण महाराज फिर वापस अपने नगर को चले गये।

इस युद्ध के समाप्त होने पर, वह ३६ वर्ष तक निश्चिन्तता से द्वारिकाजी में रहे परन्तु इस समय में उनकी जाति यादव वंशियों में घमंड, राग, द्वेष मदिरा पीने इत्यादि का अभ्यास इतना बढ़गया, कि श्रीकृष्ण जी के अधिकार के बाहर यादव वंशी होगये खुल्लम खुल्ला आपस में लड़ाइयाँ होने लगीं इन लड़ाई झगड़ों में समस्त यादव बरबाद होगये यहां तक कि राजवंश में से सिर्फ चार आदमी बाकी बचे अर्थात् श्री कृष्ण, बलराम, दारुक और सात्यकि।

बलराम ने इस प्रकार दुःख से दुखी होकर समुद्र के किनारे जाकर प्राण त्यागकिये और श्रीकृष्ण महाराज अपने सारथी दारुक को अर्जुन की तरफ भेज कर आप वन को चले गए और तप करने लगे जब दारुक ने अर्जुन के पास जाकर उस से सब समाचार कहे तो अर्जुन तुरन्त द्वारिका को चले आये और कृष्ण जी के पोते वज्रनाभ को स्त्रियों सहित हस्तिनापुर को लिवा लेगये और कृष्ण जी के बपौती इलाके का राज वज्रनाभ के नाम करदिया।

श्रीकृष्ण की मृत्यु के विषय में कहावत है कि वह योग समाधि में बैठे हुए थे कि एक शिकारी का तीर इनके पैर में आलगा जब शिकारी पास आया तो उसे मालूम हुआ कि उसने भूल से एक मनुष्य को अपने तीर से घायल कर दिया है और इस भूल पर वह बहुत पश्चात्ताप करने लगा परन्तु कृष्ण महाराज ने उस को धैर्य्य दिया यहां तक तो एक प्रकार संभव घटना का वर्णन है परन्तु आगे इसी कथा का अंत इस प्रकार होता है कि उस शिकारी बधिक के देखते २ श्री कृष्ण महाराज * आकाश में चढ़ गये जहां पर सब देवताओं ने मिल कर इनका बड़े भाव भगत से आगत स्वागत किया और इनके आगमन से प्रसन्न होकर उन्होंने बड़ा आमोद प्रमोद मनाया।

(*) ईसा मसीह के विषय में भी ऐसी ही दन्तकथा प्रसिद्ध है कि वह अपनी मौत से तीसरे रोज जिन्दा होकर फिर आसमान पर चढ़ गए। यदि बुद्धिमान ईसाई ईसा-मसीह के विषय की उक्त घटना पर विश्वास कर सकते हैं तो

चौतीसवां परिच्छेद ।

क्या कृष्ण महाराज परमेश्वर के अवतार थे।

भूमिका में हमने इस प्रश्न का उत्तर अस्वीकार सूचक देकर यह प्रण किया था कि हम जीवन चरित्र को वर्णन कर के भी इस विषय पर कुछ लिखेंगे। अतएव कृष्ण जी के जीवन चरित्र का वर्णन समाप्त करके अब हम अपने प्रण को पूरा करते हैं।

क्या परमेश्वर मनुष्य शरीर धारण करता है।

परमेश्वर को मानने वाले सब आस्तिक लोग उसको सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, अजन्मा, अमर, अनादि, अनंत आदिगुणों से सम्बोधन करते हैं फिर इस अवस्था में यह बात किस तरह ठीक होसकती है कि उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को अपने सेवकों के रक्षण पोषण के हेतु नर देह धारण करने की आवश्यकता पड़े, मनुष्य देह में आने से तो वह स्वयं बंधन में पड़ जायगा और तब वह सर्वव्यापी और सर्वव्यापक नहीं रहसकता।

क्या ईश्वर का अवतार मानने वाले हमको यह बतला सकते हैं कि जिससमय श्री कृष्ण महाराज के शरीर में परमात्माने अवतार लिया था उस समय सारे संसार का शासन कौन करता था, जब श्रीकृष्ण कौरवों से लड़ते थे, शिशुपाल से झगड़ते थे, जरासन्ध से भागते फिरते थे उस

उन्हें इस पौराणिक वर्णन की घटना पर विश्वास करने में क्या सन्देह हो सकता है।

समय संसारका प्रबंध किसके हाथ में था और किस तरह चलरहा था ? तात्पर्य्य यहहै कि बुद्धि तो इस बात को कदापि स्वीकार नहीं कर सकती कि इस सृष्टि का स्वामी और बनाने वाला परमात्मा कभी नरदेह में आता है उसका तो यही गुण है कि वह संसार के सारे प्रपञ्चों से परे है यह शरीर तो उसके बनाये हुए हैं । मनुष्य जिस के कार्य्य कौशलों को स्वयं नहीं समझ सकता, उसके विषय में यह उक्ति घड़ लेता है कि वह परमेश्वर ही इस भद्दी सी निकम्मी बलहीन और बंधन युक्त, मनुष्य देह में आता है ताकि हमें अपने उदाहरणों से बतलासके कि किस प्रकार से जीवन व्यतीत करना चाहिये, अनुचित है । उस परमात्मा के विषय में ऐसा सोचना वास्तव में उसके ईश्वरत्व को अस्वीकार करना है मनुष्य को ईश्वर का पद देना या ईश्वर को गिराकर मनुष्य के पद पर एहुंचा देना बड़ा भारी अपराध है। और हमें खेद है कि हमारी जाति के लोग इस बुनियाद पर इतना भरोसा रखते हैं और बिना अवतारों के मानने के धर्म शिक्षा का होना भी विचार में नहीं ला सकते, यद्यपि यह विषय बहुत आवश्यक और मनोरंजक है और वादानुवाद करने को भी जी चाहता है, परंतु लेख के बढ़ जाने का विचार रोकता है, दूसरे इस विषय पर वादानुवाद करना इस पुस्तक के उद्देशों से बाहर है, अस्तु केवल इतना कहकर सन्तोष करते हैं कि वेदों और उपनिषदों में परमात्मा को "अज" (अजन्मा) अमर, अविनाशी और अकाय इत्यादि कहा है । यदि हम यह मान लें कि परमात्मा स्वयं भी देह धारण करता है तो उपरोक्त सभी गुण व्यर्थ हो जाते हैं ।

अवतारों से अभिप्राय महापुरुषों से है।

निःसन्देह अवतारों से अभिप्राय यदि ऐसे महापुरुषों से है जिनकी शिक्षा दीक्षा से एवं जिनकी जीवन प्रणाली से दूसरे मनुष्य अपने जीवन को उत्तम बनासकते हैं और इस संसार रूपी समुद्र में से तैर कर पार होजाते हैं, तो कोई हानि नहीं, इस बात से कौन हट सकता है कि संसार में समय समय पर ऐसे लोगों की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है और ऐसे लोग समय समय पर जन्म भी लेते हैं जिनकी शिक्षा दीक्षा आदेश और उपदेशोंसे तथा जिनके जीवन की पवित्रता से दूसरे लोग लाभ उठाते हैं और जीवन के इस तूफान भरे समुद्र में भूलों भटकों और भंवर में पड़ी हुई किश्तियों को लिये मल्लाह का काम करते हैं और बहुत से निराश, हतोत्साह अशान्त और व्याकुल आत्माओं को शान्ति देते हैं। ऐसे लोग संसार की प्रत्येक जाति में उत्पन्न होते हैं और वह उन मुक्त आत्माओं की श्रेणी में से आते हैं जिनको अपनी उच्च आत्मिक शक्ति से दूसरे मनुष्यों के मुकाबिले में परमात्मा की निकटता प्राप्त होती है और जिस में अन्यान्य जीवों से अधिक ईश्वरीय शक्तियां प्राप्त होती हैं, यह ईश्वरीय शक्ति कितनी ही अधिक क्यों न हो फिर भी ईश्वर ईश्वर ही है और मनुष्य २ ही हैं, मनुष्य कभी ईश्वर नहीं हो सकता। और न आत्मा परमात्मा के पद को प्राप्त हो सकती है।

हमारा विश्वास है कि यह सब पूर्वपुरुष ईश्वर के उस नियम को फैलाने, समझाने व प्रचार करने के लिये जन्मलेते हैं जो ईश्वर ने सृष्टि के आदि में अपने जनों के कल्याण के लिये अपना दान दिया था और जिनको संस्कृत भाषा में

वेद कहते हैं, अतः यदि कृष्ण महाराज को इस सिद्धान्त से अवतार कहा जाय तो कोई हानि नहीं।

क्या कृष्ण जी ने स्वयं कभी परमेश्वर के अवतार होने का दावा किया।

श्रीकृष्ण जी के जीवन की जो घटनायें हमने पहले पृष्ठों में वर्णन की हैं उन से यही प्रमाणित होता है कि कृष्णजी ने स्वयं कभी अवतार होने का दावा नहीं किया। भगवद्गीता के अतिरिक्त महाभारत के और किसी हिस्से में ऐसे दावे का प्रमाण नहीं मिलता। भगवद्गीता श्रीकृष्ण जी की बनाई हुई नहीं है इसलिये भगवद्गीता का प्रमाण इस विषय को पूर्ण रूप से पुष्ट नहीं करसकता, परन्तु यदि आप प्रश्न करें कि भगवद्गीता के बनानेवालेने क्यों ऐसी युक्ति बांधी जिससे यह परिणाम निकले कि कृष्ण महाराज अपने आपको अवतार समझते थे! तो उसका उत्तर यह है कि अपने कथन को विशेष माननीय और प्रामाणिक बनाने के लिये उसने ऐसा किया। भगवद्गीता का वह भाग जिसमें कृष्ण जी अपने को परमात्मा या परमात्मा का अवतार मानकर उपदेश करते हैं, यह प्रगट करता है कि गीता स्वयं एक प्राचीन पुस्तक नहीं है क्योंकि वैदिकसाहित्य में जिसमें ब्राह्मण उपनिषद् और सूत्रादि भी शामिल हैं, उसमें इस प्रकार के बहुत कम प्रमाण हैं जिस में उपदेश करने वाले को ऐसा पद दिया गया हो। जहां तक हमने छानबीन करके मालूम किया है उपनिषदों में केवल एक ऋषि के वचनों में इस तरह का वर्णन पाया जाता है और वह भी ऐसा स्पष्ट और बहुतात्पन से नहीं जैसा कि भगवद्गीता में भगवद्गीता का क्रम प्रगट करता है कि भिन्न २ समय के पंडितों की रचना

से यह पुस्तक खाली नहीं है । चूंकि हम गीता का उर्दू टीका प्रकाशित करने की इच्छा रखते हैं इसलिये उस पुस्तक में इस विषय पर अधिक विस्तार से बहस करेंगे। सुतराम यह निश्चित है कि गीता कृष्ण जी की बनाई हुई नहीं है, बस गीता के प्रमाण पर कोई मनुष्य नहीं कह सकता कि कृष्ण महाराज स्वयं अवतार होने के दावेदार थे।

क्या उनके समकालीन लोग उन्हें ईश्वर का का अवतार समझते थे।

युधिष्ठिर, भीष्म, अर्जुन द्रोण, दुर्योधन जरासिन्ध और अन्य समकालीनका महाराज कृष्ण से व्यवहार भी यही प्रकट करताहै कि उनमेंसे कोईभी महाराजकृष्णको परमेश्वर का अवतार नहीं समझते थे । यह लोग कृष्ण महाराज को केवल मनुष्य समझ कर उनसे वैसा ही बर्ताव करते रहे, यदि युधिष्ठिर कृष्ण को परमेश्वर का अवतार मानते होते तो उनको जरासंध के मुक़ाबिले में भेजने से कदापि संकोच न करते। यद्यपि महाभारत का रचयिता स्पष्ट लिखता है कि महाराज युधिष्ठिर ने कृष्णजी की प्रार्थना को बड़े संकोच से स्वीकार किया और जरासिंध और शिशुपाल आदि कृष्णजी को परमेश्वर का अवतार समझते होते तो वे वैर कदापि न करते। भीष्म और द्रोण भी कभी उनके सामने लड़ने को न खड़े होते आश्चर्य तो यह है कि गीता वाले उपदेश सुनने के बाद भी अर्जुन पूरे दिल से भीष्म और द्रोण के विरुद्ध नहीं लड़ा। तब श्रीकृष्ण जी को विराट रूप धारण कर के अर्जुन को उभारने की आवश्यता पड़ी। यदि वर्तमान प्रस्तुत महाभारत को सही मान लिया

जाय तो उसके अनुसार अर्जुन ने कृष्ण और भीष्म की इस सलाह का भी स्वीकार नहीं किया कि युधिष्ठिर द्रोण को हतोत्साह करने के लिये यह प्रसिद्ध करें कि अश्वत्थामा मर गया। परन्तु अर्जुन ने इस प्रकार की धोखे बाजी पर बहुत घृणा प्रकट की थी, तात्पर्य यह कि उन घटनाओं से यही प्रमाणित होता है कि कृष्ण महाराज के समकालीन सब लोग भी उनका परमेश्वर का अवतार नहीं समझते थे।

क्या कृष्ण महाराज धर्म सुधारक थे।

यही नहीं हम को तो यह भी निश्चय नहीं होता कि धर्म उपदेश या धर्मप्रचार करना कभी श्रीकृष्ण महाराज ने अपना उद्देश्य बनाया हो। प्रथम तो उनका राजवंश में जन्म लेना ही यह प्रकाशित करता है कि ये धर्म उपदेशक या धर्म प्रचारक कदापि न थे। यह ठीक है कि उस समय राजऋषि का पद बहुत प्रतिष्ठित समझा जाता था और राज ऋषि भी आचार्य्य होते थे तो भी ब्रह्मऋषि की पदवी सर्वश्रेष्ठ थी। जैसा कि विश्वामित्र और वशिष्ठ के उपाख्यानों से विदित होता है। दूसरी कोई कहावत या पुराण हमको यह नहीं बताते कि अर्जुन या युधिष्ठिर को उपदेश करने के सिवाय उन्होंने कभी सर्वसाधारण में धर्मप्रचार की चेष्टा की हो। असल बात तो यह है कि धर्मप्रचार उन का लक्ष्य ही न था। वह जन्म से और स्वभाव से पूरे क्षत्रिय थे इसलिये यथा आवश्यक उन्हों ने अपने क्षत्रिय भाइयों पर अपने धार्मिक विचार प्रगट किये। समय समय पर युधिष्ठिर और अर्जुन के हतोत्साह होने से कृष्ण महाराज से क्षात्रधर्म की व्याख्या कराई और इस अवस्था में धर्म के विषय में उन्होंने जो कुछ कहा वह सब लोकहित साधन के लिये कहा। इस

के अतिरिक्त और कभी भी न तो उन्होंने धर्म उपदेश दिया और न धर्म प्रचार करने की चेष्टा की न उन्होंने धर्म विषय पर कोई ग्रन्थ लिखा न कभी शास्त्रार्थ किया जैसा कि उपनिषदों में जनक महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। कृष्ण महाराज ने अपने सखाओं को जो कुछ धर्म उपदेश कया वह समयानुसार अत्यावश्यक जानकर किया। इसलिये हमारा विचार है कि गीता का सब उपदेश उनके सिर मढ़ना उचित नहीं है। भला लड़ाई के समय में ऐसी लम्बी, युक्तिपूर्ण, सूक्ष्म, फ़िलासफ़ी (वेदान्त) छांटने का कौनसा अवसर था। मतलब तो केवल इतना था कि अर्जुन को लड़ाई के लिये उत्साहित किया जाय और यह मतलब उतने में ही पूरा होजाता है जितना कि दूसरे अध्याय में लिखा है।

बस इससे अधिक जो है वह पीछे के पंडितों की मिलावट है। गीता के १८ अध्याय के लेख को देखने से मालूम हो जावेगा कि कई एक विचारों को प्रत्येक अध्याय में दोहराया गया है। कृष्ण जी के उपदेश का वह भाग जिसके द्वारा अर्जुन को लड़ने के लिये उत्साहित किया गया था सम्भवतः उन सब अध्यायों में उन्हीं शब्दों में मौजूद है। यद्यपि हर एक अध्यायों का वर्णन अलग,अलग है। अस्तु हमारी राय में भगवद्गीता में कृष्ण महाराज का उपदेश केवल उतना ही है जितना कि सब अध्यायों में पाया जाता है और शेष उक्तियां दूसरे विद्वानों द्वारा बढ़ाई गई हैं। इस विवाद से यह भी परिणाम निकलता है कि गीता एक ही लेखक की लिखी हुई नहीं है और न उन वेदव्यास जी कृत हो सकती है जो वेदांत दर्शन के बनाने वाले माने जाते हैं। यह कदापि सभव नहीं है कि व्यास

जैसा दर्शन का ज्ञाता पुरुष एक ही विचार को बार बार दुहराता जितनी बार गीतामें दोहराया गया है । दर्शनकारों की श्रेष्ठता यही है कि उन्होंने बड़ी से बड़ी और कठिन से कठिन युक्तियों को सरल और संक्षिप्त शब्दों मे वर्णबद्ध कर दिया यानी बड़े २ मोतियों को बारीक धागे में पिरो कर रख दिया। परन्तु गीताका क्रम और गीता की लेख प्रणाली और काव्य श्रेणी बिलकुल इस के विरुद्ध है कोई कोई योरोपियन विद्वान् तो इस से यह परिणाम निकालते हैं कि गीता दार्शनिक समय से पहले की बनी हुई है यानी उस समय की है जिस में दर्शनों की भांति क्रमबद्धता और वैज्ञानिक युक्तियां आर्य्यों में जारी नहीं हुई थीं पर मेरीसमझ में यह विचार ठीक नहीं हैं क्योंकि गीता के लेख से यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है कि समस्त दर्शनों का मन्तव्य मनुष्य को एक ही मतलब पर पहुंचाता है । गीता से हमको यह शिक्षा मिलती है कि ज्ञान से कर्म से, ध्यान से, भक्ति से और योग से किस तरह मुक्ति मिलती है। गीता में भिन्न २ साधनों के परस्पर सम्बन्ध प्रगट कर के उनका अंतिम परिणाम एक ही बतलाया गया है अर्थात् ईश्वरप्राप्ति ।

मेरे इस वाद विवादसे आप यह परिणाम न निकाललें कि मैं अपनी समझ के ढंग में गीता का छिद्रान्वेषण करता हूं। हा ! हा !! मैं तो अपने को इन विद्वानों की चरण रज के तुल्य भी नहीं समझता जिन्हों ने गीता बनाई, मैं तो शायद कई जन्मों में उन की युक्तियों के मर्म को नहीं समझ सकता हूं मैं उनकी विद्वत्ता और ज्ञान के सम्मुख प्रसन्नता पूर्वक सिर झुकाता हूं। परन्तु फिर भी यह कहने से नहीं रुक सकता कि

गीता मुझे एक ही विद्वान् की कृति नहीं मालूम होती गीता रचने वालों का मतलब दर्शन शास्त्र की रचना से न था वरन् मनुष्य मात्र के नित्यप्रति के व्यवहारों के लिये ऐसे उपदेश संग्रह करने का था जिस में दर्शनों का निचोड़ ऐसी तरह से आजावे कि उसका समझना कठिन न हो। निदान इस निचोड़ का उन्हों ने जिस उत्तमता से संग्रह किया उससे उनकी अद्वितीय बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है।

यदि ग्लेडस्टोन वो टिण्डल वकीलों जैसे विद्वान् अपने धर्मग्रन्थ अंजील को ईश्वरीय वचन और मसीह को ईश्वर का पुत्र बल्कि स्वयं उसको ईश्वर मान सकते हैं तो इस में क्या आश्चर्य्य है कि गीता के भिन्न २ लेखकों से किसी २ ने कृष्ण महाराज का अवतार की पदवी दी, चाहे वह इस अभिप्रायसे हो कि जो कुछ वह उपदेश करना चाहते थे उस का आदर बढ़ जावे और वह सर्वथा प्रमाणिक वचन माना जाय और चाहे वह वास्तव में कृष्ण महाराज को अवतार ही मानते थे। क्या यह आश्चर्य्य नहीं है कि गीता के अतिरिक्त और किसी प्राचीन पुस्तक या आर्ष ग्रन्थ में न तो साधारणतः अवतारों का वर्णन है और न कृष्ण महाराज के अवतार होने का, क्यों कि पुराणों के विषय में तो हम भूमिका में प्रमाणित कर चुके हैं कि वह वर्तमान समय के कुछ ही पहले के बने हुए हैं इस लिये केवल उन के प्रमाण पर नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन आर्य्य लोग परमेश्वर को अवतार मानते थे या कृष्ण महाराज को ऐसा मानते थे।

———

पैंतीसवां परिच्छेद ।

(कृष्णइज़म अर्थात् कृष्ण महाराज की शिक्षा)

यह शब्द उन अंग्रेज़ी पढ़े लिखे हिन्दुओं की गढ़ंत है जो अंगरेज़ी शिक्षा पाकर भी पौराणिक हिन्दूमत के उस भाग को मानते हैं जिस को हिन्दुओं की बोल चाल में वैष्णव धर्म कहा जाता है। शायद सारे संस्कृत साहित्य में कोई शब्द ऐसा न मिलेगा जो ईसाई मत और मुहम्मदी मत और बौद्ध धर्म की तरह श्रीकृष्ण के नाम के साथ किस मत या धर्मका सम्बन्ध सूचित करताहो। अंगरेज़ी जानने वाले कृष्णभक्तों ने संस्कृत साहित्य की इस कमी को पूरा करने की कोशिश में कृष्ण के नाम पर एक मत की नीव डाली है जिस को वह कृष्णइज़म कह कर पुकारते हैं। परन्तु संस्कृत साहित्य के साधारण अन्वेषण से तो यही ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण ने किसी मत की नीव डालने का साहस नहीं किया और न उन्होंने किसी ऐसे धर्म की शिक्षा दी है जो उचित रीति से उनके ही नाम से जगत् प्रसिद्ध हो। हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद और महात्मा बुद्ध इन तीनों महापुरुषों ने एक नवीन धर्म की नीव डाली और इसलिये उनके मत या धर्म उनके नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं। यद्यपि अर्वाचीन समय के बहुतेरे हिन्दू सम्प्रदाय भी इसी प्रकार किसी किसी महापुरुषों के नाम पर प्रसिद्ध हैं परन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस तरह का कोई प्रमाण नहीं है। और कृष्ण के समय के साहित्य में तो इस प्रकार का नाम निशान ही नहीं है प्राचीन हिन्दूमत में यही तो एक बड़ी विलक्षणता है कि उसकी नीव किसी मनुष्य की शिक्षा दीक्षा के आधार पर नहीं डाली गई है।

यदि सच पूछो तो प्राचीन हिन्दू साहित्य संसार में धार्मिक तत्व का आत्मा स्वरूप है, यह साहित्य इस प्रकार के अमूल्य धार्मिक तत्वों से परिपूर्ण है, कि इसके समान उच्च विचार दुनियां के और किसी साहित्य में दिखाई नहीं देते और इसपर भी तुर्रा यह कि इन विचारोंको प्रगट करनेवाले महापुरुषों ने अपने नाम का कोई भी चिन्ह नहीं छोड़ा जिस से आप यह निश्चित कर सकें कि यह विचार और यह शिक्षा अमुक महापुरुष की थी, हमारे महापुरुषों में से किसी ने नवीन शिक्षा देने की चेष्टा नहीं की किन्तु सब के सब अपने आप को वेदोक्त ब्रह्मविद्या का अनुयायी बतलाते रहे। किसी ने नाम मात्र के लिये भी ऐसा साहस नहीं किया कि यह विचार मेरे हैं और मैं इनको फैलाने के लिये संसार में आया हूं मेरे पहले यह विचार किसी के ध्यान में न आये थे या मुझे विशेष रूप से यह ज्ञान स्वयं प्राप्त हुआ है। कभी किसी ने कोई नवीन मत प्रचार करनेका विचार नहीं प्रगट किया। उपनिषदों व ब्राह्मणों का समस्त क्रम हमारे इस कथन का साक्षी है। उपनिषदों की अद्वितीय धार्मिक शिक्षा के तत्वों से यह कदापि लक्ष्य में नहीं आता कि इस शिक्षा का आचार्य्य कौन था और इन अमूल्य उक्तियों के लिये वे किस महापुरुष के चिर बाधित ऋणी हैं। कहीं कहीं इतिहास इत्यादि में ऋषियों मुनियों वा आचार्यों के नाम आते हैं परन्तु उनके वर्णन में क्रम से यह भी मालूम होता है कि एक ही नाम के बहुत से ऋषि हो चुके हैं- जैसे कि आज हमारे लिये यह निश्चित करना असंभव है कि वर्तमान मनुस्मृति कौन से मनु महाराज की रचना है। प्राचीन आर्य्य लोग परमेश्वरको ही आदि गुरु और सच्चा उपदेशक मान-

ते थे और इसलिये उन्होंने कभी इस बात की चेष्टा नहीं की कि वे अपने नाम से कोई धर्म प्रचलित करें। उन के लेखों से टपकता है कि इस प्रकार की कार्यवाही को ये अधर्म और पाप समझते थे। धर्म चर्चा तथा धार्मिक विचार और वादानुवाद करना तो वे उचित समझते थे परन्तु अपने नाम से किसी नवीन धर्म का प्रचार करना या कोई नवीन शिक्षा देना उन के विचार से सर्वथा अनुचित था।

प्राचीन हिंदुओं के सब आचार्य ऋषि या मुनि जो कुछ शिक्षा देते थे उसको वे अपने पूर्व पुरुषों वेद या शास्त्रों का आदेश बतलाते थे अपनी तरफ से कोई नवीन शिक्षा देने का साहस उन्होंने कदापि नहीं किया बस वर्तमान समय में हमारी तरफ से यह प्रयत्न हुआ कि हम उन में किसी एक को चुन कर उसी के नाम से किसी मत को जारी करदें। यह साक्षात् उन के महत्व को कम करना है। इस पर भी तुर्रा यह है कि हमारी यह कार्यवाही एक ऐसे वीर क्षत्री राजपुत्र के साथ सम्बन्ध रक्खे जिसने कभी भी धर्म प्रचारकी चेष्टा नहीं की। हम पहले परिच्छेदमें कह चुकेहैं कि इसबातका कोई प्रमाण नहीं कि कभी कृष्ण महाराज ने सर्व साधारण को धार्मिक शिक्षा देने की चेष्टा की हो। तब कृष्ण महाराज को किसी धर्म का व्यवस्थापक मानना व्यर्थहै हम बतलाना चाहते हैं कि भगवद्गीता की सब युक्तियों को कृष्ण महाराज की शिक्षा समझना उचित नहीं परन्तु विचार के लिये यदि ऐसा मान भी लिया जावे तो भी परिणाम तो यही निकलताहै कि उन्होंने अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये वह उपदेश किया जो गीता में है। यदि उसी उपदेश के कारण कृष्ण महाराज एक धर्म विशेष के व्यवस्थापक माने जा सकते हैं तो क्या कारण

है कि भीष्म महाराज को भी यही पदवी न दीजावे जिनके उपदेश कृष्ण महाराज के उपदेशोंसे गूढ़ता, विद्वत्ता, व सत्यता व तत्व पूर्णता मे किसी प्रकार कम नहीं है क्या कोई हमको बतला सकता है कि भगवद्गीता में कौनसी ऐसी शिक्षा है जो उससे पहले के बने हुए उपनिषदों और ब्राह्मणों में उपस्थित नहीं है या जो वेदों में भी पाई नहीं जाती तब यह कौन सी शिक्षा है जिसे हम कृष्णइज़म के नाम से प्रसद्ध करें। सिवाय इसके कि हम उन बातोंको कृष्णाइज़म कहें जो श्रीमद्भागवत् या ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में भरीहुई है और जिससे कृष्ण महाराज का पवित्र जीवन कलंकित किया जाता है। लेकिन श्री मद्भागवत् को शिक्षा को कृष्णाइज़म के नाम के सम्बोधन करने से तो कृष्ण महाराज का कुछ यश होगा। पर हमारे विचारमें तो श्री मद्भागवत् की शिक्षाओं को कृष्ण महाराज के सर मढ़ना सर्वथा अनुचित है क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों से यह कदापि प्रमाणित नहीं होता कि कृष्ण महाराज ने कभी ऐसी शिक्षा दी हो जैसी कि श्री मद्भागवत में पाई जाती है।

स्पष्ट तो यह है कि हमारे विचार में कृष्ण महाराज ने कोई ऐसा मत नहीं चलाया जिस को हम उनके नाम से प्रसिद्ध करें और इसलिये शब्द कृष्णइज़म का प्रयोग ही अशुद्ध और अनुचित है अथवा यदि कृष्णइज़म से उन्हीं उपदेशों से अभिप्राय है जो कृष्ण महाराज ने अर्जुन तथा अपने दूसरे सम्बन्धियों को यथा आवश्यक समय समय पर दिये और जिन में प्राचीन वेद ग्रन्थों की निष्काम फ़िलासफ़ी पर ज़ोर दिया गया है तो कुछ हानि नहीं है क्योंकि कृष्ण नाम किसी विशेष धर्म का नहीं है जिसे कृष्ण महाराज

ने चलाया हो परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि निष्काम धर्म प्रभावोत्पादक उपदेश कृष्ण महाराज के वाक्य में मिलता है वैसा और किसी ऋषिमुनि के उपदेश में नहीं मिलता भगवद्-गीता के पृथक पृथक अध्याय यद्यपि भिन्न २ विषयों पर छापे हुए हैं। परन्तु सब का सारांश एक मात्र निष्काम धर्म की शिक्षा है। महाभारत में भी कृष्ण महाराज के भिन्न २ वाक्यों में निष्काम धर्म सब से प्रधान है उनकी प्रत्येक बात का मर्माशय यही है। भिन्न २ रीतियों से भिन्न २ प्रणाली में धर्म के भिन्न २ अङ्गों की व्याख्या करते हुए प्रायः प्रत्येक युक्ति का अंत निष्काम धर्म की प्रधानता पर होता है। भगवद्गीता के अक्षर २ में निष्काम धर्म का राग अलापा गया है न केवल उनके वचनों में परन्तु उनके कर्म और उनके व्यवहार में भी इस शिक्षा का असर दिखाई देता है, जिससे हम यह कह सकते हैं कि झूठ त्याग और वैराग का खण्डन करते हुए निष्काम धर्म की प्रधानता को फैलाना और निष्काम फ़िलासफ़ी की व्याख्या करना यही ख़ास तौर पर कृष्ण महाराज के जीवनका उद्देश्यथा और यही हमको उनके वचनोंमें जगह जगह भरा हुआ दिखाई देता है। जहां कहीं कभी जब उनको धार्मिक व्यवस्था देने की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने इसे सिद्धान्त बनाकर उसी के अनुसार अपना न्याय किया। इस शिक्षा का अनुकरण करना ही उन्होंने मनुष्य मात्र के जीवन का उद्देश ठहराया। और इसी पर कार्य करने के लियेवह उन सबलोगों को प्रेरणा करते थे जिनका कि किसी न किसीप्रकार का उनसे सम्बन्ध रहा। मित्रों की संगति में, संबंधी व रिश्तेदारों के व्यवहारों में, अपने सेवकों तथा भक्तजनों के प्रश्नों के उत्तर में, राजसभाओं में यज्ञादि तथा अन्यान्य धार्मिक कार्य्य

के समयों और शत्रुओं से युद्ध के समय तात्पर्य्य यह कि जीवन की घटनाओं के प्रत्येक समय पर और हर बात पर उन्होंने इसी शिक्षा को अपना प्रधान लक्ष्य निश्चित कर लिया था और अन्त में भी मृत्यु समय जिसे बधिक के बाण से वे घायल हुये उसे भी इसी निष्काम धर्म का उपदेश करते हुए स्वर्ग को पधारे।

पाठको! अब हम आप को संक्षेप से यह बतलाना चाहते हैं कि कृष्णमहाराज की संपूर्ण शिक्षा का सारांश हम को भगवद्गीता के दूसरे अध्याय तथा महाभारत के सम्मिलित श्लोकों में प्राप्त होते हैं। कृष्णमहाराज की शिक्षा के अनुसार मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य भगवद्गीता अध्याय दूसरे में किया गया है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥६४
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठति॥ ६५

अर्थ-जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में करके राग द्वेष रहित हो इन्द्रियों के विषय (१) में आचरण करता है और इस लिये शुद्ध अन्तःकरण रखता है वही प्रसाद अर्थात् आनन्द को प्राप्त हो सकता है॥ ६४॥

अर्थ-इसी आनन्द में सब दुखोंका नाश होजाता है अर्थात् सब दुःख दूर होजाते हैं अस्तु स्थिर बुद्धि वही मनुष्य है जिसका मन आनन्द से परिपूर्ण है॥ ६५॥

नोट—(१) इन्द्रियों के विषय में आचरण करने से तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों से वह काम लेना है जिस काम करने के लिये प्रकृति ने उन को बनाया है जैसे आँख से देखना कान से सुनना नाक से सूँघना इत्यादि इत्यादि।

प्रश्न—स्थिर बुद्धि होने का क्या फल है।

उत्तर—परम पद की प्राप्ति अर्थात् मुक्ति।

कर्मजं बुद्धियुक्ताहि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ता पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ १५॥

अर्थ-मुनि लोग बुद्धि योग को प्राप्त करके कर्मों के फलों को यहीं ही त्याग देते हैं और जन्म के बंधनों से मुक्त होकर उस पद को प्राप्त करते हैं जिसमें कोई व्याधि नहीं अर्थात् अमृतमय मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥

इसलिये कृष्ण महाराज का वचन है कि—

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमो भूत्वासमत्वंयोग उच्यते॥४८॥

अर्थ-हे धनंजय (अर्जुन) ईश्वरीय इच्छा में योग करता हुआ तू राग को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि को एक सा जान कर तू कर्मों को कर क्योंकि इसी समता का नाम योग है॥ ४८ ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

अर्थ—न तुझे कर्मों से मतलब है न उनके फलों से अस्तु कर्मों के फल को अपना उद्देश मत बना और न अकर्म अवस्था से दिल लगा (अर्थात् न दिल में यही ठान ले कि कर्म नहीं करना चाहिये) हे अर्जुन न सुख दुख हानि लाभ और हार जीत को एक सा समझ कर लड़ाई के लिये कमर बांध क्योंकि इसी से तू पाप से बच सकता है ॥ ४७ ॥

सुखदुःखे समं कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

तीसरे अध्याय के ८ वें श्लोक में फिर यही बात दोहराई गयी है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्मज्यायोह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धेदकर्मणः॥ ७॥

अर्थ—अस्तु तू सत्य कर्म कर क्योंकि कर्म करना अकर्म से कहीं उत्तम है बिना कर्म किये तो शरीर यात्रा भी नहीं हो सकती॥ ८॥

श्लोक १५ में बतलाते हैं कि यह कर्म किस तरह जाना जाता है।

कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ १५॥

अर्थ-कर्म वेद से जाना जाता है और वेद उस अनादि परमेश्वर के बनाये हुए हैं॥ १५॥

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः॥ ३०॥

अर्थ—समस्त कर्मों को परमात्मा के आधीन करके और इसी पर अपने सब विचारों को निर्भर रखते हुए आशा और आत्माभिमान को छोड़कर और इस विचार के सन्ताप से मुक्ति पाकर तू युद्ध करने पर कटिबद्ध हो चौथे अध्याय में भी इसी तरह कर्म और अकर्म उचित और अनुचित कर्मों की फिलासफी वर्णन की है।

पांचवें अध्याय के श्लोक में फिर यही उपदेश आताहै कि:—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसि॥ १०॥

अर्थ—जो सब कर्मों को ब्रह्म परायण करके बिना मोह के

कर्म करता है वह पाप में नहीं फंसता जैसा कि कमल के पत्ते पर पानी का कोई चिन्ह नहीं होता।

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११

अर्थ—मोह को छोड़कर शरीर से मन से बुद्धि से और इन्द्रियों से भी योगी अपनी आत्म शुद्धि के लिये कर्म करते हैं छटवें अध्याय के पहले श्लोक में तो बिलकुल साफ तौर पर लिख दिया है कि।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्य्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः १२

अर्थ—संन्यासी और योगी वही है जो कर्मों के फल की परवाह न करता हुआ कर्म को कर्त्तव्य समझ कर करता है न कि वह जो कभी आग नहीं जलाता और कुछ कर्म नहीं करता। श्लोक १६ में फिर कहा है कि:—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन। १६ ॥

अर्थ—हे अर्जुन योग उस के लिए नहीं है जो अधिक खाता है या जो बहुत ही कम खाता है और न उस के वास्ते है जो बहुत सोता है या बहुत जागता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ १७ ॥

अर्थ— अधिक दुख नाश कर देने वाला योग उस के लिये है जो नियम से खाता है नियम से सोता है और जागता है और नियम से सब काम करता है।

नवें अध्याय के २७ वें श्लोक में फिर लिखा है।

यत्करोषिदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २० ॥

अर्थ— सब कर्मों को ईश्वर परायण करने का उपदेश किया है, हे कुन्ती पुत्र जो कुछ तू करे, जो कुछ तू खावे, जो कुछ तू भेंट करे, जो कुछ तू दान करे, अथवा जो तू तप करे सब कुछ मेरे अर्पण कर।

सोलहवें अध्याय में फिर इसी मज़मून को और भी साफ कर दिया है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ २३।

अर्थ—जो पुरुष शास्त्रों की आज्ञा उल्लंघन कर अपनी इच्छानुसार आचरण करता है उसको न सिद्धि प्राप्ति होती है न सुख और न सच्चा मार्ग मिलता है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणंते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥२४॥

अर्थ—इस लिये उचित है कि शास्त्रों के प्रमाण से यह निश्चय किया जावे कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये शास्त्र विधि को जानकर ही इस संसार में कर्म करना चाहिये।

अध्याय १७ और १८ में कर्मकाण्ड की फिलासफी को और अधिक विस्तार से वर्णन किया है। तात्पर्य यह कि इस विषय में सारी गीता का तत्व यही है जो निम्न लिखित प्रमाणों में पाया जाता है। और जब हम यह विचार करते हैं कि इन सारे उपदेशों से असल मतलब भी यही था कि अर्जुन को लड़ाई पर कटिबद्ध किया जावे तो हमारा यह विचार अंतिम

सीमा पर पहुंच जाता है कि वास्तव में यही वह उपदेश है जो कृष्ण महाराज ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को किया। सम्भव है कि इस की व्याख्या में धर्म के अन्याय अंग भी किसी प्रकार वर्णन किये गये हों परन्तु यह विचारमें नहीं आसकता कि गीता की सारी फिलासफी को उस समय शिक्षा दी गई हो।

महाभारतमें भी जहांपर कृष्णजी को वार्तालाप करने का अवसर मिला है वहां भी उन्होंने इसी रीतिसे अपनी युक्तियों को वर्णन किया है महाभारत का युद्ध समाप्त होनेके पश्चात् जब युधिष्ठिर ने राजपाट छोड़कर जंगलको जाने की इच्छा की तो फिर कृष्ण महाराज इसी उपदेश से युधिष्ठिर को प्रवृत्ति मार्ग पर लाये यहां तक कि उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने को उत्साहित किया। युधिष्ठिर को समझाते हुए कृष्ण जी ने कहा-हे युधिष्ठिर यद्यपि तुमने बाहरी शत्रुओं को मार लिया है परंतु अब समय आगया कि तुम उस लड़ाई के लिये तैयार हो जाओ जो प्रत्येक पुरुष को अकेले ही लड़ना पड़ता है। अर्थात् अपने मनसे इस अपार और अथाह मनकी महिमा पाने के लिये कर्म और ध्यान के हथियार बर्त्तने पड़ेंगे क्योंकि इस लड़ाई में लोहे के हथियार काम न देंगे और न मित्र या सेवक ही कुछ सहायता कर सकेंगे। यह लड़ाई तो अकेलेही लड़नी पड़ेगी और इसमें यदि तुम उत्तीर्ण न हुए तो तुम्हारा बुरा हाल होगा।

फिर आगे कहते हैं कि—

राजपाट इत्यादि बाह्य पदार्थों के त्याग से मुक्ति न होगी परन्तु इन चीजों के छोड़ने से जो तुम को शरीर के साथ बाँधती हैं। वह पुन्य और सुख हमारे शत्रुओं के ही भाग्य में रहे, जो लोग पदार्थों का त्याग तो करते हैं परन्तु

भीतरी इच्छाओं और निर्बलताओं में फंसे रहते हैं उनको प्राप्त होता है. असल मृत्यु इसी का नाम है कि मनुष्य दुनियावी पदार्थों में लिप्त हुआ मेरी और तेरी की पहिचान में ही गुथा न रहे। वह पुरुष दुनियां की क्या परवाह करता है जो सब पृथ्वी का चक्रवर्ती राज रखता हुआ भी उसके मनमें मोह नहीं है और न इसके भोग में ही मोहित होता है परन्तु वह पुरुष जो दुनियां को त्याग कर जङ्गलमें साधु वेष बनाकर जंगली कन्द मूल का भोजन करता हुआ फिर भी दुनियावी पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा रखता और इनकी ओर दिल लगावे वह तो मानो मृत्यु को हर वक्त अपने मुंह में ही लिये फिरता है। इसलिये तुमको उचित नहीं कि अपने कर्त्तव्य को पूर्ण रीति से काबू किये बिना त्याग का विचार बाँधो क्योंकि असल त्याग इसी में है कि मनुष्य का मन इसके वश में हो और अपनी सब इच्छाओं पर उसका पूर्ण अधिकार हो ऐसा पुरुष संसार में रहता हुआ राज करता हुआ भी पूरा त्यागी और अपने दिल का बादशाह है।

वाह! क्या शब्द हैं। शब्द हैं या मोती हैं जिनका रूप रंग और जिनकी चमक दमक के सामने अच्छी से अच्छी और तीव्र से तीव्र दृष्टि वाली आँख नहीं ठहर सकती। नहीं नहीं मोती नहीं! मोती तो मिट्टी है। उन से न तो भूखे की भूख मिट सकती है न प्यासे की प्यास बुझ सकती है। न शोकाकुल का शोक दूर हो सकता है और न उदास की उदासी कम हो सकती है। बहुमूल्य से बहुमूल्य मोती रखते हुए भी आदमी दुःख दर्द और क्लेश से छुट्टी नहीं पाता। महमूद ग़ज़नवी के पास क्या मोतियों की कमी थी और ज़ार रूस के पास क्या मोती कम हैं। लेकिन क्या कोई कह सकता है कि मोतियों के कारण महमूद को सुख मिला या

और इन मोतियों के कारण सुखी है सच तो यह है कि यदि तमाम दुनियां की दौलत, सोना, चांदी, हीरा, मोती, जवाहरात आदि इकट्ठे कर लिये जावें तब भी इनका मूल्य इन शब्दों और इन विचारों के मूल्य से कहीं कम है। यह वह अमृत है जिसकी तलाश में मोतियों वाला सिकंदर आज़म मर गया। यह वह संजीवनी बूटी है जिसको पाने के लिये दुनियां के बड़े से बड़े राजे महाराजे तड़पते हुए मर गये। यह वह अमृत है जिसको पानकर के मनुष्य मरने जीने के दुःख से छूट जाता है और जिसको प्राप्त करके मोती मिट्टी दीख पड़ते हैं। यह वह नुस्खा है जिससे दुःख बीमार की बीमारी, बेचैन की बेचैनी और व्याकुल अशान्त आत्मा की व्याकुलता और अशान्ति इस तरह भाग जाती है जैसे मनुष्य की बास पाकर जंगली हिरन भाग जाता है।

यही वह फिलासफी (ज्ञान) है जो मनुष्य के लिये इस दुःख सागर संसार को शान्ति सरोवर और सुख का धाम बना देती है जो इसको सब बंधनों से छुड़ाकर केवल एक प्रभु के कमल चरण पद को प्राप्त कराती है जहाँ पहुंचकर जीवात्मा आनन्द ही आनन्द में विश्राम करता है।

पाठको! क्या आप समझे! यह वह शिक्षा है जो हम को बताती है कि ड्यूटी (कर्त्तव्य) ड्यूटी के ही लिये करना चाहिये। यह वह शीशा है जो हमको धर्म का सच्चा स्वरूप दिखाता है और समझाता है कि धर्म करने के वास्ते और कोई गरज होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त वह धर्म है या ईश्वराज्ञा है या उस परमात्मा का नियम है जिसके नियमों में सर्वशक्तिमान् होने पर भी तमाम आत्माओं को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

हे आर्य सन्तान! क्या आप इस गम्भीर युक्ति का अनुभव कर सकते हैं? क्या दासत्व की दृढ़ जंजीरों ने, क्या

पेट की चिन्ता ने, क्या प्रतिष्ठा के झूठे विचार ने, क्या लक्ष शून्य वैराग और झूठे त्याग के धोखा देने वाली फिलासफी ने क्या जीविका की चिन्ता में दत्तचित्त हुए, सिर्फ रोटी और रुपयों को ही ईश्वर बताने वाली शिक्षा ने, क्या किंचित् मात्र द्रव्य के बदले में प्राप्त की हुई विद्या ने, क्या मिथ्या विश्वास ने, आपके मन और बुद्धि को इस योग्य छोड़ा है कि आप इस परम सत्य को, सारे संसार की फिलासफी के ज़ौहर को, इस असल तत्व को समझ कर अपने जीवन का तावीज़ बना सकें। यदि श्रीकृष्ण महाराज फिर जन्म लेवें और अपनी मीठी व सुरीली वंशी से उस आनन्द मय राग को फिर अलापें और सब आर्य्य संतान को बतलावें कि वह धर्म पथ से च्युत होकर कहां की कहां जा पहुंची है। यदि बूढ़ी भारत जननी दस पुत्र इस तरह के उत्पन्न करे जो धर्म के इस मान चित्र को सामने रखकर धर्म की सीढ़ी पर चढ़ने का प्रयत्न करें और इस सीढ़ी पर चढ़ने के धुन में न अमीरी की परवाह न गरीबी की, न मित्र की परवाह करें न शत्रु की, न जिन्दगी की परवाह करें और न मौत की, उनका विश्वास ऐसा दृढ़ हो उनकी श्रद्धा ऐसी पक्की हो, उनका हृदय ऐसा दृढ़ हो, उनकी बुद्धि ऐसी प्रबल हो कि वे जिस चीज को अपना धर्म समझलें फिर उसी के हो रहें। न सुख दुःख की परवाह करें, न आराम व कष्ट की, न दुःख और सुख का ख्याल करें, न सफलता और असफलता का विचार करें।

क्या वास्तव में इसी प्रकार के मनुष्यों का अभाव नहीं है जिसके कारण सारा देश दुःखी है और नित्य नई आपत्तियों और क्लेशों का सामना है। सारे देश में देश भक्ति, जाति प्रेम और धर्म प्रचार का हल्ला मचा हुआ है तो भी

सारे देश में एक आदमी भी ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जिस ने देश भक्ति को, जाति प्रेम को और धर्म प्रचार को अपना मुख्य कर्त्तव्य बनाया हो, किन्तु क्या सम्भव था कि इतने हल्ला गुल्ला होने पर भी धर्म अवस्था इस देश में एक इन्च भी उन्नत न होती और इस देश का दुख निवारण न होता।

यह ठीक है कि धर्म की चर्चा तो बहुत कुछ है वाद विवाद भी बहुत होता है व्याख्यान और उपदेश भी वे प्रमाण होते हैं, चंदे भी खूब दिये जाते है, किन्तु कमी है तो यह है कि धर्म परायण जीवन नहीं है और धर्म परायण हुए बिना धर्म पास ही नहीं फटकता, धर्म तो कभी उन लोगों के पास भी नहीं जाता जो धर्म को अपना जीवन नहीं बनाते धर्म ऐसा ईर्षा करनेवाला है कि वह अपने सामने दूसरे को देख भी नहीं सकता वह तो अपने भक्त को अपना ही मत-वाला बनाना चाहता है, उसको न खाने से रोकता है, न पीने से, न भोगने, न द्रव्य संचय करने से, न संतान पैदा करने से न स्त्री रखने से वह सिर्फ यह चाहता है कि जो कुछ करो मेरे लिये करो मेरे नाम पर करो, मेरी खातिर करो, मेरे परायण करो वह अपने भक्त से यह नहीं चाहता, कि उसका भक्त किसी से प्रम न करे, वह देश की सेवा न रे,क वह जातिकी सेवा न करे वह लोगोंकी सहायता न करे वह तो कहता है चाहे जितना प्रेम करो परन्तु जिस चीज से प्रेम करो किन्तु इस लिए करो कि तुम्हारा वह प्रेम मेरे नाम पर हो, मेरी खातिर हो और मेरे अर्पण हो।

धर्म अपने साम्राज्य में किसी को साझीदार नहीं बनाता और न अपने राज्य में किसी दूसरे को अपने बराबर का आसन देता है तात्पर्य्य यह कि वह स्वयं सर्व शक्तिमान होना चाहता है। किसी का संग उसे किसी प्रकार स्वीकार

नहीं और न उसको यह सहन है कि उसके भक्त को उसकी आज्ञापालन में जरा भी सोच संकोच हो अस्तु धार्मिक वह हो सकता है जो धर्म की आज्ञा पालने में न सिरको परवाह करे न पैर की न तन की परवाह करे और न धन की या श्री कृष्ण महाराज की आज्ञानुसार जो खाता है तो इस लिए कि उसकी आज्ञा है, पीताहै तो इसलिए कि उसकी आज्ञा है, दान देता है तो इस लिए कि उसकी इच्छाहै, यज्ञ करताहै तो इस लिए कि इसमें उसकी प्रसन्नता है, ऐसा पुरुष धर्म परायण हो सकता है और ऐसा पुरुष ही दूसरों को धर्म परायण होने की शिक्षा देसकता है। खेद है कि इस देश में न अब धर्म है और न कोई धर्म परायण है और इसी वास्ते यह अभागा देश और इस देश के रहने वाले तरह तरह की आपत्तियों में फँसते हैं प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार मनमाना स्वरूप धर्म का बना लेता है और उस अपनी बनाई हुई तसवीर की पूजा से मुक्ति पाने की इच्छा करता है। केवल इतना ही नहीं करता औरों को भी उस तसवीर की तरफ खींचता है और यही पुकारता है कि "मेरे कथन पर जो संदह करे वह काफिर है परंतु यदि प्राचीन समय के धर्म परायण लोगों की साक्षी देखें तो धर्म वेदों से मिलता है वेद इस समय बहुत कठिन हैं क्योंकि इनके अर्थों का द्वार बंद है और इस महान् पवित्र विषय में बुद्धिहीन तथा संकीर्ण हृदय मनुष्य का गमन ही नहीं है। हम लोग तो उस महान किवाड़ की कुंडी भी नहीं खोल सकते फिर इसमें बैठकर उसका रस आस्वादन बहुत दूर है।

प्रश्न–तो क्या हमारा रोग असाध्य है और इस की कोई औषधि ही नहीं ?

उत्तर–इसके अतिरिक्त और कोई औषधि नहीं कि हम

धर्म के अंगों के तत्व का खोज करें जो कि धर्म के पार्श्ववर्ती हैं

प्रश्न-वह क्या है ?

उत्तर—देखो भगवद्गीता अध्याय १६के श्लोक १. २, ३ (१) अभय (सिवाय परमेश्वर के और किसी से न डरना) (२) मनकी शुद्धि (३ बुद्धि योग में स्थिरता (४)दान (५) दम (यानी अपनी इन्द्रियों को वशमें करना) (६)यज्ञ (धार्मिक कर्म) (७)स्वाध्याय (शास्त्रों का पठन पाठन) (८) तप (९) अहिंसा (धर्म के विरुद्ध किसी को हानि न पहुंचाना) । (१०) सत्य (११) क्रोध दमन (१२) त्याग (१३) शांति (१४) वीरता (१५) दृढ़ता (१६) क्षमा ।

हमारा यह कर्तव्य होना चाहियें कि उस दरबार में जाने के लिये इन धर्म के निकटवर्ती लोगों से सहायता पाने की प्रार्थना करें और उचित मार्ग से उनकी प्रसन्नता प्राप्त करके उनके पूरे कृपा पात्र बनें ।

धर्म हेतु धर्म करना हर एक जीवात्मा का लक्षण है इस लक्ष को प्राप्त करने के लिये बहुत से पड़ावों को पार करना आवश्यक है । इन पड़ाओं में से किसी एक पड़ाव को अपने जीवन का उद्देश बनाना ही प्रत्येक पुरुष का कर्तव्य है इस कर्तव्य को जिसने समझ लिया मानो कि वह सीधे रास्ते पर पड़गया फिर उसको उचितहै कि वह अपनी प्रकृति का सारा ज़ोर इस पड़ाव के पार करने में खर्च करे और किसी दूसरे विचार को अपने रास्ते में बाधक न होने दे ।

यूरप का एक राजनैतिक महापुरुष लिखताहै कि निस्फलता,हतोत्साह, और निराशा और इसी तरह की दूसरी आपत्तियों ने एक समय मुझे ऐसा घबरा दिया कि मेरे मन में यह संदेह पैदा हो गया कि मैं गलती पर हूं और मैंने सहज स्वेच्छा व स्वबुद्धि ही से यह कार्य आरम्भ किया है जिसके परिणाम में सैकड़ों जीवों के रक्तपात का अपराधी बना । अस्तु इस विचार ने मुझे ऐसा घेरा कि मैं विक्षिप्तों का सा

काम करने लगा। जीवन भार हो गया कई बार आत्महत्या की इच्छा की। रातें बेचैनी में बीतने लगीं यहां तक कि एक दिन प्रात काल सूर्य की रोशनी के साथ ही ज्ञान की प्रभा भी दृष्टि गोचर हुई। सोचते सोचते मैंने यह निश्चय किया कि मैंने जो काम आरंभ किया है वह तो आत्मश्लाघा या स्वार्थ बुद्धि का परिणाम नहीं है परन्तु यह दशा जो मैंने अपने ऊपर मान रक्खी है यह मेरी स्वबुद्धि का परिणाम है। वरन मुझे क्या अधिकार है कि मैं कर्तव्य पालन में केवल हतोत्साह और निराशा के सामने आने के कारण से यह फल निकाल कि मैं गलती पर हूं। अस्तु मैंने अपनी परीक्षा करना आरंभ किया और सोचने लगा कि मैंने मनुष्य जीवन को क्या समझा है। समस्त ज्ञान विज्ञानत्व इसी पर निर्भर है कि मनुष्य जीवन का उद्देश क्या है?

भारतवर्ष के प्राचीन धर्मके ध्यान को ही जीवन का उद्देश माना है जिसका फल यह हुआ कि हिन्दू मात्र ऐसे सोये कि फिर किसी काम के योग्य न रहे और आर्य्य संतान अपने ईश्वर में लीन होगई।

दूसरी तरफ ईसाई मत ने जिन्दगी को बोझ समझा और यह निश्चय किया कि दुनियां के सब दुःख और चिन्ताओं को संतोष तथा प्रसन्नता से सहन करना चाहिये। और उन से भगने का उद्योग नहीं करना चाहिये। उन्होंने इस विचार से दुनिया को दुःख मंदिर माना है। इस के नियम अनुसार मुक्ति इसी से मिलसक्ती है कि तमाम दुनिया की चीजों को तुच्छ दृष्टि से देखें और उन की कुछ परवाह न करें।

अठारवीं सदी के मेटीरियल (प्राकृतिक) फिलासिफी ने जीवन को सुख और आनन्द का स्थान मान लिया है जिसका परिणाम यह हुआ भिन्न २ स्वरूपों में मनुष्यों में स्वार्थ बुद्धि का विचार इतना बलवान हो गया कि नियमों की

परवाह ही न रही। प्रत्येक पुरुष अपने ही लाभ और फायदे के ध्यान में निमग्न है।

सिद्धान्त और सचाई के लिये बलिदान करने का विचार इतना कमजोर हो गया कि लोग जरासी तकलीफ या थोड़ी सी निस्फलता से अपने सिद्धान्तों को पैरों में कुचल डालते हैं और अपनी इच्छा को बदल कर उस काम को छोड़ देते हैं जिसको उन्होंने किसी उद्देश पालन के लिये आरम्भ किया था।

मैंने सोचा कि यद्यपि मुझको जिन्दगी की इस फिलासफी से नफरत है और मेरा दिल उन विचारों पर आरूढ़ नहीं है तब भी मेरी आत्मा इन्हीं खयालात का शिकार हो रही है।

मैं जिंदगी के उद्देश को अपनी जिन्दगी के आराम व कष्ट से सिद्धि व असिद्धि से लोगों की प्रीति व अप्रीति व योग और वियोग तक विचारों से जांचता हूं।

दुःख है कि अपने ही कर्म से मैं अपने इस विश्वास को जवाब दे बैठा कि नरदेह तो क्षणिक है और भिन्न २ जीवनों में इस प्रकार उन्नति करता है जैस कि कोई आदमी इस विश्वास से एक बहुत ऊँचे पहाड़ पर चढ़ता जावे कि ऊपर ईश्वर बैठा है और वहां पहुंचने पर उसके दर्शन मिलेंगे आत्मा के भिन्न २ जीवन तो वास्तव में एक ही लड़ी के दाने हैं जिनमें आत्मा शनैः २ प्रकाश पाता हुआ उन्नति करता है।

प्रत्येक जीवन का एक न एक लक्ष्य होता है अन्यथा जीवन का अर्थ ही क्या होगा। इस के अतिरिक्त जो लोग जीवन शब्द का दूसरा अर्थ लगाते हैं वह अपने ठीक रास्ते से भूले हुए हैं। वह जीवन ही क्या जिसका कोई लक्ष्य या उद्देश्य न हो। अतएव जिन्दगी का एक मुख्य उद्देश्य नियत करके फिर वह लिखता है कि इस प्रधान लक्ष्य के अन्तर्गत

प्रत्येक जीवन की कोई वासना होती है जो इसकी विशेष अवस्था पर निर्भर होती है। परन्तु जिसका स्वभाव भी उसी लक्ष की प्राप्ती है जो प्रत्येक जीवात्मा का अंतिम लक्ष्य है। कुछ मनुष्यों के जीवन का अभिप्राय यह होगा कि वह अपने इर्द गिर्द के लोगों के आचार व व्यवहार को सुधारें यानी अपनी जाति की शिक्षा को सुधारें।

जो लोग इनसे भी अधिक उन्नति शील हैं वे अपनी जाति में जातीयता के विचार को फैलाने की चेष्टा करें या धार्मिक या राजनैतिक उन्नति का बीड़ा उठावें। येन केन प्रकारेण यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जीवन एक मिशन है और (कर्त्तव्य) या उसके धर्म उसके लिये अच्छे से अच्छा नियम है प्रत्येक पुरुष की उन्नति इसपर निर्भर है कि वह अपनी जिंदगी के मिशन को समझ कर उसके अनुसार ही अपना कर्त्तव्य पालन करें क्योंकि इसी कर्त्तव्य को पालन करने या न करने पर यह बात भी निर्भर होगी कि इस जीवन के अन्त होने पर फिर उस को किस प्रकार का जीवन मिले। क्यों कि प्रत्येक पुरुष को स्वयं अधिकार है कि वह अपने कर्मों द्वारा अपने भाग्य का निर्णय करे। हम में से प्रत्येक पुरुष का यही कर्तव्य है कि अपनी आत्मा को साफ और पवित्र बनाकर उसी को अपना ध्यान मन्दिर बनावें। स्वार्थता से उसे खाली करके बहुत गम्भीर विचार से अपने जीवन का उद्देश्य नियत करें। और अपनी अवस्था के अनुभव से यह भी निश्चय करें कि उसके देश में या उसकी जाति में किस बात की विशेष आवश्यकता को वह अपनी अवस्था व योग्यता के अनुसार किस तरह और किस कदर पूरा करसकता है। सुतरां इस तरह से अपना उद्देश्य लक्ष्य करके फिर उसको पूर्ण करने में

लग जावे और फिर जन्मभर उस काम से न हटे चाहे उसको दुःख हो या सुख कामयाबी, या उसको दूसरों से मदद मिले या न मिले।

यदि इस यूरोपियन महापुरुष के हाथ में गीता होती न तो वह आर्यों के धर्म के विषय में गलत विचार निश्चय करता और खुद उसको जीवन के सदाचार की फिलासफी नियत करने में इतनी दिक्कत न होती जितनी कि हुई। उसकी पैदायश से हजारहों वर्ष पहिले एक आर्य्य महापुरुष ने ज्यों की त्यों यही शिक्षा दी थी जिसका प्रकाश इसपर हुआ इसके लिये तो यह प्रकाश निरा अचानक और बेजोड़ था परन्तु प्राचीन आर्य्य साहित्य में यह शिक्षा एक श्रेणी की खराद मात्र की और यही वैदिक धर्मका बुनियादी पत्थर है। यही महापुरुष अपने इस लेख में एक यूरोपियन कविता का हवाला देता है, जिसका अर्थ यह है।

"फौलाद" हमारी आंखों के सामने डरावनी सूरत में चमकता है और रास्तेमें कदम २ पर आपत्ति हमारी बाट देखती है मगर तो भी लार्ड कहता है बढ़े चलो! बढ़े चलो! दम न लो। हम पूछते हैं कि हुजूर यह तो बतावें कि हम किधर जा रहे हैं? जवाब मिलता है कि अब लोगों मरना तो है ही (फिर डरना क्या) आगे बढ़ो और मरो। अब लोगों जहमत तो उठानी ही है (फिर डरना क्या) आगे बढ़ो और ज़हमत उठाओ।

पाठकों आपने भगवद्गीता को पढ़ा या सुना, आपने महाभारत को देखा या पढ़ा, क्या यही उपदेश महाराज कृष्ण का नहीं है कि हे अर्जुन तुम याद रक्खो शरीरधारी मनुष्य मात्र को मरना तो अवश्य ही है फिर मरने और मारनेसे क्या

डरना उठो और युद्ध करो, न मरने से डरो और न मारने, जो तुम्हारा धर्म है उसका पालन करो।

सच तो यह है कि सच्चा धार्मिक वही पुरुष हो सकता है जो इस तरह अपने धर्म के लिए न मरने से डरे और न मारने से। जिस की नज़रों में इस धर्म के सामने दुनियादारी की सब बातें तुच्छ हैं।

हे मेरे स्वजातीय भाइयो अपने हृदय पर हाथ रक्खो और सोचो कि इस नियम के अनुसार हमारी जाति में कितने धर्मात्मा हैं और कितने ऐसे हैं कि जो इस उद्देश्य की पैरवी में धर्मात्मा बनने के इच्छुक हैं।

क्या आजकल हमारी जाति का और हमारे धर्म आराध्य का धर्म नहीं है? हममें से कितने लोग हैं जो अपने कर्त्तव्य और अपने धर्म के हेतु सब तरह के झंझट और दुःख उठाने के लिए तैयार हैं। क्या सैकड़ों और हज़ारों नहीं नहीं लाखों हिन्दू हरसाल पैसों, रुपयों, औरतों, उहदों इत्यादि नाचीज़ द्रव्य के लिए अपना धर्म बेच नहीं देते क्या हम में से कोई भी ईमानदारी से यह कह सकता है कि मैं अपने धर्म की खातिर हर तरह का दुःख उठाने को तैयार हूं। हा अफसोस इस देश में न धर्म रहा और न धार्मिक। केवल ज़बानी जमा खर्च रह गया—हमारा धर्म हमारी देशभक्ति, हमारा स्वजातीय प्रेम, हमारा उपकारी जीवन केवल खाली लिफाफे की तरह है। अन्दर न उद्देश्य के नोट हैं न सच्ची इच्छाओं की चिट्ठियां, सम्भव है कोई महान पुरुष अपनी जीवनचर्या से हमें धर्म का सच्चा तत्व बतला दे और इस भूली हुई जाति को हाथ पकड़ कर सीधे रास्ते पर डाल दे।

गुरु कुल महाविद्यालय आनन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
प्रवेश ग्रहण क्रमांक 1762
आनन्द महिला महा

पठनीय जीवनचरित्र

भीष्मपितामह

कौन हिन्दू है जो आज इस महाभारत के हीरो के नाम से चित होगा। उन्हीं का यह जीवनचरित महाभारत से खोज के साथ लिखागया है। भाषा बड़ी रोचक और बोधोत्पादक है। मूल्य सिर्फ ॥≈)

छत्रपति शिवाजी

इस महाराष्ट्र वीर के नाम को आज कौन भारतवासी है, गर्व के साथ नहीं लेता। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इसने वीरता, दृढ़ता और साहस से हिन्दू धर्म पर आक्रमण वालों का मुकाबला किया, वह इतिहासपाठकों से छिपा है। उसी वीरशिरोमणि का यह जीवनचरित्र और वह देशभक्त श्रीमान् लाला लाजपतराय का लिखा हुआ किस हिन्दू को अवाञ्छनीय होगा। मूल्य ॥≈)

हजरत मुहम्मद का जीवनचरित्र

कौन हिन्दू या मुसलमान है, जो आज हजरत मुहम्मद के नाम से परिचय न रखता हो। इन्होंने अपने अदम्य उत्साह, विशाल और परिश्रम से अरब में सैकड़ों प्रतिरोधों के होते हुए इसलाम धर्म की स्थापना की। उन्हीं का यह जीवनचरित्र इसलाम की प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है। मूल्य सिर्फ ॥≈)

और भी अनेक जीवनचरित्र और धर्मसम्बन्धी पुस्तकें यहां से मिल सकती हैं।

मैनेजर वैदिक पुस्तकालय,
मुरादाबाद।

Cover Printed by Himalaya Press, Moradabad.

अन्य उपयोगी पुस्तकें।

❀ दार्शनिक ❀

न्याय दर्शन	१॥)
वैशेषिक दर्शन	१॥)
योगदर्शन	२)
सांख्य दर्शन	१)
ध्यानयोगप्रकाश	१॥)
अष्टोपनिषद्	२)

❀ धार्मिक ❀

वैदिक विवाहादर्श	१।)
विधवोद्वाहमीमांसा	१।)
बालसत्यार्थप्रकाश	॥≈)
शुद्धनामावलि	॥)
कन्योपनयन संस्कार	।≈)
बालमनुस्मृति	।≈)
आर्य हिन्दू नमस्ते	।)
नीतिशतक	≈)
मुक्ति और पुनरावृत्ति	≈॥)

❀ साम्प्रदायिक ❀

यवनमतादर्श	१)
विषलता (इसलामकाफोटू)	॥≈)
कुरान की छानबीन	।≈)
यवनमतपरीक्षा	।≈)
पुराणपरीक्षा	।)
मौन्दूजाट व पादरीसाहब	≈)
स्वर्ग में महासभा	।)
स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी	≈॥)

❀ नैतिक ❀

विचारकुसुमाञ्जलि	
चरित्रशिक्षा	

❀ शिक्षा सम्बन्ध ❀

संस्कृतप्रबोध	
बालाबोधिनी ४ भाग	
सन्तान शिक्षक	
घरेलू चिकित्सा	
शिष्टाचार सोपान	
सीताचरित्र छहों भाग	
भारतमाता	
चंचल कुमारी	

❀ गायन ❀

राष्ट्र गान	
तेजसिंह शतक	
पाखण्ड खण्डिनी	
राष्ट्रीय चमत्कार भजन	
वसन्तमाला	
आनन्द मंगल	
भजनपचासा	
स्त्रीज्ञान गजरा (तीनों भाग)	
भजनप्रकाश	
स्वर्णामृत	
आनन्दलता	

विशेष जानकारी के बड़ा सूचीपत्र मंगवाइये

मैनेजर—वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद